असमर्थ, इस लिए उस्तरे से नापित के पास सिर मुंडवाना शुरू किया, जैन साधु अचित्त प्रासुक जल गृहस्थ का दिया मिले तो लेते हैं, अन्यथा तृषा परीसह सम्भाव सहते है। मरीचि ने अपने सुखार्थ वस्त्र से छाना हुआ जलार्थ कमंडलु धारण किया, सचित्त जल कच्चा सर्वत्र मिल सकता है, जैन साधु ४२ दोष विवर्जित आहार एषणीय होवे तो लेते हैं अन्यथा तपोवृद्धि समभाव साधते हैं। मरीचि ने गृहस्थ के घर जैसा मिले वहां जाकर वा निमंत्रण से भोजन करना शुरू किया, पद में पदरक्षा धारण करी, आतप (धूप) रक्षार्थ छत्र धारण किया। जैन मुनि इन दोनों से वर्जित हैं। इस का शिष्य एक राजपूत कपिल देव हुआ, उस ने २५ तत्त्व कथन किये। अपने शिष्य आसुरी को, फिर क्रम २ से एक सांख्य नाम इन के शिष्य से इस मत का नाम सांख्य प्रसिद्ध हुआ। कपिलदेव ने जगत् का कर्त्ता ईश्वर है ऐसा नहीं माना, संसार के सर्व भेष एक जैन धर्म के बिना सर्व का आदि बीज यह कपिलदेव हुआ।

ऋषभदेवजी का बड़ा पुत्र भरत चक्रवर्त्ती जिसके दिग्विजय से यह षट् खंड भूमि भरतक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुई, उसने अपने ९९ भाईयों को अपनी सेवार्थ बुलाये, तब ९८ भाई तो भरत की सेवा यदि पिता आज्ञा देंगे तो करेंगे ऐसा विचार भगवान् को पूछने कैलाश पर गये, तब भगवान् उन को हाथी के कान की तरह चंचल राज्यलक्ष्मी दर्शाकर वैराग्य के उपदेश से साधुव्रत ग्रहण कराया वे सर्व केवल ज्ञानी होगये, ऐसा स्वरूप सुन भरत सम्राट् चित्त में चिंता करने लगा, प्रभु चित्त में जानने होंगे कि भेरी दी हुई राज्य लक्ष्मी भरत अपने भाइयों से छीननेलगा इसलिये भरत दुःखी होंगे इसलिये अब भाइयों को भोजनादि भक्ति कर प्रसन्न करूं तो पिता प्रसन्न हो जायंगे ऐसा विचार अनेक भांति के भोजन मिष्टान्नादि तैयार किए। अष्टापद पर जाके भाइयों से नम्रता पूर्वक भोजन करने की निमंत्रणा करी, ऐसा स्वरूप देख भगवान् ने कहा, हे भरत! तू ऋजु जड़ काल दोष से है, जितना ज्ञान श्रवण करे उतना ही कर सकता है विशेष बुद्धिसे नहीं विचारता केवल ज्ञानी वीतराग होते हैं न रुष्ट हैं न तुष्ट होते है। प्रथम तो ये ९८ साधुव्रत धारण कर केवल ज्ञानी होगये है। साधुओं का यह आचार नहीं कि उनके निमित्त किया और सन्मुख लाया हुआ आहार ग्रहण करें। यह श्रवण कर भरत अत्यन्त उदास हुआ कि इन सुपात्रों के अर्थ निष्पन्न भोजन में

किसको खिलाऊं वहां सौ धर्मेन्द्र ने भरत का खेद मिटाने के लिये कहा हे सा
तेरे से जो गुणों में अधिक हो उनको यह भोजन करा, तब भरतचक्री
अयोध्या आया, अपने से गुणों में अधिक द्वादशव्रत धारक श्रावक धर्मी जनों
दर उन को बुलाया। वे उस समय उत्कृष्टधर्मी पांचसय संख्या वाले
में थे उन को यह भोजन कराया, उन की आचरण से भरत अत्य
हुआ और कहने लगा मेरे सर्वदा कोट्यावधि जीव भोजन करते हैं
स्वार्थ है, आप जैसे धर्मी जन सुपात्रों को भोजन कराना निरंतर परमार्थ
आप मेरे यहां सर्वदा भोजन किया करें, तब उन्हों ने कहा हे नरपति! प
आदि में तो हम उपोषित रहते हैं. सामान्य दिवस में भी एकासन से
नहीं करते. बाकी आंबिल निवि आदि तप पोसह, षडावश्यक, दे
आदि भाव किया. जिनार्चन आदि नित्य कर्तव्य हमारा है। तब भरत र
के धर्म कर्तव्य करने. पोषधशाला तथा यथा रुचि भोजन भक्ति करने को च
कार (रसोईदार) अन्य खिदमतगार का प्रबन्ध कर उन को अपने सम
के समीप धर्म करने. भोजन करने तथा रहने की आज्ञा दी।

वे वृद्ध श्रावक [illegible] कहलाये. इन के पठन पठनार्थ [illegible]
[illegible] । दर्शन वेद ? [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उच्च शिक्षा देने का दिया है और भोजनादि विशेष भक्ति में करता हूं, मेरे माननीय होने से ३२ हजार भारतवासी राजा तथा प्रजा इन को पूज्य भाव से मानते हैं, तब परमेश्वर ने कहा हे भरत! तेने तो अच्छा ही किया है लेकिन आगामी काल में इन का वंश वृद्धि पाकर भिन्न २ जाति स्थापित होगी। नवमें सुविधनाथ अर्हंत के निर्वाण पीछे जिन धर्म के साधु विच्छेद होंयगे तब सर्व प्रजा इनको धर्म पूछेंगे उस समय यह अपने महत्त्व की पुष्टि निज स्वार्थ सिद्धयर्थ अनेक कुविकल्प रूप ग्रंथ जाल रचते चले जावेंगे। जीवहिंसा, मृषा वचन, अदत्त मैथुन, अगम्य गमन, अपेय पान, अभक्ष भक्ष ऐसा कोई कुकृत्य नहीं जो इस वंश वाले नहीं करेंगे और तद्रूप ग्रथ रचेंगे। पात्र अल्पतर कुपात्र ही प्रायः होंयगे। जिनोक्त तत्व सत्य धर्म के परम द्वेषी व नष्टकर्त्ता होंयगे, प्रजागण तरणतारण इन को गुरु भाव से पूजेंगे। इन की आज्ञा शिरोधार्य करेंगे फिर जब शीतल १० मां तीर्थंकर होगा तब उनके उपदेश से कई एक भव्य जीव पुन धर्म के श्रद्धावंत होंयगे ।

इस प्रकार सोलमे तीर्थंकर पर्यंत जिन धर्म प्रवर्तन हो हो कर विच्छिन्न होता जावेगा। इतने में अनेक पाषंड मिथ्यात्व रूप महातिमिर भारत क्षेत्र में विस्तार पावेगा। उपरांतमें बीस में तीर्थंकर के मध्य में पर्वत ब्राह्मण महाकाल असुर की सहायता से बकरा हवन कर मांस भक्षण करना ऐसा कृत्य वेद का मूल अर्थ पलटा के शुरू करेगा, बीस में तीर्थंकर के निर्वाण पीछे याज्ञवल्क्य ब्राह्मण तेरे रचे वेद को त्याग नई श्रुतियें हिंसा कारक रूप रचेगा, जिसका नाम शुक्ल यजुर्वेद रखेगा, उस के पीछे जंगल में रहनेवाले अनेक जीवों के मारने रूप अनेक ब्राह्मण वेद का नाम धरकर श्रुतियें रचेंगे उनकी रची श्रुतियों में उन २ ऋषियों का नाम रहेगा. उन सब ऋषियों के पास फिर २ के नेम तीर्थंकर के कुछ पहिले पराशर का पुत्र द्वैपायन ब्राह्मण उन हिंसाकारक मंत्रों को ताड़ पत्र पर लिख कर एकत्रित करके उसके ३ भाग करेगा ऋक् १, यजु २ और साम ३, तब सब ब्राह्मण उसे वेद व्यास कहेंगे, पीछे नेम तीर्थंकर का उपदेश सुनकर व्यास के हृदय में सत्य अहिंसा रूप जिन धर्म की श्रद्धा उत्पन्न होगी तदनंतर कृष्ण नारायण की आज्ञानुसार गीता, भारत आदि में सात्विकी लेख भी स्वरचित पुराणादि इतिहासों में स्थल २ में लिखेगा और किसी स्थल में पूर्व गृहीत हिंसा जनक लेख भी लिखेगा। इस हुंडा अवसर्पिणी काल में असंयतियों की पूजा

होने रूप आश्चर्यजनक वार्त्ता यह प्रकट होगी, पीछे २३वें तीर्थंकर पार्श्व होंगे उन का नाम सर्वसंमत परमतों विख्यात होगा, तदनंतर मरीचि तेरा पुत्र जिसने गेरू रंगित पूर्वोक्त वेष उत्पन्न किया उसका जीव २४ वां महावीर नाम का तीर्थंकर होगा वह साढा पचवीस देश में स्व उपदेश से सौ राजाओं को जिनधर्मी करेगा। गोतम गोत्रीय आदि ४४०० ब्राह्मण जीव हवन करते हुओं को सत्य, अहिंसा परम धर्म को स्याद्वाद न्याय से प्रतिबोध देकर एक दिन में जैनी दीक्षा साधुमत देगा उनके उपदेश से प्रायः हिंसाजनक यज्ञ वेदोक्त कर्मकांड भारत से दूर होगा। ब्राह्मण भी प्रायः पुराणों का आश्रय लेंगे। आजीविका के लिये धर्म के बहाने से अनेक मार्ग उत्पन्न करेंगे इत्यादि भावी फल संपूर्ण।

भरत चक्रवर्त्ती को भगवान् ने कथन किया भावी फल वह बहुत है। इस जगह लिखने के लिये स्थान नहीं। सर्व तीर्थंकर केवल ज्ञानी का तथा सामान्य केवल ज्ञानी का तत्वमय उपदेश एक रूप है, केवलज्ञानी जब तक होते रहे तब तक उन का कहा विज्ञान मुनिजन कंठाग्र अपने २ क्षयोपशमानुसार धारते रहे। जब काल दोष से शक्ति न्यून होती गई तब से जिनोक्त ज्ञान आचार्यों ने पुस्तक रूप से लिखा जो परंपरागत याद रहा था, उस में जो मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग था उस को आवश्यक समझ साधु जन के आचरण के लिये आगम नाम रूप से लिखा, अन्य को पयन्ना (प्रकरण) रूप से लिखा। एक कोटि संख्या प्रमाण जैनागम विक्रम राजा के पांचवीं शताब्दी में २ पूर्व की विद्या पुस्तक रूप लिखे गये वे १० नाम से विख्यात हुए। अनुयोग द्वार सूत्र में वे १० नाम लिखे है (१) सुत्ते (२) गंथे (३) पयन्ने (४) आगमे इत्यादि। इसलिए सूत्र ग्रंथ प्रकीर्ण आगम एकार्थ वाचक होनेसे सर्व केवलज्ञानी के कथनानुसार है, जिस२ समय जिस आचार्यादि ने उन केवल्योक्त वचनों की एक संकलना करी वह ग्रंथ उस संकलना कारक के नामसे प्रसिद्धमें विख्यात हुआ लेकिन वह ग्रंथ ज्ञान उस कर्त्ता का नहीं, वह सर्व ज्ञान केवली कथित है जिन धर्मी प्रामाणिक पुरुषों ने लिखा है। दृष्टान्त जैसे मैं ने संग्रह कर्त्ता ने यह जैन दिग्विजय पताका का संग्रह कियाहै इसको तत्व के अनभिज्ञ मेरा रचाहुआ कहेंगे, लेकिन तत्वदृष्टिवाले कदापि ऐसा नहीं कहेंगे। मुझ अल्पज्ञ का ऐसा क्या सामर्थ्य है जो मैं मनोक्त कल्पना करूं, संबंध नहीं, परंपरागत शास्त्रानुसार अनेक ग्रंथ में से

उद्धृत कर यह संग्रह प्रकाश में लाया हूं। जो प्रमाण रहित वचन हो वे सर्वदा अमान्य होते हैं, प्रमाण युक्त वचन को मतांध पुरुष यद्यपि नहीं मानते, क्योंकि उन्हों के हृदय में मतांतरियों ने कुतर्क रूप जाल बिछा दिया है जैसे पित्त-ज्वर वाले को मिश्री भी कड़वी मालुम पड़ती है लेकिन मिश्री कदापि कड़वी नहीं है यह नीरोग पुरुष ही जानता है तैसे इस संग्रह ग्रंथ का ज्ञान समदृष्टि पुरुषों को अवश्य माननीय होगा, जैसे भर्तृहरि राजा ने लिखा है :—

> अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
> ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥ १ ॥

अर्थ—अज्ञानी को सुख से ज्ञान देने से शायद समझ भी सकता है, विशेष ज्ञानवंत तो न्याय वचन द्वारा शीघ्र ही समझता है और ज्ञानलव से दुर्विदग्ध (अर्थात् अधजला) मतांतरियों के कुज्ञान से उस पुरुष को ब्रह्मा भी ज्ञान देने में समर्थ नहीं होता।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी के विद्यमान समय में भी ३६३ पाखंडियों ने अपना हठवाद नहीं त्यागा था। २४ में तीर्थंकर के [illegible] जमाली की कुमति ने दुर्गति में परिभ्रमण करने का अनु[illegible] अज्ञान का वमन करादिया था एवं ८ निन्हव आज तक जैन धर्म में प्रकट हो गये [illegible] की तो बात ही क्या, क्योंकि जिन के बालपन से लगुन के [illegible], कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र रूप अधर्म श्रद्धा हो रही है वे कदापि कस्तूरी की सुगंधि रूप सच्छास्त्र की ओर लक्ष नहीं देते। कोई प्रज्ञावान् न्यायमार्ग बुद्धिवाले जिन को संसार से शीघ्र मुक्ति होनी है ऐसे पुरुष ही इस ग्रन्थ को पढ़कर, सुनकर सत्यासत्य के परीक्षक होंगे। अपने मत की पोल न खुल जाय, इसलिए अपने बाड़ों के बच्चों को ऐसा भयमानरूप वचन सिखारक्खा है कि हस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जिनमंदिरम् बस इस लकीर के फकीर तत्वज्ञान के अंधे कहते हैं कि हाथी से मरजाना लेकिन जैन मंदिर में नहीं जाना, कोई पूछे किस वेद में, किस स्मृति, भारत, रामायण या वसिष्ठ गीता आदि इतने आप लोगों के प्राचीन ग्रंथ हैं उन में किस शास्त्र का यह कथन है और नहीं जाना इस का कारण क्या ? और इस में कौन सा प्रमाण है। तब एक हिया शून्य ने कहा, जैन का देव मूर्ति नग्न है इस लिए नहीं जाना कहा है। **(उत्तर) हे मतांध!** प्रथम तो जिनमूर्ति के

भक्त जनों के संकट काटने को धारण किये खैर मानलो, लेकिन जो उत्तम पुरुष जिस जाति कुल में अवतार लेता है उस जाति कुल के आपदा की रक्षा स्वशक्त्यनुसार अवश्य करता है लेकिन भगवान् तो सर्व शक्तिमान् हैं उन्होंने जिस मत्स्य जाति में अवतार लिया उस मत्स्य जाति को कनौजिये, सरवरिये, बंगाली ब्राह्मण तथा शूद्रवर्ग, यवन, म्लेच्छ आदि निरंतर भक्षण किया करते है और करेंगे इसी प्रकार कच्छप को, बाराह (सूकर को) संहार कर पूर्वोक्त जाति भक्षण करती है जिसमें यवन सूकर को भक्षण नहीं करते है। इसी प्रकार हयग्रीव (घोड़े) का अवतार भगवान् ने धारण किया उस अश्व जाति को यवन जाति तथा फ्रान्स देश वाले आदि मार कर भक्षण करते है इस प्रकार स्वजाति कुल की रक्षा ही तुम्हारा भगवान् नहीं करता तो फिर कैसे यकीन हो कि उनके ध्याता भक्त जन की वह रक्षा करेगा। फिर तुम कहते हो भगवान् की सर्व १६ कला है सो कृष्ण नारायण पूर्ण सोलह कला का अवतार था, खैर मानलो, लेकिन उस कृष्ण नारायण के विद्यमान समय में ३ अवतार दूसरे भी विद्यमान थे ऐसा तुम्हारे शास्त्र का लेख है और तुम मानते भी हो अब बतलाओ पूर्ण १६ कला तो कृष्ण में थी और वेद व्यास अवतार, धन्वतरि अवतार तथा शुकदेव अवतार इन में तो एक भी कला नहीं थी जब ईश्वर की कला नहीं तो इन कला रहितों को ईश्वर का अवतार किस प्रकार मानते हो ? भ्रान्तिमनेरगा।

कई एक मतावलम्बी केवल नाम से ही मुक्ति होती है ऐसा कहते हैं, तब तो तप, इन्द्रिय दमन, दान, दया, क्रोध, मान, माया, लोभ का त्याग करना व्यर्थ ही ठहरा। मिश्री २ कहने से मुह मीठा हो, रोटी २ कहते भूख निवृत्त होजावे तब तो यकीन भी करलें कि भगवान के नाम मात्र से मुक्ति हो जावेगी अन्यथा एकान्त हठ वचन है। इस प्रकार तीर्थ जल के स्नान मात्र से अभ्यन्तर पाप, जीव हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्रीगमनादि अनेक कुकृत्य का दूर होना मानने वाले भी विचार लेवें। अच्छे कृत्य से पुण्य, बुरे कृत्य से पाप, जीव आप ही करता है तथा आप ही भोगता है और सब कर्मों को शुभ भाव द्वारा क्षय करने से जीव स्वयं मुक्त हो जन्म मरण रहित ईश्वर रूप होता है। साकार ईश्वर का स्मरण, ध्यान, पूजन इसलिये करना उचित है कि उन्होंने उच्च गति प्राप्त करने

संतोष का चौथा व्रत मानते हो या नहीं ? वा आजकल श्रावक पद धर्म का अभिमान धरानेवाले पांच २ सात २ विवाह करते हैं इन को क्या मानते हो ? आत्मा धर्म तो स्त्रीपुरुषका समतुल्यहै फिर अधिकता तो यह है कि पापणीस्त्री छठे नरकसे आगे नहीं जाती। पुरुष सातवें नरक पर्यंत जाते हैं। पूर्वबद्ध मंद रस के नियाणे से पांच पति से पंच समक्ष व्याह किया लेकिन वारे के दिन का पति तो एक ही इच्छती थी, अन्य पुरुष का त्याग था उस द्रौपदी को कुसती कहने वाले यथा राजा पद्मनाभ तथा कीचक ने यहां तो प्राण घात दंड पाया पर भव में नरक पाया आखिर को यह गति होगी। नव नियाणा का लेख दशाश्रुतस्कंधसूत्र में देखो, नियाणा जन्मभर जीव के रहता है, द्रौपदी का नियाणा केवल ज्ञान और मुक्ति का बाधक था लेकिन सम्यक्त देश व्रत सर्व व्रत का बाधक नहीं था।

कईएक जैना भास श्रावकपना पांचमागुणस्थानक अपनेमें मानतेहैं। कुगुरुओं के कहने मुजब वे अपने आचरण को प्रथम चित्त में विचार कर पीछे अपने में पांचवा गुण ठाना मानें, मिथ्यात्वी देवी, देवता, भूत, प्रेत यक्षादिक का वंदन नमन पूजा करते फिरते हैं। सूत्रों की आज्ञानुसार मिथ्यात्वी देवी देवता के मानने वाले में चौथा गुण स्थानक सम्यक्त का लेश मात्र भी अंश नहीं, जब सम्यक्त चौथा गुणठाणा नहीं तो पांचवा गुणठाणा कदापि उस में सिद्ध नहीं होता, नास्तिमूलं कुतोशाखा जिस की जड़ ही नहीं तो शाखा प्रशाखा उस वृक्ष की कैसे हो सकती है यदि वे कहें कि हम तो असाता आने मिथ्यात्वी देवी देवताओं को मानते पूजते हैं, धर्म करके नहीं उत्तर—हे महोदय ! भगवती सूत्र में तुंगिया नगरी के [illegible] विहार नाम से प्रसिद्ध है, उन श्रावकों के वर्णन में लिखा है कि यक्ष भूत, प्रेत व अन्य मिथ्यात्वी देवी देवताओं का सहाय वे श्रावक नहीं चाहते थे, क्या वे असाता [illegible] नहीं थे ? इस भगवती सूत्र के लेख से सर्वत्र जैन धर्मी श्रावक अन्य देव देवता मिथ्यात्वियों को कदापि वंदन, नमन, पूजनादि नहीं करते थे अतः इस समय मिथ्यात्वी जन कल्पित देवों को मानने वाले वह विराधक अनन्त के [illegible], मिथ्यात्वी देवी देवता के भक्त जनों के सम्यक्त्व सूत्रानुसार सिद्ध नहीं, सम्यक्त्व बिना न श्रावकव्रत, न साधुव्रत प्राप्त हो सकता है [illegible] मिथ्यात्व का कृत्य करे वा पापारंभ करे उस का फल [illegible] दुःख भोगेगा।

संसारी खाता मुंह के कहने मात्र से मिथ्यात्व का बंध छूट जाना होगा, इस समझ को धन्यवाद है। जिन कुमतियों ने तुमको मिथ्यात्व देवी देवताओं को मानते पूजते को संसारी खाते करना बतलाया वह एक अपेक्षा सत्य प्रतीति होता है, संसारी खाते की वृद्धि होगी, ससार में परिभ्रमण करना पड़ेगा इसलिये संसार खाते यथार्थ नाम सिद्ध है।

अब जिन प्रतिमा में प्रथम ६ नय सिद्धता दरशाते हैं—समवसरण में पूर्व दिशि के द्वार सन्मुख श्री तीर्थंकर सिंहासन पर आप विराजते हैं, दक्षिण पश्चिम तथा उत्तर के द्वार सन्मुख श्री अरिहंतजी की प्रतिमा (बिंब) बिराजता है वह प्रतिमा रूप थापना जिन है, वह उपकारी है, उस प्रतिमा का आलंबन पाय करके समवसरण में अनेक जीव समकित धारी हुये, मत के धारी वाले पूर्व दिशि के द्वार बैठते हैं। अन्य ३ दिशि जिन प्रतिमा से जीव समकित का लाभ लेते हैं इसलिये ये [illegible] थापना निक्षेप का उपकार है, थापना का विशेष उपकारीपणा तथा म [illegible] है। अरिहंत तथा सिद्ध परमेश्वर अपने आत्मा का निमित्त कारण है और जिन प्रतिमा यह भी अपने तत्व साधन का निमित्त कारण है इसलिये ठाणांग सूत्र के दसमे ठाणे दसपरूपे स्थापना को सत्य कहा, जिन प्रतिमा में अ[illegible] सिद्धपना ६ नय से है, यदि कोई कहे कि अरिहन्त हुये सिद्ध हुये उन [illegible] नय छोड़ ६ नय कैसे कहते हो [illegible] नाम स्थापना द्रव्य तीन निक्षेप, नैगम नयवन्त [illegible] निक्षेप का चार २ भेद होता है (उक्तं च भाष्ये) नामादि प्रत्येकं चतुरूपमिति ॥

नाम स्थापना में है उस थापना का नाम निक्षेपा है। स्थापना द्रव्य कारण होता है, उस स्थापना का स्थापना निक्षेपा है, अनुपयोगता अनुपयोगता उस स्थापना का द्रव्य निक्षेपा है, आगारभिप्पाओ (आकार में अभिप्राय होता है) इस धर्म का कार्यसिद्ध होना वह थापना का भाव निक्षेपा है इस तरह थापना चार निक्षेपे दुरतहं अथवा नत्थिनएहिं विहूणं सुत्तोअत्थोयजिणमएकिंचि अर्थात् नहीं है नय बिना सूत्र या अर्थ जिन मत में कुछ भी, सर्व वचन नय (न्याय) युक्त है।

अरिहन्त सिद्ध भगवान की थापना है उसमें नय कहते हैं:—

(१) प्रतिमा के देखने से अरिहंत सिद्ध का संकल्प चित्त में होना है

अथवा स्त्री शस्त्रादि रागद्वेषादि चिन्ह का असंगादि तदाकारता रूप अंश यह जिनकी स्थापना में है। नैगम नय अंश को ग्रहण कर वस्तु सिद्धि करता है इस लिये पूर्वोक्त अंश रूप थापना में नैगम नय सिद्ध है।

(२) अरिहंत तथा सिद्ध के सर्व गुण के संग्रह की बुद्धि को धारण कर के प्रतिमा की थापना करी है इसलिये यह संग्रह नय अरिहंत सिद्ध की थापना में विद्यमान है।

(३) अरिहंत के आकार को वंदन नमन स्तवनादि सर्व व्यवहार श्री अरिहंत का होता है उसका कारणपणा इस थापना में है इसलिये व्यवहार नय थापना में है।

(४) इन जिन प्रतिमा रूप थापना को देख सर्व भव्य जीवों के बुद्धि का विकल्प उत्पन्न होता है कि ये श्री अरिहंतजी हैं इस विकल्प से थापना करी है इसलिये ऋजु सूत्र नय थापना में है।

[illegible] इंद्रप्रकृतिप्रन्ददर्शिद्रुम यह स्वभाव [illegible] शब्द नय थापना में है।

[illegible]

कर्त्ता के वश है वह निमित्त कारण सात नय से दिखाते हैं:—

(१) संसारानुयायी जीव को जिन प्रतिमा को देखने से अरिहंत का स्मरण होता है अथवा जिन वंदन कूं जीव की सन्मुखता होती है इसलिये सन्मुखता का निमित्त वह नैगमनय निमित्त कारणपणा है।

(२) जिन प्रतिमा के देखने से सर्व गुण का संग्रह होता है। साधकता की चेतनादि सर्व का संग्रह उस तत्त्वता की अद्भुतता के सन्मुख होता है, वह संग्रह नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(३) वंदन नमनादिक साधक व्यवहार का निमित्त वह व्यवहार नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(४) तत्त्व ईहा रूप उपयोग स्मरणों का निमित्त वह ऋजु सूत्र नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(५) संपूर्ण अरिहंतपणे का उपयोग से जो उपादान इस निमित्त से तत्त्व साधन में परिणमना वह शब्द नय थापना का निमित्त है, समकिती आदि जीवों को इसलिये शब्द नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(६) अनेक तरह से चेतन के वीर्य का परिणाम सर्व साधनता के सन्मुख हुई वह समभिरूढ नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(७) इस जिन थापना का कारण पाय कर तत्त्व की रुचि, तत्त्व में रमणता करके शुद्ध शुक्ल ध्यान में परिणमे वह संपूर्ण निमित्त कारणता पा करके उपादान की पूर्ण कारणता उत्पन्न हुई वह एवं भूत नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

निमित्त कारण का यह धर्म है जो उपादान को कारणपणे प्राप्त करे, और उपादान कारण वह कार्य पणे नीपजे यह मर्यादा है (दृष्टांत) घड़े का उपादान कारण शुद्ध मिट्टी, उसको चक्र, कुमार, जल, डोरी, लकड़ी ये निमित्त कारण, घड़ा बनने रूप कार्यपणे परणमाता है इस प्रकार सात नय से सिद्ध निमित्त कारण रूप जिन प्रतिमा भव्य जीव रूप उपादान कारण को शुक्ल ध्यान ध्याते निर्वाणादि कार्य निपजाता है। इसलिये जिन प्रतिमा मोक्ष का निमित्त कारण है इसमें शब्द भव भट्ट को शब्द नय दर्शन निमित्त कारण जिन प्रतिमा [illegible]

तप से दीक्षा लेकर १४ पूर्वधर श्रुत केवली शय्यंभव सूरि वीर प्रभु के पाँचे पट्टधर हुवे जिन का लेख दशवैकालिक सूत्र की चूलिका की ४ गाथा में है।

अन्य पुद्गल रुचि जीव को जिन प्रतिमा व्यवहार नय निमित्त कारण पर्यंत निमित्त कारण होय तथा मार्गानुसारी को समकित की आठदृष्टि जो योगदृष्टि समुच्चय में कही है उसमें से आदि की ४ दृष्टि वाले को ऋजु सूत्र नय पर्यन्त जिन प्रतिमा निमित्त कारण होता है और पूर्ण पुण्यवान् को यह जिन प्रतिमा संपूर्ण एवं भूत सातमी नय पर्यंत कारण रूप हुई दिखती है इस भावना से यह सिद्धता हुई जिन प्रतिमा में संपूर्ण सात नय रूप निमित्त कारणता है पीछे तो कार्य का कर्त्ता जहां पर्यंत निपजावे उतना नीपजे।

थापना श्री अरिहंत पद की मूल तो द्रव्य और भाव ये दोय निक्षेपावंत हैं लेकिन निमित्त कारण का चार निक्षेपा सात नय संयुक्त है सो कहा है। निमित्तस्यापि समग्रकारत्वनयप्रकारेण. निमित्तस्य द्विविधं. द्रव्यभावात्. तथोपादनस्यापि समग्रकारत्वे नयोपदेशात् नो अविद्याखमखयं. इति वचनात्।

इसलिए निमित्त कारण में जिन प्रतिमा और जिनवर अरिहंत दोनों तुल्य है क्योंकि ये दोनों साधक जीव को तो निमित्त कारण है लेकिन उपादान नहीं. [illegible] है ऐसी [illegible] है [illegible] को वंदन करने का फल तथा अरिहन्त की प्रतिमा वंदन का फल सूत्रों में एक सदृश लिखा है।

[illegible] और द्रव्य [illegible] निक्षेप [illegible] कारण है। उक्तञ्च भाष्ये अहवा नाम ठवणा दव्वाइ भाव मंगलाण पाणग भाव मंगल, परिणाम निमित्त भावाओ [illegible] निक्षेप [illegible] है। इन [illegible] निक्षेपों को [illegible] नहीं [illegible] उक्तंच वस्तुमस्वंनामं

तप्पच्चयंहेउओसिधम्मव्व, वत्थुनाणाविहाणा, होज्जाभारोविवज्जासो ॥ वत्थुस्सलक्खणंसं, ववहारोविरोहसिद्धाओ, अभिहाणादिणाओ, बुद्धिसद्दो-अकिरियाय ॥ इतिवाक्यात् नाम्नः प्रधानत्वम् ।

गाथा—आगारो भिप्पाओ, बुद्धिकिरियाफलंचपाएणं, जहविसइठवणाए,नचहानामेणदव्विदो ॥१॥ आगारोचियमई, सद्दवत्थुकिरियाभिहाणाइ, आगारमयंसव्वं, जमणागारातयानत्थि ॥२॥ इत्यादि ।

इसलिये नाम और थापना ये दोय निक्षेपा उपकारी है। मोक्ष साधने में संवर निर्जरा करने को तो वंदन करने वाले का जो भाव है सो ग्रहण करना, यदि अरिहंत का भाव निक्षेपा अलग [illegible] कोई [illegible] तो सर्वथा ग्रहण नहीं होता, अरिहन्त का भाव निक्षेपा [illegible] के अभ्यन्तर है यदि जो पर जीव को अरिहन्त [illegible] जीव को संसार में रहना [illegible] कभी हुआ नहीं, होता नहीं [illegible] अरिहंतावलंबनी होय, तभी मोक्ष मार्ग की प्राप्ति [illegible] नाम के निमित्त से साधक को भाव स्मरण हो। सुधी इसलिये थापना नाम दोय निक्षेप ही उपकारी है फिर समवसरण में विराजमान श्री अरिहन्त उनका नाम तथा आकार सर्व जीव को उपकारी [illegible] है। अवलंबन दोनों का ही छद्मस्थ कर सकता है। केवलज्ञ[illegible] केवलज्ञान विना ग्रहण होता नहीं। निमित्त [illegible] श्रावक को श्री जिन प्रतिमा पुष्ट निमित्त है। (देखो नोट).

नोट —नं० १. दी जैन स्तूप [illegible] ऑफ मथुरा [illegible] स्मिथ (पर्थात्) लन्दन में अंग्रेजी में मथुरा का [illegible] जैन मंदिर का उसमें एक शिला लेख का चित्र (फोटो) [illegible] है। पार्श्वनाथ स्वामी के शिष्य प्रभु के विद्यमान समय [illegible] जिन मंदिर की प्रतिष्ठा की थी उन का सर्व वृत्तान्त उक्त अंग्रेजी में [illegible] C.I.E., बीकानेर के पास पुस्तक हमने [illegible] ।

नं० [illegible] लुन्दन में छपा उस में लिखा है कि अकबर बादशाह [illegible]

॥ श्रीः ॥

विज्ञापन

विदित हो कि मैंने मेरे गुरु महाराज उपाध्याय श्री रामलालजी गणिः से बालपन से विद्याभ्यास किया है जिसमें विशेषतया आयुर्वेद पढ़ा हूं। रोग परीक्षा व इलाज गुरु महाराज के अनुभूत शीघ्र फलदायक करता हूं। ज्वर, सर्वतरह के अतिसार, संग्रहिणी, वमन, आम्लपित्त, सोथमुख आदि से रक्त गिरना, पांडु, आमवात, कुष्ट, (गठिया) वायु, फिरंग, गर्मी, सुजाक, कास, श्वास, पसली का दरद, सन्निपात, शूल, अजीर्ण, हैजा, प्लेग, पागलपना, मृगी, मूर्च्छा इत्यादि रोगों का वनस्पति वर्ग की दवा व रस रसायण दोनों से रामबाण इलाज है।

घर बुलाने से दिन का १) रात का २) तथा दवा के दाम। सामान्य रोगी के ॥) दीर्घ रोगी के १) रुपया हमेशा का ये नियम तीन वर्ष के लिये है। गरीब का इलाज नुस्खा लिख देकर मुफ्त करता हूं।

द० पं० प्रेमचन्द्र यतिः,
रांघड़ी चौक, बीकानेर,
(मारवाड़).

उन १२ गुणों की व्याख्या—

श्लोक।

अशोकवृक्षःसुरपुष्पवृष्टिः दिव्यध्वनिश्चामरमासनंच।
भामंडलंदुंदुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणिजिनेश्वराणाम्॥

(अर्थ) अर्हत परमेश्वर वर्त्तमान जिनराज के देहमान से बारह ऊंचा स्वर्ण रत्नमयी अशोक वृक्ष की छाया सर्वत्र सर्वदा संग रहती है (१) आकाश में जल थल के पुष्पों की वर्षा करते हैं (२) कम से कम एक देवता जय २ ध्वनि करते संग रहते हैं (३) चमरों की जोड़ियां रहती हैं (४) स्फटिक रत्न का सिंहासन चंक्रमण समय आकाश में है, विराजते हैं। यहां नीचे समवसरण होता है (५) भगवान् का तेज मनुष्य देख नहीं सकते इसलिये मस्तक के पीछे कोटि दिवाकर के तेज को विध्वंसमान भामंडल शोभा देता है (६) सर्वदा आकाशमें देवगण प्रभु के सन्मुख देव दुंदुभि बाजिंत्र बजाते रहते हैं (७) मस्तक पर तीन छत्रातिछत्र सर्वदा रहता है (८) इस प्रकार आठ महा प्रातिहार्य तथा चार मूल अतिशय (१)ज्ञानातिशय (२) वचनातिशय (३) अपाय अपगमातिशय (४) पूजातिशय एवं १२ गुण युक्त अर्हत परमेश्वर वीतराग होते हैं।

ज्ञानातिशय से केवल ज्ञान केवल दर्शन से भूत, भविष्य, वर्त्तमान काल में जो सामान्य विशेषात्मक वस्तु है उसको और (१) उत्पन्न होना (२) नाश होना (३) ध्रुव रहना पूर्वक तीनों काल संबंधी सत् वस्तु का जानना उसको ज्ञानातिशय कहते हैं। दूसरा भगवान का वचनातिशय है उसके ३५ भेद हैं जैसे (१) संस्कारादि लक्षण युक्त वचन (२) शब्दमें उच्चता (३) ग्राम वास्तव्य मनुष्य जैसे भगवान का वचन नहीं (४) मेघ गर्जारव शब्दवत् गंभीर वचन (५) गुफाओं के साथ मिलता हुआ वचन (६) सरलता संयुक्त वचन (७) मालव कौशिकी आदि ग्राम राग कर युक्त वचन (ये सात अतिशय तो शब्द की अपेक्षा के आश्रय होते हैं बाकी २८ अतिशय अर्थ आश्रय के होते हैं) (८) महार्थता युक्त वचन (९) पूर्वापर विरोध रहित वचन

(१०) अभिमत सिद्धांत वचन (११) श्रोताजन को संशय नहीं होय ऐसा वचन (१२) जिन के कथन में कोई दूषण नहीं न श्रोता को शंका हो न भगवान् उनका दूसरी बेर उत्तर देवें (१३) हृदय में ग्रहण करने योग्य वचन (१४) परस्परमें वचन का सापेक्षपना (१५) प्रस्तावके उचित वचन (१६) कही वस्तु के स्वरूप अनुसारी वचन (१७) सुसंबंध होकर पसरने रूप वचन (१८) स्वश्लाघा और परनिंदा वर्जित वचन (१९) प्रतिपाद्य वस्तु की भूमिकानुसारी वचन (२०) अतिस्निग्ध और मधुर वचन (२१) कथन किये गुण की योग्यता से प्रशंसा रूप वचन (२२) पराया मर्म उघाड़ने से रहित वचन (२३) अर्थ का तुच्छपना रहित वचन (२४) धर्म अर्थ कर संयुक्त वचन (२५) कारक काल लिंगादि कर संयुक्त और इन के विपर्यय रहित वचन (२६) वक्ता के मन की भ्रांति विक्षेपादि दोष रहित वचन (२७) श्रोताओं को उत्पन्न करा है छिन्न कौतुहलपना ऐसे वचन (२८) अद्भुतपणे के वचन (२९) अतिविलंब रहित वचन (३०) वर्णन करने योग्य वस्तु नानाविध स्वरूप आश्रय वचन (३१) वचनान्तर की अपेक्षा से स्थापित है विशेषता ऐसे वचन (३२) साहस कर संयुक्त वचन (३३) वर्णादिकों के विच्छिन्नपणे युक्त वचन (३४) कहे हुये अर्थ की सिद्धि यावत् नहीं होय तहां तक अव्यवच्छिन्न प्रमेयपणे रूप वचन (३५) खेदकर रहित वचन ये वचनातिशय उपदेश देते अर्हन परमेश्वर के होते हैं [illegible] ने [illegible] इन दोनों में [illegible] हैं

तीर्थंकर भगवान् के [illegible]

के पीछे सूर्य की मानों विडंबना करता है, अपनी शोभा से ऐसा भामं
शोभता है (३) साढे पचवीस योजन क्षेत्र में चारों दिशि में उपद्रव ज्वर
रोगोंकी निवृत्ति होतीहै (४) परस्पर विरोध नहींहोता (५) सात धान्यादि
इयकारी मुषकादि नहीं होते (६) अतिवृष्टि हानिकारक नहींहोती (७) अना
ष्टि वर्षानका अभाव नहीं होता (८) दुर्भिक्ष (काल) नहीं गिरे (९) स्वच
परचक्र का भय नहीं होय पुनः ग्यारे अतिशय ज्ञानावरणीय आदि च
घनघाती कर्मों के क्षय होने से उत्पन्न होते हैं।

(१) आकाश में धर्म प्रकाशक चक्र होता है (२) आकाश ग
चामर (३) आकाश में पाद पीठ युक्त स्फटिकमय सिंहासन होता
(४) आकाश में तीन छत्र (५) आकाश में रत्नमय ध्वज (६) ज
भगवान् चलते हैं तब पग के नीचे सुवर्ण नव कमल देव रचते हैं (७
समवसरण में रत्न, सुवर्ण और रूपेमयी तीन गढ (कोट) मनोहर दे
रचते हैं (८) समवसरण में चारों दिशि में प्रभु के चार मुख दीखते
(९) स्वर्ण रत्नमय अशोक वृक्ष की छाया सर्वदा प्रभु पर देव करते
(१०) कांटे अधोमुख होजाते हैं (११) वृक्ष ऐसे नम जाते हैं मान
नमस्कार करते हैं (१२) उच्च नाद से दुंदुभि भुवन व्यापक निना
करती है (१३) पवन सुखदाई चलती है (१४) पक्षी प्रदक्षिणा देते उड़ते
(१५) सुगंध जल का छिड़काव होता है (१६) गोडे प्रमाण जल थल
उत्पन्न पंच वर्ण सरस सुगन्धित फूलों की वर्षा होती है (१७) भगवान्
दाढी मूंछ के बाल, नख शोभनीक यथास्थित रहते हैं (१८) चार निका
के देवता कम से कम एक कोटि प्रभु की सेवा में सर्वदा रहते हैं (१९
षट् ऋतु अनुकूल शुभ स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द ये पांच बुरे तो लु
होजाते हैं और अच्छे प्रकट होजाते हैं। ये उगणीस अतिशय देवता करते हैं
[illegible] मतान्तर से कोई २ अतिशय अन्य प्रकार से भी मानते हैं ए

१. तत्त्वार्थ सूत्र के टीकाकार समंत भद्राचार्य ने लिखा है कि हे जगदीश्वर दे
जो ३४ अतिशयादि बाह्य विभूति इंद्र जाल विद्यावाला भी दिखा सक्ता है
[illegible] जो तुम में १८ दूषण के क्षय होने से आत्मगत अनन्त [illegible] हैं वे—

के नष्ट होने से क्या परमेश्वर दान देता है, लाभान्तराय के नष्ट होने से क्या लाभ परमेश्वर को होता है, वीर्यांतराय के नष्ट होने से क्या परमेश्वर शक्ति दिखलाता है, भोगांतराय के नष्ट होने से क्या परमेश्वर भोग करता है, उपभोगांतराय के नष्ट होने से क्या परमेश्वर उपभोग करता है। उत्तर—हे भव्य! ये पांच अन्तराय (विघ्न) जिस के लग रहे हों वह परमेश्वर कैसे हो सकता है। पूर्वोक्त पांच विघ्न के क्षय होने से भगवंत में पूर्ण पांच शक्तियें प्रकट हुई होती हैं, जैसे नेत्रों के पटल दूर होने से निर्मल चक्षु में देखने की शक्ति प्रकट होती है, चाहे किसी वस्तु को देखे या न देखे, समर्थ वह कहाता है कि मार सके लेकिन मारे नहीं, किसी को मारदे वह कदापि ज्ञानियों की समझ से समर्थ नहीं कहलाता। ऐसे इन पांच अन्तराय के नष्ट होने की शक्ति स्वरूप समझना, पांच शक्ति से रहित जो होगा वह परमेश्वर नहीं हो सकता (६) छट्ठा दूषण हास्य है, हांसी अपूर्व वस्तु के देखने से वा सुनने से आती है वा अपूर्व आश्चर्य के अनुभव के स्मरण से आती है, ये हास्य के निमित्त हैं, हास्य मोहकर्म का प्रकृति रूप उपादान कारण है, ये दोनों ही कारण अर्हंत परमेश्वर में नहीं हैं, प्रथम निमित्त कारण का संभव कैसे होय, अर्हंत भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। उन के ज्ञान में कोई अपूर्व ऐसी वस्तु नहीं जो उसे देखे सुने वा अनुभवे, जिस से आश्चर्य हो और मोहकर्म तो अर्हंत ने सर्वथा क्षय करदिया, इसलिये उपादानकारण कैसे होसके, इसलिये अर्हंत में हास्य रूप दूषण नहीं होता, हंसनस्वभाववाला अवश्य असर्वज्ञ, असर्वदर्शी और मोह से युक्त होता है वह परमेश्वर कैसे हो सकता है (७) सातमा दूषण रति, जिस की प्रीति पदार्थों के ऊपर होगी वह अवश्य धन, स्त्री, शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श, सुन्दर देख प्रीतिमान् होगा, प्रीतिमान् अवश्य उस पदार्थ की लालसा वाला होगा तो अवश्य उस पदार्थ के न मिलने से

---

२. लाभान्तराय के नष्ट से निज स्वरूप का लाभ लेते हैं। ३. वीर्यांतराय के नष्ट होने से निज अनन्त ज्ञान में अनंत वीर्य फोरते हैं। ४. भोगान्तराय के नष्ट से ज्ञानादि अनन्त गुण का पर्याय उस का समय २ उपभोग तथा भोग करते हैं।

के पास हो. जैसे अक्षसूत्र, जपमाला. आदि शब्द से कमंडल प्रमुख होवे. राग द्वेषादि दूषणों का जिसमें चिन्ह होवे, सो रखनेवाला अवश्य कामी स्त्री से भोग करनेवाला होगा इनसे अधिक रागवाला होनेका फिर कौनसा चिन्ह होगा, इसी कारन राग के वश होकर अदेवों ने परस्त्री स्वस्त्री बेटी माता, बहिन और पुत्र की वधू प्रमुख से काम क्रीडा करी। उन के जीवन चरित्र पक्षपात त्याग कर विचारो, अब जो पुरुष मात्र होकर पर स्त्री गमन करता है उसे आज कल के मतावलंबियों में से कोई भी अच्छा नहीं कहता न उस समय उनों को कोई अच्छा कहताथा। परमेश्वर उनों को मानने वाले कुछ बुद्धि द्वारा विचार करें. परमेश्वर परस्त्री से काम कुचेष्टा करे उसके कुदेव होने में कोई भी बुद्धिमान् शंका नहीं करसकता। जो परणीता स्वस्त्री से काम सेवन करता है और परस्त्री का त्यागी है उसकूं भी धर्मी-गृहस्थ स्वस्त्रीसंतोषी परदारात्यागी लोग कहते हैं लेकिन उसे मुनि या ऋषि. साधु कोई भी नहीं कहता, ईश्वर कहना तो दूर रहा क्योंकि जो आप ही कामाग्नि के कुंड में जल रहा है ऐसे से कभी ईश्वरता नहीं हो सकती। इस लिये जो राग के चिन्ह से संयुक्त है वह अदेव. पुनः जो द्वेष के चिन्ह कर युक्त है वह भी अदेव है. शस्त्र रखना द्वेष के चिन्ह हैं. धनुष. चक्र [illegible] त्रिशूल रखनेवाला [illegible] किसी अपने वैरी शत्रु को [illegible] है नहीं तो शस्त्र रखने से क्या मतलब. जिस के वैर [illegible] मरण हुआ है वह परमेश्वर नहीं हो सकता। जो ढाल, तलवार [illegible] से युक्त है जो आप भय से युक्त है उस की [illegible] से हम [illegible] कैसे हो सकते हैं [illegible] द्वेषयुक्त को कौन [illegible] जाता है [illegible] द्वेष युक्त [illegible]

[illegible] है [illegible] नवज्ञ [illegible] [illegible] द्वेष करना है [illegible] बुद्धिमान् विचार [illegible] जाता है [illegible]

करनेवाला अदेव है।

और जिस पर अनुग्रह (तुष्टमान) होय उसको इंद्र, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव, महामंडलीक, मंडलीक राज्यादि का वर देवे, सुंदर अप्सरा स्त्री का संयोग, पुत्र परिवारादिक का संयोग जो करे, किसी को शाप देना, किसी को वर देना, ये परमेश्वर के कृत्य नहीं, रागी द्वेषी हैं वह मोक्ष के ताईं नहीं हैं, यह भूत प्रेत पिशाचादिकों की तरह क्रीड़ाप्रिय कथनमात्र देव है, आप ही राग द्वेष कर्म से परतंत्र है वह सेवकों को कैसे तार सकता है?

जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत इन के रस में मग्न है, बाजा बजावे, आप नाचे, औरों को नचावे, हंसे, कूदे, विषयवर्द्धक गायन गावे इत्यादि मोहकर्म के वश संसार की चेष्टा करता है ऐसे अस्थिर स्वभावी नायिका भेद में मग्न, अपने भक्तजन को शान्तिपद कैसे प्राप्त करा सकता है? किसी ने एरंड वृक्ष को कल्पवृक्ष मान लिया तो क्या वह कल्पवृक्ष का सारा काम दे सकता है, इस प्रकार मिथ्यादृष्टियों ने पूर्वोक्त चिन्हवालों को देव मान लिया तो क्या वे परमेश्वर हो सकते हैं। प्रथम लिखे जो १८ दूषण रहित वही परमेश्वर तरणतारण देव है। फिर जगत में ८४ लाख जीवयोनी हैं, उस में भैंसे, बकरे आदि पंचेंद्रिय, तिर्यंच तथा मनुष्य हैं। इन जीवों को मरवाकर उन के मांस और रक्त से बलि लेकर संतुष्ट होने वाली वह ब्रह्म शक्ति वा महाकाली जगदंबा या जगज्जननी कैसे हो सकती है? जो माता होकर अपने बाल बच्चों का खून कर उस से प्रसन्न हो वह जगन्माता [illegible] न्याय हो सकती है? फिर जिसने ३ पुरुष उत्पन्न कर [illegible] उन से विषय सेवन करा वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

और मंगल करने समर्थ नहीं हुआ ऐसे का ध्यान स्मरण पूजन कर किस प्रकार जिस से निवृत्ति पासकते हैं। इस प्रकार कर्म से परतन्त्र जो गत पर्यटन करने वाला है वह कदापि परमेश्वर नहीं जिसने अनेक कन्याओं का [illegible] खण्डन कर अब्रह्म सेवन करा ऐसा कामी हमको शान्तिपद प्राप्त कर सकता है, इत्यादि लक्षण परमेश्वर के नहीं, कई कहते हैं पवित्रात्मा परमेश्वर ने एक स्त्री कुमारी से विषय किया, उस के पुत्र हुआ, पिता, पुत्र, पवित्रात्मा, देव परमेश्वर के ३ भेद हैं। शरीरधारी बिना स्त्री के विषय निराकार सच्चिदानन्द परमेश्वर ने कैसे करा, वीर्यपात बिना पुत्र कैसे हो सकता है? सायन्स से यह विरुद्ध वार्ता है, फिर लिखा है कि एक पुरुष ने ईश्वर से कुश्ती करी और गऊ के बच्छ का मांस और रोटी खाई, मांस रोटी जो खाता है वह देहधारी है, पाखाने भी जाता है, मलमूत्रादि युक्त सामान्य मनुष्य की तरह सप्तधातुनिष्पन्न शरीरवाला है, ऐसा रागी, द्वेषी ईश्वर कदापि नहीं होसकता। ईश्वर होकर स्त्री से मैथुन करे, ऐसे को ईश्वर मानने वालों की बुद्धि की कहां तक प्रशंसा करी जाय। ईश्वर का पुत्र एक दिन चलते २ थक गया, थकने वाले [illegible] है, ईश्वर में तो सर्व प्रकार का [illegible] थकने वाला ईश्वर व ईश्वर का पुत्र नहीं [illegible] ईश्वर के पुत्र का गूलर फल खाने की इच्छा हुई जब वृक्ष के [illegible] तो वृक्ष [illegible] पाया तब क्रोध से श्राप दिया आज तक फल मनुष्य नहीं खावेगा, अब बुद्धिमान विचार सकते हैं यदि ज्ञानवान होता तो प्रथम से जान सकता कि वृक्ष [illegible] है तो फिर जाता ही क्यों? इसलिये अज्ञानी ईश्वर वा ईश्वर का पुत्र कदापि नहीं हो सकता। वृक्ष को श्राप देना कितनी अज्ञानता है, वृक्ष कुछ जानकर फला नहीं था कि ईश्वर का पुत्र खावेगा उसके लिये मैं फल लाऊं। अप्रत्यक्ष चेतन को श्राप देवे [illegible] अज्ञानी सिद्ध होता है, ऐसा ईश्वर वा ईश्वर का पुत्र कदापि नहीं हो सकता है। फिर ईश्वर का पुत्र करामात दिखलाने वास्ते घड़ों में [illegible] के दिखलाता, बाजीगर इस प्रकार [illegible] उगाता दिखलाके [illegible] से [illegible] दिखलाता है जैसे बाजीगरी का खेल। [illegible] [illegible] करने वाला कदापि ईश्वर वा ईश्वर का

पुत्र नहीं हो सकता। जिस मद्य के पीने में ५२ अवगुण प्रगट हैं ऐसी महा अभक्ष वस्तु चेतनता नष्ट करने वाली ईश्वर को प्रगट करने की क्या गरज थी फिर अनेक पापी जनों के पाप की सज़ा आप भोगने मरने के हुक्म हुआ। ईश्वर का पुत्र अपने ईश्वर से प्रार्थना कर पापों की माफी कराने समर्थ नहीं था सो अन्य लोगों के पाप का दंड आप भोगा, पुनः यह भी गैर इन्साफ है पाप करे एक, उसका दंड पावे दूसरा, इत्यादि अनेक लक्षणों से ऐसी चेष्टा वाला न तो ईश्वर न ईश्वर का पुत्र हो सकता है। कई मतावलम्बियों ने शुद्ध पूरण ब्रह्म ज्ञानानंद ईश्वर को जगत् जीवों को सुख दुःख देने वाला जगत् सारे का न्याय करने वाला चीफजज बना डाला। दिन रात उसको इन्साफ की चिंता में मग्न रहने वाला ठहराया जैसे गरमी के मौसम में हाकिम लोग छुट्टी पर इन्साफ की चिंता से निवृत्ति पावे हैं वैसे ही जब ईश्वर उन मतावलंबियों का सर्व जगज्जीवों को सुषुप्ति में गेर देता है उन दिनों में कुछ इन्साफ से छुट्टी पाकर सुखी रहता होगा फिर उन विचारे जीवों को जाग्रत कर कर्म फल भोगाने उनका ईश्वर उद्यम करता रहता है। उन विचारे जीवों को सुषुप्ति में पड़े को क्यों ईश्वर जगाता है इसमें ईश्वर को क्या लाभ होता है प्रथम तो उन्हीं को जाग्रत करना फिर वे कर्म करें उनको अच्छे बुरे का फल देना बैठे बिठाये ईश्वर को क्या गुदगुदी उठती है सो ऐसा कृत्य बेर २ करते रहता है।

इस प्रकार अनेक कलंक शुद्ध ईश्वर को मतावलम्बियों ने स्व कपोल कल्पित ग्रन्थों में लिखे हैं। ग्रन्थ गौरव भय से इहां संक्षेपतया लिखा है।

(१) विशेष ईश्वर को जगत् का कर्ता हर्ता मानने वालों का खंडन हमारा रचा सम्यग्दर्शन ग्रन्थ देखो।

श्री वीतरागाय नमः।

जैनधर्म की प्राचीनता का इतिहास।

(प्रश्न) जैनधर्म कब से प्रवर्त्तन हुआ (उत्तर) हे महोदय! जैनधर्म अनादि काल से जीवों को मोक्ष प्राप्त कराने वाला प्रवाह से प्रचलित है। (प्रश्न) हमने सुना है बौद्ध मत की शाखा जैन मत है और ऐसा भी सुना है जैन मत की शाखा बौद्ध मत है, किसी काल में ये एक थे और कई मनुष्य ऐसा भी कहते हैं कि विक्रम सम्वत् छः सौ के लग भग जैन मत प्रगटा है तथा कोई कहते हैं विष्णु भगवान् ने दैत्यों का धर्म भ्रष्ट करने को अर्हंत का अवतार लिया तथा कोई कहते हैं मछंदरनाथ के चेटों ने जैन मत चलाया है तथा कोई कहते हैं साढ़ातीन हजार वर्षों से और विलायतों से जैनमत इस आर्यावर्त्त में आया है इत्यादि जिस के दिल में आवे वैसी ही कल्पना कर बक उठते हैं लेकिन इन सब दंत कथाओं को आल जंजालवत् बुद्धिमान समझ सकते हैं। प्रमाण शून्य कथन होने से विवेकी स्वबुद्ध्यनुसार ही विचार लें इन पूर्वोक्त कुविकल्पों में से कौनसा कुविकल्प सत्य है क्योंकि एक से एक विरुद्ध कुविकल्प है इस मुजिब ही अगर सब सत्य मानने में आवे तो मांभी (ढेढ) लोक कहते हैं ब्रह्मा का बड़ा पुत्र मांभी था, मांभी की औलाद वाले सब बंभण कहलाये, इस वजे ही तैलंग देशी ढेट अपने को मादगौड़ नाम से पुकारते हैं, कहते हैं स्वयंभू भगवान के दो पुत्र भये, आदगौड़ और मादगौड़। आदगौड़ ब्राह्मण बजने लगे और हम लोग मादगौड़ ढेड बजने लगे। इस वजे ही चमार कहा करते हैं चामों, और बानों, विश्वस्टजू के दो लड़कियां थी, चामों की औलाद चमार बजने लगे, बानों की औलाद बनिये, हे बुद्धिमानों यदि आप इन दृष्टांतों को सत्य कभी मान सकते हो तो पूर्वोक्त जैनधर्म की उत्पत्ति भी सत्य मानने होंगे, इस्से शंकरदिग्विजयादिक ग्रंथों में जो जैनमत का खंडन लिखा है वह भी जैनधर्म का अनभिज्ञता सूचक है, सांप की लकीर को

सांप की बुद्धि से मारने में सांप के प्रहार नहीं लगता, जैनधर्मी जिस बात को मानते ही नहीं तो उस बात का खंडन करना ही निरर्थक भया, जिनों को वेदांती शंकरावतार मानते हैं. उन जैनों को भी जब जैनधर्म के तत्वों की अनभिज्ञता थी तो आधुनिक गप्प बनाने वालों की तो बात ही क्या कहनी है. सब बुद्धिमानों से सविनय प्रार्थना करता हूं कि पहले जैनधर्म के तत्वों को अच्छी तरह समझने के अनन्तर पुनः खंडन के तरफ लक्ष्य देना, नहीं तो पूर्वोक्त स्वामीवत् हास्यास्पद बनोगे।

अब सज्जनों के ज्ञानार्थ प्रथम इस जगत् का थोड़ा सा स्वरूप दर्शाते हैं। इस जगत को जैनी द्रव्यार्थिक नय के मत से शाश्वत प्रवाह रूप मानते हैं। इस में दो काल चक्र, एकेक कालचक्र में कालव्यतिक्रम रूप छः, छः आरे वर्त्तते हैं एक अवसर्पिणी काल वह सर्व अच्छी वस्तु का नाश करते चला जाता है, दूसरा उत्सर्पिणी काल वह सर्व अच्छी वस्तु की क्रम से वृद्धि करते चला जाता है। प्रत्येक कालचक्र का प्रमाण दश कोटाकोटि सागरोपम का है, एक सागरोपम असंख्यात वर्षों का होता है, इसका स्वरूप जैन शास्त्रों से जान लेना, ऐसे कालचक्र अनंत व्यतीत हो गये और आगे अनंत बीतेंगे. एक के पीछे दूसरा शुरू होता है। अनादि अनंत काल तक यही व्यवस्था रहेगी। अब छहों आरों का कुछ स्वरूप दर्शाते हैं—

अवसर्पिणी का प्रथम आरा जिसका नाम सुखम सुखम कहते हैं वह चार कोड़ा कोड़ी सागरोपम प्रमाण है। उस काल में भरत क्षेत्र की पृथ्वी बहुत सुंदर स्फटिक टोलक के तले सदृश समथी, उस काल के मनुष्य निर्विष भद्रक सरल स्वभाव अल्प राग, द्वेष, मोह, मान, क्रोधादिवान् थे, सुंदर रूप निरोग शरीर वाले थे, मनुष्य उस काल के १० जाति के कल्पवृक्षों से अपने खाने पीने पहनने सोने आदि की सर्व सामग्री कर लेते थे, एक लड़का एक लड़की दोनों का युगल जन्मते थे। ४९ दिन संतान हुवे के पश्चात् वह मर के देवगति में यहां जितनी आयु थी उतनी ही स्थिति या कम स्थिति की आयु के देव होते थे. यहां से ज्यादा उमर वाले नहीं होते थे. तद पीछे वह संतान का युगल जब यौवन वंत होते थे. तब इस वर्त्तमान स्थित्य-

कुमार पहिन और भाई, स्त्री भर्त्तार का संबंध करतेथे, उनों के फेर यथानुक्रम युगल होतेथे, जैनमतके मापमें तीन गाउ प्रमाण उनका शरीर ऊंचाथा, तीन पल्य की आयु थी, दो सौ छप्पन्न पृष्ठ करंड (पांसली) थे, धर्म्म करना तथा पाप कृत्य जीव हिंसा, झूठ, चोरी, प्रमुख ये दोनों ही विशेष नहीं थी, गिनती के युगल थे, बाकी अन्य जीव जंतु थे, वह क्षुद्र परिणामी नहीं थे, धान्य, फल, पुष्प, इक्षु, प्रमुख पदार्थ वनों में स्वयमेव ही उत्पन्न होते थे, मनुष्यों के काम में नहीं आते थे, तिर्यंच काम में लेते थे, वल्कलचीवर पहनते थे, मरे बाद उन मनुष्यों का शरीर कर्पूरवत् हवा से उडजाता था, दुर्गंधी नहीं फैलती थी, उन १० जात के कल्प वृक्षों का नाम जैन शास्त्रों से जान लेना। जम्बूद्वीप पन्नती आदि शास्त्रों से कुछ प्रथम आरे का स्वरूप लिखा है ।

असंख्यातगुण हानि होकर दूसरा आरा लगा ३ कोडा कोडी सागरोपम प्रमाण का, इस के प्रवेश समय दो गाऊ का देहमान, दो पल्य का आयु, १२८ पांसुली, बाकी व्यवस्था प्रथमारक की तरे समझ लेना ।

असंख्यात गुण हानी होकर तीसरा आरा लगा, एक गाऊ का देहमान, एक पल्य की आयु, ६४ पसलिया क्रम २ से सर्व वस्तु हानी एकाएक नहीं होती। सागर उतरते अगले आरे का भाव आ ठहरता है, इस तीसरे आरे के अंत में सात कुलगर एक वंश में उत्पन्न हुये, जिनों ने उस काल के मनुष्यों के उचित कुछ २ मर्यादा बांधी, इन ही सातों को लौकिक में मनु कहते हैं, उनों का अनुक्रम से उत्पन्न होना—उनो के नाम (१) विमल वाहन (२) चक्षुष्मान (३) यशस्वी (४) अभिचंद्र (५) प्रश्रेणि (६) मरुदेव (७) नाभि । दूसरे वंश के भी सात कुलगर भये, एवं १४ मनु, पनरमा नाभि का पुत्र ऋषभदेव एवं १५ भये। पूर्वोक्त विमलवाहनादि ७ कुलगरों के यथानुक्रम भार्याओं का नाम—(१) चंद्रयशा (२) चंद्रकांता (३) सुरूपा (४) प्रतिरूपा (५) चक्षुकांता (६) श्रीकांता (७) मरुदेवी ये सर्व कुलकर। गंगासिंधु के मध्य खंड में भये, इनों के होने का कारण कहते हैं, तीसरे आरे के उतरते काल दोष से १० जात के

कल्पवृक्ष स्वल्प होते चले, तब युगलक लोक अपने २ कल्पवृक्षों का ममत्व कर लिया, जब दूसरे युगलक दूसरे के कल्पवृक्ष से फलाशा करने लगे तब उन वृक्षों के ममत्वी उन से कलह करने लगे तब सब युगलक लोकों ने ऐसी सम्मति करी, कोई ऐसा होना चाहिये सो हमारे क्लेश का निपटारा करे उस समय उन युगल में से एक युगल मनुष्य को वन के श्वेत हस्ती ने पूर्व भव की प्रीती से अपने स्कंध पर सूंढ से उठाके चढा लिया तब बाकी के युगलों ने विचारा ये हम सबों से बड़ा है, सो हाथी पर आरूढ फिरता है, इस वास्ते इसको अपणा न्यायाधीश बनाना चाहिये इस के वाक्य शिरोधार्य करना, बस सबों ने उसको अपणा स्वामी बनाया, इस हस्ती और युगलक का पूर्व भव संबंध आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोग-ऋषभ चरित्र कल्प सूत्र की टीका से जाण लेणा।

पश्चात् उस विमलवाहन ने यथा योग्य कल्पवृक्षों का विभाग कर दिया, तदनंतर काल दोष से कोई युगल असंतुष्टता से अन्यों के कल्पवृक्ष से फल ले तब उसका स्वामी उनसे क्लेश करे, यह खबर सुनके अन्य युगलों को भेज विमलवाहन पकड मंगावे और कहे हा! यह तुमने क्यां किया तद पीछे वह फिर ऐसा अकृत्य नहीं करता था, विमल वाहन ने हा! इस शब्द की दंडनीति चलाई। उसका पुत्र चक्षुष्मान् भया, बाप के पीछे वह राजा भया, हाकार की दंड नीति रक्खी इसका पुत्र यशस्वी, यशस्वी का पुत्र अभिचन्द्र इन दोनों के समय में थोड़े अपराधी को हाकार और बहुत धीठ को माकार का दंड ये काम मत करना। ऐसे अभिचन्द्र का पुत्र प्रश्रेणि कुलकर (राजा) भया, प्रश्रेणि का मरुदेव, मरुदेव का पुत्र नाभि इन तीनों के समय में स्वाल्पापराधी को हाकार, मध्यम अपराधी को माकार, उत्कृष्ट अपराधी को धिक्कार ऐसे तीन दंड नीति चलती रही। इन्हों का निवास स्थान, इक्ष्वाकु भूमि साम के मुल्क में काश्मीर के पहले तरफ अब भी अयोध्या नाम से विख्यात नगर है। अयोध्या शब्दका अपभ्रंश ही अयोदिया होगा, इस अयोध्या विनीता के चारों दिशा में चार पर्वत जैन शास्त्रों में लिखा है, पूर्व दिशि में अष्टापद (कैलाश) जो कि तिब्बत के मुल्क में बरफान से आच्छादित अधुना विद्यमान है, दक्षिण

दिशा में महा शैल्य, पश्चिम दिशा में सुर शैल्य तथा उत्तर दिशि में उदयाचल पर्वत है, क्योंकि बहुत से जैन शास्त्रों में लेख है अष्टापद पर ऋषभ प्रभु समवसरे अयोध्या से भरत वंदन करने गया, ये अयोध्या अपर नाम साकेतपुर जो लखनेउ (लक्ष्मण) पुर के पास है यहां से कैलाश बहुत ही दूरवर्ती है। हरवक्त त्वरित जाना कैसे सिद्ध होसके इस वास्ते विनीता (अयोध्या) पूर्वोक्त ही संभावना है। उस ७ में नाभि कुलकर की भार्या मरुदेवा की कूख में आषाढ बदि चौथ की रात्रि को सर्वार्थ सिद्ध देव लोक से च्यव के ऋषभदेव का जीव गर्भ में पुत्रपने उत्पन्न भये, मरु देवी ने १४ स्वप्न देखे, इन्द्र महाराज ने स्वप्न फल कहा, चैत्र बदि अष्टमी को जन्म हुआ, छप्पन दिक्कुमारियों ने सूतिका का कर्म किया, ६४ ही इन्द्रों ने मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक का महोत्सव किया। मरुदेवी ने १४ स्वप्न में प्रथम वृषभ देखा था तथा पुत्र के दोनों जंघाओं में भी वृषभ का चिन्ह था इस हेतु ऋषभ नाम दिया। बाल्यावस्था में जब ऋषभदेव को भूख लगती थी तब अपने हाथ का अंगूठा चूसते थे। इन्द्र ने अंगूठे में अमृत संचार कर दिया था, सर्व तीर्थंकरों की ये मर्यादा है। जब बड़े भये तब देवता ऋषभदेव को कल्पवृक्षों के फल लाकर देते थे, वह खाते थे, जब कुछ कम एक वर्ष के भये तब इन्द्र अपने हाथ में इक्षु दंड लेकर आया उस समय ऋषभदेव नाभि राजा के उत्संग में बैठे थे, तब इन्द्र बोला। भगवन्! "इक्षु भक्षु" अर्थात् इक्षु भक्षण करोगे, तब ऋषभदेव ने हाथ पसा इक्षु दंड छीन लिया, तब इन्द्रने प्रभु का इक्ष्वाकु वंश स्थापन किया तथ ऋषभदेव के अतिरिक्त अन्य युगलों ने काशका रस पीया इस वास्ते उ सबों का काश्यप गोत्र प्रसिद्ध भया। ऋषभदेव के जिस २ वय में जो ज उचित काम करने का था वह सब इन्द्र ने किया। यह शक्र इन्द्रों का जीत कल्प है कि अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकरों का सब काम करे।

इस समय एक युगलक लड़का लड़की ताल वृक्ष के नीचे खेलते थे ताल फल गिरने से लड़का मर गया, तब उस लड़की को अन्य युगलों ने नाभि कुलकर को सौंपा, नाभि ने ऋषभ की भार्या के वास्ते रखली, उसका नाम सुनंदा था, ऋषभ के संग जन्मी उसका नाम सुमंगला था, इन दोनों

६७ सेतज, ६८ वत्स, ६६ अंगदेव, १०० नरोत्तम ।

इस अवसर में जीवों के कषाय प्रबल होने लगा, अन्याय बढ़ने लगा, तब हकारादि तीनों अक्षरों का दंड लोक कम करने लगे, इस अवसर में लोकों ने सर्व से अधिक ज्ञान गुणों कर के संयुक्त श्री ऋषभदेवजी को देख युगलक सब कहने लगे हे ऋषभदेव ! लोकदंड का भय नहीं करते, ऋषभदेव गर्भ में भी मति १, श्रुति २, अवधि ३, तीन ज्ञान करके संयुक्त थे, ऋषभदेवजी के पूर्व भव का वृत्तांत आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोगसे जानना । तब भी ऋषभदेव युगलों से कहने लगे राजा होता है वह यथा योग्य अपराधी को दंड देता है । उसके मंत्री, कोटपालादिक, चतुरंगणी सेना होती है, उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, राजा छत्राभिषेक होता है उसके नगर ग्राम, अस्त्र, शस्त्र, कारागारादि अनेक राज्य शासन का प्रबंध होता है इत्यादि वचन सुन वह युगलक बोले, ऐसे राजा हमारे आप होजाओ। तब ऋषभदेव ने कहा तुम सब राजा नाभि से अरज और याचना करो तब उन्होंने वैसा ही किया, तब नाभि ने आज्ञा दी आज से ऋषभ देव तुम्हारा राजा भया, तब वे युगलक ऋषभदेवको गंगा के तट पर रेणु पुंज बना के अभिषेक करने जल लाने को पद्मनी सरोवर में गये, इस अवसर में इन्द्र का आसन कंपमान भया अवधि ज्ञान से प्रभु के राज्याभिषेक का समय जाण प्रभु पास आया, जो कुछ राजा के योग्य छत्र चामर, सिंहासनादि सामग्री होती है वह सब रचे, मुकुट, कुंडल, हारादि आभरण, देव, दुष्यादि वस्त्र पहनाये और राज्याभिषेक किया, वह विधि इन्द्र दर्शित राज्याभिषेक की प्रचलित भई, तदनंतर वह युगलक पद्मनी पत्रों में जल भर २ के लाये, ऋषभ को आभरण तथा वस्त्रों से अलंकृत देख सबोंने चरणों पर वह जल डाल दिया । तब इन्द्र ने विचार किया ये सब विनीत है, इनके बसने को वैश्रमण [illegible] दी, विनीता वैश्रमण ने नगरी बसाई [illegible]

अब ऋषभदेव [illegible] में इन्द्री,
को वहद् गंगा के [illegible] करे, ..

यन में वांसादिक के आपस में घर्षण होने से अग्नि उत्पन्न भई, कोई कहेगा ऋषभदेवजी को जाति स्मरण तथा मति आदि तीन ज्ञान था तो प्रथम ही से अग्नि क्यों नहीं उत्पन्न करली और अग्नि पक आहारादि की विधी क्यों नहीं सिखलाई? हे भव्य! एकांतस्निग्ध काल में और एकांत रूक्ष काल में अग्नि किसी वस्तु से भी बाहिर प्रगट नहीं हो सक्ती थी। जब सम काल आता है तभी पैदा होती है, प्रत्यक्ष भी एक प्रमाण है चिरकालीन बंध तल घर में अगर दीपक ले जाया जायगा तो तत्काल दीपक स्वतः बुझ जाता है ऐसे पूर्वोक्त काल में कोई देवता बलात्कार विदेह क्षेत्रों से अग्नि ले भी आवे तो उस स्थान तत्काल बुझ जाती है इस वास्ते अग्नि में पकाकर खाना नहीं बतलाया, पीछे वह वनोत्पन्न अग्नि तृणादि दाहकर्त्ता देख अपूर्व निर्मल रत्न जाण युगल हाथोंसे पकड़नेलगे। जब हाथ जल गया तब भय से दौड ऋषभदेवजी को सर्व वृत्तांत कहा, प्रभु ने अग्नि दाह निवर्त्तनी वर्नोषधी से उन्हों का दग्ध शरीर अच्छा किया और अग्नि को लाने की विधि बताई, उस क्रिया से वे लोक अग्नि को अपने २ घरों में ले आये तब ऋषभनाथ हस्ती पर आरूढ होकर बहुत पुरुषों के संग गंगातट की चिकणी मट्टी ले एक मृत्पात्र बना कर उन्होंसे अग्नि में पक करा कर उसमें जल का प्रमाण आदि विधि से तंदुलादि पकान्न कराकर उन्हों को भोजन कराया जिससे वो मृत्पात्र अग्नि पक कराया था उसको कुंभकार प्रजापति नाम से प्रसिद्ध किया तदनंतर शनैः शनैः अनेक भांत के आहार व्यञ्जनादि प्रभु ने सबों को पक कर खाना सिखाया, विशेष साधन दिन २ प्रति सिखाने लगे, उस अग्नि को प्राण रक्षक समझ लोक देव करके पूजने लगे, क्रम से अग्नि को माननीय किया, अब ऋषभनाथ के उपदेश से पांच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने। कुंभकार १, लोहकार २, चित्रकार ३, वस्त्र बुनने वाले ४, नापित (नाई)५, इन एकेक शिल्प के अवांतर भेद, वीश वीश है एवं सौशिल्प का भेदांतर उत्पन्न किया।

पीछे कर्म द्वार प्रगट करा, असी शस्त्रों से १ मसी, लिखने वगैरह से, २ कृषि, खेती आदि करने से, ३ आजीविका, उदर वृत्ति सिखलाई, लिखने

में व्यापार करना, व्याज वृद्धि, धनका ममत्व करना, इत्यादि का समावेश है, प्रथम मट्टी के संचय बनाकर वनस्पती तथा अन्य द्रव्य से मृत्तिका गत लोहेकूं गलाकर कुहाड़े, हथोड़ी, सांकली प्रमुख बनाये, उनों से अन्य सर्व वस्तु बनाई ।

अब भरतादि प्रजा लोकों को ७२ कला सिखलाई, उनों का नाम लिखने की कला, १ पढ़ने की कला, २ गणित कला, ३ गीत कला, ४ नृत्य कला, ५ ताल बजाना, ६ पटह बजाना, ७ मृदंग बजाना, ८ भेरी बजाना, ९ वीणा बजाना, १० वंश परीक्षा, ११ भेरी परीक्षा, १२ गज शिक्षा, १३ तुरंग शिक्षा, १४ धातुवाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ वलि पलित विनाश, १८ रत्न परीक्षा, १९ नारी परीक्षा, २० नर परीक्षा, २१ छंद बंधन, २२ तर्क जल्पन, २३ नीति विचार, २४ तत्त्व विचार, २५ कवि शक्ति, २६ ज्योतिष शास्त्र ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ षट् भाषा, २९ योगाभ्यास, ३० रसायन विधि, ३१ अंजन विधि, ३२ अठारह प्रकार की लिपि, ३३ स्वप्न लक्षण, ३४ इंद्रजाल दर्शन, ३५ खेती करना, ३६ वाणिज्य करना, ३७ राजा की सेवा, ३८ शकुन विचार, ३९ वायु स्तंभन, ४० अग्नि स्तंभन, ४१ मेघ वृष्टि, ४२ विलेपन विधि, ४३ मर्दन विधि, ४४ ऊर्ध्व गमन, ४५ घट बंधन, [illegible]

१२, मेघवृष्टि १३, फलाकृष्टि १४, आराम रोपण १५, आकारगोपन १६, धर्म विचार१७, शकुन विचार१८, क्रिया कल्पन१९, संस्कृत जल्पन२०, प्रासाद नीति २१, धर्म नीति २२, वर्णिका वृद्धि २३, स्वर्ण सिद्धि २४, तैल सुरभी करण २५, लीला संचरण २६, गज तुरंग परीक्षा २७, स्त्री पुरुष के लक्षण २८, काम क्रिया२९, अष्टादश लिपि परिच्छेद३०, तत्काल बुद्धि३१, वस्तु शुद्धि ३२, वैद्यक क्रिया३३, सुवर्ण रत्न भेद३४, घट भ्रम३५, सार परिश्रम ३६, अंजन योग ३७, चूर्ण योग ३८, हस्त लाघव ३९, वचन पाटव ४०, भोज्य विधि ४१, वाणिज्य विधि ४२, काव्य शक्ति ४३, व्याकरण ४४, शालि खंडन ४५, मुख मंडन ४६, कथा कथन ४७, कुसुम गूंथन ४८, वरवेष ४९, सकलभाषा विशेष ५०, अभिधानपरिज्ञान ५१, आभरण पहनना५२, भृत्योपचार५३, गृहाचार ५४, शाठ्यकरण ५५, पर निराकरण ५६, धान्य रंधन ५७, केश बंधन ५८, वीणादि नाद ५९, वितंडावाद ६०, अंक विचार६१, लोक व्यवहार६२, अंत्याक्षरिका६३, प्रश्न प्रहेलिका ६४, एवं स्त्रियों को ६४ कला सिखलाई।

इस काल में जो जो कलायें चल रही हैं वह सर्व पूर्वोक्त कलाओं के अंतर्गत ही हैं, जैसे प्रथम लिपि कला के १८ भेद ब्राह्मी निज पुत्री को दक्षिण हाथ से लिखणी सिखाई, १ हंसलिपि, २ भूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ द्रावड़ी लिपि, ९ सैंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नड़ीलिपि, १२नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमित्तीलिपि, १६ चाणक्यीलिपि, १७ मूलदेवीलिपि, १८उड्डीलिपि, ये अठारे ब्राह्मीलिपि नाम से प्रसिद्ध करी, भगवती सूत्र में गणधरों ने ब्राह्मी लिपि को नमन करा है फिर देश भेद से नानालिपि होगई जैसे १ लाटी, २ चौड़ी, ३ डाहली, ४ कानड़ी, ५ गौजरी, ६ सोरठी, ७ मरहटी, ८ कोंकणी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी, १८ महायोधी, इस काल में कइयां कामदारी, गुरुमुखी, वाणिका आदि अनेक लिपि प्रचलित हैं, इस तरह सुन्दरी पुत्री को वामहस्त से अंक विद्या सिखाई जो जगत् में प्रचलित है। जिन्हों से

अनेक कार्य सिद्ध होते हैं वह सब प्रथम से इस अवसर्पिणी काल में ऋषभदेव ने प्रचलाये हैं जिस में कितनीक कला कई वेर लुप्त हो जाती हैं और फेर सामग्री पाकर पुनः प्रगट हो जाती हैं. जैसे रेल, तार, बिजली, नाना भिन्न अनेक भांति फोनोग्राफ, मोटर, बाइसिकिल, बिलोन (विमान) आदि अनेक वस्तु द्रव्यानुयोग जो पहले लिखा है उन के अंतर्गत ही जानना, परन्तु नवीन विद्या वा कला कोई भी नहीं, शतघ्नी (बंदूक) सहस्रघ्नी (तोप) इस के नाना भेद पूर्वोक्त लोह ज्ञानकला के भावांतर हैं। किसी काल में कागज बनने की क्रिया लोग भूल गये थे तब ताड़पत्र, भोजपत्र आदि से काम चलाने लगे, तदनंतर फेर सामग्री पाकर कागजों की कला प्रकट हो गई लेकिन जब लिखत कला, चित्रकला तथा ७२ कला के शास्त्र लिखने को अवश्य ही कागज भी ऋषभदेवजी ने बनाना प्रथम प्रचलित कराया, बिना कागद बही खाते व्यापार किसी तरह भी चलना सम्भव नहीं. ऋषभदेव ने सर्व कला उत्पन्न करी, यह सब आवश्यक सूत्र में लिखी है. ऋषभदेव ने पूर्व ६३ लाख वर्षों तक राज्य करा, प्रजा को सुख साधन सामग्री तथा नीति से निपुण करा, इस हेतु से ऋषभदेवजी को जैनी लोक जगत का कर्ता [illegible]

से सृष्टि रची है, कोई कहता है विष्णु, जलशायी ने ब्रह्मा को रच सृष्टि रची है, कोई कहता है देवी ने ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तीनों को रचकर पश्चात् यह देवी सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती तीनों रूप रच कर तीनों की क्रम से स्त्री होकर के सृष्टि उत्पन्न करी, इत्यादि अनेक मत तो पुराणोक्त हैं। एक स्वामी वेद के अथर्वगर्वी बन के कह गये ईश्वर, पुरुष और स्त्रियों के तरुण जोड़े रचकर तिब्बत के मुल्क में पटक दिये उस से सृष्टि का प्रवाह शुरू हो गया, उस को २८ चौकड़ी सतयुगादि की बीती है इत्यादि अनेक कल्पना करते हैं क्योंकि प्रायः सर्व मत एक जैन धर्म विना ब्राह्मणों ने चलाये हैं, ब्राह्मण ही मतों के विश्वकर्मा हैं, लौकिक शास्त्र में जो कुछ है सो ब्राह्मणों के वास्ते ही है. ब्राह्मणों को लौकिक शास्त्र ने तार दिया, क्योंकि शास्त्र बनाने वालों के संतानादि खूब खाते, पीते, आनन्द करते हैं. इन ब्राह्मणों की उत्पत्ति तथा वेदों की उत्पत्ति जैसे आवश्यकादि शास्त्रों में लिखी है वह भव्य जीवों के ज्ञानार्थ यहां लिखता हूं।

निदान सर्व जगत् का व्यवहार प्रवर्त्ता कर भरत पुत्र को विनीता नगरी का राज्य दिया, और बाहुबली को तक्षशिला का राज्य दिया, (उस तक्षशिला का अब पता अंग्रेज सरकार ने पाया है, प्रयाग के सरस्वती पत्र में लिखा देखा था) बाकी शेष पुत्रों के नाम से देश बसा २ कर ९८ में पुत्रों को दे दिया, भारत के ३२ खंड को प्रफुल्लित करा, जैसे (१) अंग पुत्र से अंग देश, (२) बंग पुत्र से बंग देश, (३) मरु पुत्र से मरुदेश, (४) जांगल से जंगल देश इत्यादि मन जान लेणा।

पीछे श्री ऋषभदेव ने स्वयमेव दीक्षा ली, उनों के संग कच्छ, महाकच्छादि चार हजार सामंतों ने दीक्षा ली।

ऋषभदेवजी पूर्वबद्ध अंतराय कर्म के वश, एक वर्ष पर्यंत आहार पानी की भिक्षा नहीं पाई, तब ४ हजार पुरुष भूख मरते जटाधारी कंद, मूल, फल, फूल, पत्रादि आहार करते गंगा के दोनों किनारे ऊपर वल्कल चीर पहन कर, तापस बन कर रहने लगे और ऋषभदेवजी के एक हजार आठ नामों की शृंखला रच कर जप, पाठ, ध्यान आदि सुकृत्य करने लगे

यह जिन-सहस्रनाम है, साढी आठसे वर्ष हुए रामानुज स्वामी से वैष्णव मत प्रगटा, तब उस जिन सहस्रनाम की प्रतिच्छाया विष्णुसहस्रनाम रचा गया, विक्रम सम्वत् १५३५ में वल्लभाचार्यजी से गोपालसहस्र नाम रचा गया। तदनंतर यह कर्म एक वर्ष पीछे क्षय होने से वैशाख सुदि तीज को हस्तिनापुर में आये वहां श्री ऋषभदेवजी का पड़ पोता जाति स्मरण ज्ञान के बल से प्रभु को भिक्षा वास्ते पर्यटन करते देख के महल से नीचे उतरा; प्रभु के पीछे हजारों लोक, कोई हाथी, कोई घोडा, कोई कन्या, साल, दुशाला, रत्न, मणि, सोना इत्यादि भेट कर रहे हैं, स्वामी तो विरक्त, वो पदार्थ इच्छते नहीं, क्योंकि उस समय के लोकों ने आहारार्थी, भिक्षाचर, कोई भी देखा नहीं था, तब श्रेयांस कुमार ने सौ इक्षु, रस के भरे घड़ों से पारणा कराया तब सब लोक श्रेयांस कुमार को पूछने लगे तुमने भगवान् को आहारार्थी कैसे जाना, तब श्रेयांस ने अपने और ऋषभदेवजी के पूर्व आठ भवों का संबंध कहा, उहां साधुओं को दान दिया था इस वास्ते आहारार्थी भगवान् को जाना तब से सब लोक ने साधुओं को आहार दान की विधि सीखी, तदनंतर प्रभु एक हजार वर्ष तक देशों में छद्मस्थपणे विचरते रहे। उस समय में कच्छ और महाकच्छ के बेटे नमि, विनमी ने आकर प्रभु की बहुत भक्ति सेवा करी, तब धरणेंद्र ने प्रभु का रूप रच कर अडतालीस हजार सिद्ध विद्या उनों को देकर वैताढ्य गिरि की दक्षिण और उत्तर यह दोनों श्रेणिका राज्य दिया। विद्या से मनुष्यों को लाकर बसाया, यह विस्तार प्रसिद्ध है इन ही विद्याधरों के वंश में रावण, कुंभकर्ण तथा बाली, सुग्रीवादि और पवन, हनुमानादि, इन्द्र आदि असंख्य विद्याधर राजा होगये, इनों में से रावणादि ३ भ्राता पाताल लंका में जन्मे थे, केइयक इसको अमेरिका अनुमान करते हैं, नीची बहुत होने से श्रीकृष्ण भी द्रौपदी लाने को अमरकंका रथ से समुद्र में देवतादत्त स्थल मार्ग से ४-५ मास में पहुंचे का जैन शास्त्रों में उद्धरण है परंतु उस अमरकंका को धान की खंडनामा दूसरे द्वीप की एक राजधानी लिखी है, बहुश्रुति के वाक्य इस में प्रमाण हैं तत्व केवली गम्य है।

अब श्री ऋषभदेवजी छद्मस्थपणे विहार करते बाहुबलि की तक्ष-

शिला नगरी में गये, बाहिर वन में कायोत्सर्ग में सांझ समय आकर समवसर जब बाहुबलि को खबर मिली तब बाहुबलि ने मनमें विचार करा कि कल बड़े-आडम्बर से पिता को वंदन करने जाऊंगा, प्रभात समय सेन्यादि सभते देरी हो गई, भगवान् अप्रतिबद्ध विहारी सूर्योदय होते ही विहार कर गये, बाहुबलि आया, भगवान् को जब नहीं देखा तब उदास होकर कानों में अंगुली डाल के बड़े ऊंचे स्वर से पुकारा, बाबा आदिम, बाबा आदिम, कौन जाने इस ही विधि को यवन लोक काम में लेने लगे, तदनन्तर बाहुबल ने भगवान् के चरणों पर धर्मचक्रतीर्थ की स्थापना करी, वे चरण अभी सिंहलद्वीपांतर्गत सीलोन में विद्यमान हैं, उहां के लोक कहते हैं, आदिम बुद्ध, आस्मान से पहले इहां उतरा था, उसके चरण हैं, एक आधुनिक जैन साधु ने अपणे रचित भाषा ग्रंथ में लिखा है वह धर्मचक्रतीर्थ, विक्रम राजा के अन्त तक तो विद्यमान था पीछे जब पश्चिम देश में मत मतांतर उत्पन्न हो गये तब ॥ वह तीर्थ अस्त हो गया। तदपीछे श्रीऋषभ देवजी बाल्हीक, जोनक, अडंब, (अरब) मक्के में भी चरण हैं, इल्लाकं, सुवर्ण भूमि, पल्लवकादि देशों में विचरने लगे, जिन २ देशवालों ने ऋषभदेवजी का दर्शन करलिया, वह सम्यग्भद्रक स्वभाव वाले होगये, शेष जो रहे वे मन म्लेच्छ, निर्दयी, अनार्य होगये, अनेक कल्पनाके मत माननेलगे, उनों का आचार, विचार विलक्षण ही बनगया, उससमय समुद्र खाड़ी अब है उन स्थलों में नहींथा, जगती के बाहिर था, ऋषभदेव के पीछे पचास लाख क्रोड सागरोपम वर्ष व्यतीत होने पर सगर चक्रवर्त्ति के पुत्र जन्हु इस समुद्र का प्रवाह कैलास पर्वत पर भरत चक्री का कराया जिन मंदिर के रक्षार्थ लाया ऐसा शत्रुंजय महात्म्य ग्रंथ में लिखा है, उस जल से बहुत देश नष्ट हो गये, ऊंचेस्थलों में भाग २ कर मनुष्य बस गये, वह जर्मनी, रूसादि देश हैं। पीछे जन्हु के पुत्र भगीरथ को भेज सगर चक्री पीछा प्रवाह दक्षिण समुद्र में मिलाया, गंगा को फांट कर पूर्व समुद्र में मिलाई तब से गंगा का नाम जान्हवी, भागीरथी कहलाया, इस तरह छद्मस्थपणे विचरते ऋषभदेव को एक हजार वर्ष व्यतीत हो गया, तब विहार करते विनीता नगरी के पुरिमताल नामा बाग में आये तब वड़ वृक्ष के नीचे फागुण

दि एकादशी के दिन, तीन दिन के उपवासी थे, तहां पहले प्रहर में केवल ज्ञान भूत भविष्यत् वर्तमान में सर्व पदार्थों के जानने देखने वाला आत्मस्वरूप रूप प्रगट हुआ, तब चौसठ इंद्र आये, देवताओं ने समवसरण की रचना करी, प्रथम रजतगढ़, सोने के कांगरे, द्वितीय स्वर्णगढ़ रत्न के कांगरे, तीसरा रत्न का गढ़, मणि रत्न के कांगरे, मध्य में मणिरत्न की पीठिका, उस पर फटिक रत्न के ४ सिंहासन, भगवान के शरीर से १२ गुण ऊंचा अशोक वृक्ष की छांह, एकेक गढ़ के चारों दिशा में चार २ द्वार बड़े दरवज्जे के आस पास दो छोटे दरवाजे, बीस हजार पैड़ी एकेक दिशि में। श्री ऋषभदेव के सदृश तीन सिंहासन पर तीन बिंब देवताओं ने स्थापन करा, जब जिस दरवाजे से कोई आता है उस तरफ ही श्रीऋषभदेव दीखते थे, इस वास्ते जगत में चार मुखवाला श्री भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मा के नाम से प्रसिद्ध हुआ, विश्व की पालना करने से लोकों में विष्णु नाम से ऋषभदेव प्रसिद्ध हुआ, जगत को सुख प्राप्त करने से शंकर नाम से ऋषभदेव प्रसिद्ध हुआ, देवतों से अर्चित होने से बुद्ध कहलाये, अथवा बिना गुरु ही ज्ञानवान् सर्व तत्त्व के वेत्ता होने से बुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जब ऋषभदेवजी के केवल ज्ञान की वधापनिका राजा भरत को प्राप्त हुई तब ही आयुधशाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ उसकी भी वधापनिका उसी समय आई, ऋषभदेवजी वनोवास गये, तब से माता मरुदेवा भरत को उपालंभ देती थी हे भरत! तुम सब भाइयों ने मिलके मेरे पुत्र का राज्य छीन के निकाल दिया मेरा पुत्र भूख प्यास शीत उष्ण, डांस, मच्छरादि अनेक दुःख से दुःखी होता [illegible] तुम कभी मेरे पुत्र की सार संभाल लेते नहीं, [illegible] [illegible] में [illegible] उस समय भरत राजा ने मरुदेवा से [illegible] [illegible] तुझे [illegible] तेरा पुत्र कैसा [illegible] [illegible] समवसरण [illegible] मरुदेवा पूछती [illegible] भरत ने [illegible] कहा, मरुदेवा [illegible] सुण मरुदेवा

भरत से पूछती है, ये वाजित्र कहां बज रहे हैं, भरत ने कहा हे माता, पुत्र के सामने देवता बजा रहे हैं तो भी मरुदेवा नहीं मानती है, भरत बोला हे माता, देख तेरे पुत्र का रजत स्वर्ण रत्न मई गृह जिस आगे हजार योजन का इंद्र ध्वज लहक रहा है, कोटान कोटि देव और ६४ इंद्र जिस के चरणों में लुटते जय २ ध्वनि कर रहे हैं, कोटि सूर्य के तेज से देदीप्यमान तेरे पुत्र के पिछाड़ी भामंडल सोभता है, इंद्र चमर ढुला रहे हैं, इस समवसरण की महिमा मैं मुख से वर्णन नहीं कर सकता तू देखेगी तब ही सत्य मानेगी, ऐसा सुण सत्य मान के आंखें मसलने लगी, आंसु निप्पटल हो गई, सब स्वरूप देख मरुदेवा विचारती है, धिक २ पापकारी मोह को, मैं जाणती थी मेरा पुत्र दुःखी होगा, ये इतना सुखी है, मुझे कभी पत्र भी नहीं दिया कि हे माता तूं फिकर नहीं करणा मैं अतीव सुखी हूं, मैमगमणी, ये वीतराग इस मुजब भावना भाते, क्षपक श्रेणी चढ केवल ज्ञान पायकर हस्ति पर ही मुक्ति को प्राप्त हो गई।

तब शोकातुर भरत को इंद्रादिक देवता समझा के भगवान के पास लाये, भगवान ने संसार की अनित्यता बता कर शोक दूर करा, तब से उठावणे की रीति चली, उस समय समवसरण में भरत के पांचसो पुत्र, सातसे पोते, दीक्षा ली, ब्राह्मी ने तथा और भी बहुतसी स्त्रियों ने दीक्षा ली, भरत के बड़े पुत्र का नाम ऋषभसेन पुंडरीक था, वह सोरठ देश में शत्रुंजय तीर्थ ऊपर मोक्ष गया, इस वास्ते शत्रुंजय तीर्थ का नाम पुंडरीकगिरि प्रसिद्ध हुआ।

भरत के पांचसो पुत्रों ने जो दीक्षा ली थी उस में एक का नाम मरीचि था, सो मरीचि ने जैन दीक्षा का पालना कठिन जान अपनी आजीविका चलाने वास्ते नवीन मनः कल्पित उपाय खड़ा किया, गृहवास करने में हीनता समझी, तब एक कुलिंग बनाया, साधु तो मन दंड, वचन दंड, काया दंड, से रहित है और मैं इन तीनों से दंडा हुआ हूं, इस वास्ते मुझे त्रिदण्ड रखना चाहिये, साधु तो द्रव्य भाव कर के मुंडित है सो लोच करते हैं और मैं द्रव्य मुंडित हूं इस वास्ते मुझे उस्तरे से शिर मुंडवाना

चाहिये, शिखा भी रखना चाहिये, साधु तो पंच महाव्रत पालते हैं और मेरे तो सदा स्थूल जीव की हिंसा का त्याग रहो और साधु तो सदा निःकंचन हैं अर्थात् परिग्रह रहित हैं और मुझ को एक पवित्रिका रखनी चाहिये, साधु तो शील से सुगंधित हैं और मुझे चंदनादि सुगंधी लेनी चाहिये, साधु मोह रहित हैं, मुझ मोह युक्त को छत्र रखना चाहिये, साधु पांवों में जूते नहीं पहनते मुझ को उपानत् रखना चाहिये, साधु तो निर्मल हैं, इस वास्ते उनों के शुक्लाम्बर हैं, मैं क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायों से मैला हूं, इस वास्ते मुझ को कषायले, गेरू के रंगे (भगवें) वस्त्र रखना चाहिये, साधु तो सचित्त जल के त्यागी हैं, इस वास्ते मैं छान के सचित्त (कच्चा जल) पीऊंगा, स्नान भी करूंगा। इस तरह स्थूल मृषा वादादि से निवृत्त हुआ, ऐसा भेष मरीचि ने बनाया, इहां से परिव्राजकों की उत्पत्ति हुई।

मरीचि भगवान के साथ ही विचरता रहा, लोक साधुओं से विसदृश लिंग देख के मरीचि से धर्म पूछते थे, तब मरीचि साधुओं का यथार्थ धर्म कहता था, और अपना पाखंड वेष, स्वकल्पित यथार्थ कह देता था, जो पुरुष इस के पास धर्म सुन दीक्षा लिये चाहता, उस को भगवान के साधुओं के पास [illegible] मरीचि [illegible] ग्लान हुआ, साधु [illegible] इस [illegible] मरीचि ने विचारा मैं असंयति हूं इस [illegible] उचित नहीं [illegible]

साधुओं का धर्म मुझे रुचता नहीं, तुम कहो तुमारे पास धर्म है वा, तब मरीचि ने जाना ये बहुल संसारी जीव है, मेरा ही शिष्य होने है, तब स्वार्थ वश कह उठा, उहां भी धर्म है और कुछरक मेरे समीप धर्म है, इस उत्सूत्र वचन के लेश से एक कोटा कोटि सागर काल का में जन्म मरण की वृद्धि करी, कपिल मरीचि का शिष्य हो गया, पखत तक मरीचि तथा कपिल पास कोई भी पुस्तक नहीं था, मुख जबानी मरीचि जो कुछ आचार कपिल को बताया, वो ही कपिल करता रहा, अब कपिल ने आसुरी नामा शिष्य करा, और केई शिष्य करे, उनों को भी कपिल मरीचि की बताई क्रिया आचार पूर्वोक्त ही बताई, मरीचि प्रथम मरा, कितनेक लक्ष पूर्वो वर्ष पीछे मर के पांचमें ब्रह्मदेव लोक में देवता हुआ, अवधि ज्ञान से देखा, मैंने पूर्व जन्म में दानादि क्या अनुष्ठान करा, जिस पुण्य से देवता हुआ, तो स्थूल जीवों की हिंसा टालने आदि क्रिया का फल जाना, अब अपने शिष्यों को ग्रंथ ज्ञान से शून्य जान कर उनों के प्रेम से विचारने लगा ये मेरे शिष्य, मेरी तरह केवल क्रिया, मेरी बताई जानते हैं और कुछ नहीं जानते, मेरा गुरु मरीचि क्रिया तो अपणे मन कल्पित खड़ी करी और करता भी रहा, मगर उपदेश उसका ऋषभदेव कथित जैन साधुओं जैसा था, जब लिंग क्रिया भिन्न है तो कुछ तत्व ज्ञान में भी भिन्नता करनी चाहिये ऐसा विचार कर कपिल ब्रह्मदेव लोक का देवता आकाश में पंच वर्ण के मंडल में स्थित उन शिष्यों को उपदेश करने लगा, अव्यक्त से व्यक्त प्रगट होता है, इतना वचन अपने गुरु का सुन आसुरी ने ६० तंत्र शास्त्र बनाया उस में लिखा, प्रकृति से महान् होता है, और महान् से अहंकार होता है, अहंकार से १६ गण होता है, उस गण षोडश में से पंच तन्मात्रों से पंचभूत, ऐसे २४ तत्व निवेदन करा, अकर्त्ता विगुण भोक्ता ऐसा पुरुष तत्व नित्य चिद्रूप वह प्रकृति भी नहीं, विकृति भी नहीं, ऐसे २५ तत्व का कथन करा, पीछे इस आसुरी के संतान क्रम से शंख नाम का आचार्य हुआ, उस के नाम से इस मत का नाम सांख्य प्रसिद्ध हुआ, वास्तव में मत परिव्राजक संन्यासियों के लिंग, आचारादि मत का

मूल मरीचि हुआ, सांख्य मत का तत्व भगवद्गीता, भागवतादि सांख्य ग्रंथों में प्रचलित है, जैन धर्म बिना सर्व मतों की जड़ इस सांख्य मत से समझनी चाहिये. इस वास्ते ही कपिलदेव को सर्व भगवें कपड़े वाले स्वामी सन्यासी मानते हैं।

अब राजा भरत ने चक्ररत्न का ८ दिन उच्छव करा. तब वह चक्र रत्न सहस्र यक्षाधिष्ठित गगन मार्ग से चला. उसके पीछे सर्व सैन्या से राजा भरत चला, वैताढ्य की दक्षिण श्रेणि तथा उत्तर श्रेणि के ९९ कम ३२ हजार देश ६ खंड को साध के राजा भरत चक्री अयोध्या विनीता पीछा आया. अपने लघु भाइयों को आज्ञा मनाने दूतों के हाथ लेख भेजा. तब लघु भाइयों ने आपस में सम्मति की. राज्य तो अपने सबों को हमारा पिता दे गया है तो फिर हम भरत की आज्ञा कैसे माने. चलो पिता से कहें यदि पिता कह देवेंगे कि तुम भरत की आज्ञा मानो तो मानेंगे. यदि युद्ध करना कहेंगे तो युद्ध करेंगे. ऐसा विचार कर ९८ भाई मिल ऋषभदेवजी के पास कैलाश पर्वत ऊपर गये. भगवान उनों का मनोगत अभिप्राय [illegible] इस गाथ सोलहवां [illegible] सुनाया. श्री सूयगडांग [illegible]

समझा ने भेजी, वे दोनों आके "वीरा म्हारा गज थकी उतरो, गज केवल न होई रे" ऐसा गायन करने लगी, बाहुबल गायन सुण विचारता, पांव उठाया, तत्काल केवल ज्ञान उत्पन्न केवली पर्षदा सरण में प्राप्त हुये।

वेद और ब्राह्मणों की उत्पत्ति।

अब चक्रवर्त्ति भरत साम्राट् ९९ भतीजों को अपने चरणों में लगाय निज २ राज्य को भेज दिया, चंद्रयश, तक्षशिला गया, इस के हजारों पुत्रों से चन्द्र वंश चला, अब भरत अपने भाइयों को मनाने निजापकीर्त्ति मिटाने पांच सौ गाडे पकान्न के लेकर समवसरण में आया और कहने लगा, मैं अपये आतार्ओं को भोजन करा, मेरा अपराध क्षमा कराऊंगा। तब भगवान ने कहा, निमित्त करा हुआ सन्मुख लाया हुआ एवं ४२ दोष युक्त आहार लेणा मुनियों के योग्य नहीं, तब भरत बड़ा ही उदास हुआ और कहने लगा उत्तम पात्रों का आहार कल्पित, मैं किस को दूं, तब शक्रेन्द्र ने कहा, हे चक्री, जो तेरे से गुणों में अधिक होय उनों को यह भोजन दो, तब भरत ने विचार करा, मैं तो अव्रत सम्यक् दृष्टिवंत हूं, मेरे से गुणों में अधिक अणुव्रतधर सम्यक्त्री श्रावक है, तब भरत बहुत गुणवान श्रावकों को यह भोजन कराया और कहा तुम सब प्रतिदिन मेरे यहां ही भोजन करा करो, खेती, वाणिज्यादि कुछ भी मत करो करो, निःकेवल स्वाध्याय करणे में तत्पर रहा करो, और मेरे यहां भोजन कर महलों के द्वार निकटवर्ची रहके ऐसा दम २ में उच्चारण कियाकरो "जितोभवान्वर्धतेभयं तस्मान्माहन माहनेति" तब वे श्रावक ऐसा ही करतेहुये, भरतचक्री भोग विलास में मग्न त्रिलच्य बाजित्र बाजते, जब उनों का शब्द सुणता था,

---

नोट.—(१) इस समय इस वाक्य की नकल श्रीमाली विप्र भोजन समय अन्योक्ति से करते हैं।

तब विचारता था, किसने मुझ को जीता है, विचारता है क्रोध (१) मान (२) माया (३) लोभ (४) इन चार कषायों ने मुझे जीता है, उनों से ही भय की वृद्धि हो रही है इस वास्ते किसी भी जीव को नहीं हनना, इस वाक्य से भरत को बड़ा वैराग्य होता था, तब इन श्रावकों की भक्ति, तन, मन, धन से चक्रवर्त्ती बहुत ही करने लगा, यह भक्ति देख शहर के सामान्य लोक कम कोश भी उन माहनों में आय मिले। तब रसोइया भरत महाराज से वीनती करी, मैं नहीं जान सकता इनों में कौन तो श्रावक है और कौन नहीं, तब आज्ञा दी, तुम इन की परीक्षा करो, तब सूपकार पूछता है, तुम कोण हो, उनोंने कहा हम श्रावक हैं, तब फेर पूछा श्रावक के व्रत कितने, जिनों ने कह दिया, हमारे ५ अनुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत है, एकेक व्रत के अतिचार सब श्रावक के १२४ होते हैं, २१ गुण श्रावक के बतलादिये, उनों को भरत के पास लाया, भरत ने उनों के गले में कांगणी रत्न से तीन २ रेखा करदी, वह रत्न की तरह दमकने लगी, जैसे दियासलाई जल में भिगा रात को अंग पर घसने से चमकती है, चमड़ी को इजा नहीं होती तैसे जो नहीं बता सके उनों को सूपकार ने कहा तुम पाठशाला में पढ़ के साधुओं के पास १२ व्रतादि धारण करो, भरत के हुकम से छह महीने अनुयोग परीक्षा उनों की करते रहे, वे श्रावक माहन जगत् में ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हुये, वे माहन २ शब्द बेर २ उच्चारण करने से लोक उनों को माहन माहन कहने लग गये, जैन धर्म के शास्त्रों में प्राकृत भाषा में उनों को माहन ही लिखा है और संस्कृत में ब्राह्मण बनता है, वह प्राकृत व्याकरण में बंभण और माहन शब्द के रूपका बणता है, अनुयोग द्वार सूत्र में बुड्ढसावया महामाहना, याने बड़े श्रावक, माहमाहन, ऐसा लिखा है, इस तरह ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई, जो माहन दीक्षा ली वह तो साधु होते रहे, अवशेष व्रतधारी श्रावक माहन कहलाये।

भरत ने ब्राह्मणों का सत्कार बढ़ाया, तब दूसरे लोक भी बहुत तरह का दान सन्मान करने लगे, भरत चक्रवर्त्ति ने श्री ऋषभदेवजी के उपदेशानुसार उन ब्राह्मणों के स्वाध्याय के अर्थ श्री आदीश्वर ऋषभदेव की

स्तुति और श्रावक धर्म स्वरूप गर्भित चार आर्य वेद रचे, उनोंका १ संसारदर्शनवेद, २ संस्थापन परामर्शनवेद, ३ ... ४ विद्याप्रबोधवेद, इन चारों में सर्वनय, वस्तु कथन, सोले संस्कार अनेक स्वरूप उनों को पढ़ाये, वह सुविधनाथ अर्हत के शासन तक यथार्थ रहा, पीछे तीर्थ विच्छेद हुआ, तद पीछे वह ब्राह्मणाभासों ने के लालच से उन वेदों में अपणे स्वार्थ सिद्धि की कई श्रुतियां महत्य की डाल दी।

पीछे भरतराय ने शत्रुंजय तीर्थ का संघ निकाला, पहला उद्धार कराया पृथ्वीतल को जिन मंदिरों से अलंकृत करा, अष्टापद पर्वत पर भगवान के उपादेशानुसार आगे होने वाले २३ तीर्थंकरों का वर्ण लंछन देहमान युक्त सिंह निषद्या प्राशाद कराया, एकेक दिशा में चत्तारि, अट्ठ, दस, दोय वंदिया, ऐसे २४ भगवानों की प्रतिमायें स्थापन करी,इस का वर्णन आवश्यक सूत्र में है। भरत ने दंड रत्न से पहाड़ को ऐसा छीला सो कोई भी अपने पांवों के बल ऊपर नहीं चढ़ सके उस के एकेक योजन के फासले पर आठ पगथिये बणादिये, तब से कैलास का अपरनाम अष्टापद प्रसिद्ध हुआ, ऋषभदेव अपणे ९९ पुत्र तथा दश हजार साधु साथ कैलास पर निर्वाण पाये तब से कैलास महादेव का स्थान कहलाया।

भरत चक्री एक दिन सोलह शृंगार पुरुष का धारण कर आदर्श भवन में गया वहां अंगुली की एक मुद्रिका गिरजाने से उसकी अशोभा देख क्रम २ गहना वस्त्र उतार कर देखता है तो विभत्सांग दीखने लगा तब पर पुद्गल की शोभा संसार की अनित्य भावना भाते केवल ज्ञान उत्पन्न भया तब शासन देवता ने यति लिंग लाकर दिया, आप विचरते अनेक भव्यों को उपदेश से तार के मोक्ष प्राप्त भये।

इनों के पट्ट सूर्ययश बैठा, इस ने भी पिता की तरह जिन-गृह से पृथ्वी को शोभित करी, इस का अपर नाम आदित्ययश भी है, इस के हजारों पुत्रों से सूर्य वंश चला, भगवान ऋषभ के कुरु पुत्र से कुरु वंश चला, जिस वंश में कौरव पांडव हुए हैं। सूर्ययश पास काकणी रत्न नहीं

बृहदारण्यक उपनिषद् के भाष्य में लिखा है, यज्ञों का कहने यज्ञवल्क्य, उस का पुत्र याज्ञवल्क्य, ऐसा लेख ब्राह्मणों के बनाये भी है इस वाक्य से भी यही प्रतीत होता है कि यज्ञों की रीति याज्ञवल्क्य से चली है तथा ब्राह्मण विद्यारण्य सायणाचार्य ने वेदों के भाष्य में लिखा है, याज्ञवल्क्य ने पूर्व की ब्रह्म विद्या का वमन सूर्य पास नवीन ब्रह्म विद्या सीख के वेद प्रचलित करा, वह कहलाया, इस वाक्य से भी यही तात्पर्य निकलता है, याज्ञवल्क्य ने प्राचीन वेद त्याग दिये और नवीन रचे ।

जैन धर्म के ६३ शलाका पुरुष चरित्र के आठमें पर्व के दूसरे सर्ग में लिखा है, काशपुरी में दो सन्यासिनियां रहती थीं, एक का नाम सुलसा, दूसरी का नाम सुभद्रा था, ये दोनों ही वेद वेदांग की ज्ञाता थीं, इन दोनों ने बहुत वादियों को वाद में जीता, इस अवसर में एक याज्ञवल्क्य परिव्राजक, उन दोनों के साथ वाद करने को आया और आपस में ऐसी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे वो जीतने वाले की सेवा करे, निदान वाद में याज्ञवल्क्य सुलसा को जीत के अपनी सेवाकारिणी बनाई, सुलसा रात दिन सेवा करने लगी, दोनों यौवनवंत थे, कामातुर हो दोनों विषय सेवने लग गये, सत्य तो है अग्नि के पास हविष्य जरूर पिघलता है इस में शंका ही क्या, वह तो क्रोड़ों में एक ही नरसिंह, कोई एक ही स्थूल भद्र जैसा निकलता है, जो स्त्री समीप रहते भी शीलवंत रहे, इस लिये ही राजा भर्तृहरि ने शृंगार शतक की आदि में लिखा है, यतः—" शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां येनाक्रियंत सततं गृहकर्म्मदासाः, वाचामगोचरचारित्रविचित्रताय, तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय " (अर्थ) उस भगवंत कामदेव को नमस्कार है जिस के नाना आश्चर्यकारी वचन से नहीं कहे जावें, ऐसा चरित्र है जिस में रुद्र, ब्रह्मा, और हरि विष्णु को हिरण जैसे नेत्रों वाली, कान्ताओं ने सदा गृहके काम करनेवाले दास (अनुचर) बना डाला । निदान याज्ञवल्क्य सुलसा काम क्रीड़ा में मग्न, नदी तटस्थ कुटि में वास करते थे, सुलसा के पुत्र

उत्पन्न भया, तद् पीछे लोकापवाद के भय से उस जात पुत्र को पीपल वृक्ष के नीचे छोड़ कर दोनों वहां से चल धरे, क्योंकि संतान होना काम क्रीड़ा की पूर्णतया सबुती है, इस वास्ते इय वार्ता सुभद्रा ने जाणी, उस बालक के पास आई तो बालक पीपल का फल स्वयमेव जो उस के मुंह में गिरा, उस को चबोल रहा था, तब उस का नाम पिप्पलाद रखा और अपने स्थान लाके यत्न से पाला, वेदादि शास्त्र पढ़ाये, पिप्पलाद बड़ा बुद्धिशाली विदग्ध हुआ, बहुत वादियों का मान मर्दन करने लगा, ये कीर्त्ति सुण याज्ञवल्क्य सुलसा, अज्ञानपणे वाद करने आये सुभद्रा मासी के कहने से दोनों को अपने माता पिता जाना, तब बहुत क्रोध में आया. इन निर्दयों ने मुझे मारणार्थ वन में डाल दिया था. अब इनों से बदला लेना राजसभा में प्रतिज्ञा कराई, और कहा अश्वमेधादिक हे याज्ञवल्क्य. तैंने प्रवर्त्तन करा है, ये यज्ञ में हवन किये जाते हैं जो नाना जंतुगण उन की और कराने वाले की और प्रोहित जो वेद मंत्रोच्चारण करता है. इन तीनों की क्या गति होती है. याज्ञवल्क्य और सुलसा ने कहा तीनों स्वर्ग जाते हैं तब पिप्पलाद बोला. पुत्र का पहला धर्म है कि माता पिता को स्वर्ग पहुंचावे. पशुगण तो अवाच्य कहते नहीं कि मुझे स्वर्ग पहुंचाओ. हम छल को नहीं जानते. याज्ञवल्क्य सुलसा पशुयज्ञ को सिद्ध करने कहा. हां माता मेध पिता मेध भी अगर वेदाज्ञा होय तो कर सकते हैं । तब पिप्पलाद ऐसी श्रुति प्रथम ही बना रखी थी वह ऐसी युक्ति से स्थापन करके पिप्पलाद ने कहा तूं मेरा पिता है. ये मेरी माता है मैं तुम को स्वर्ग पहुंचाऊंगा. साक्षी की साक्षी दे दी. पिप्पलाद दोनों को जीते जी अग्नि कुंड में होम दिया. मीमांसक मतका पिप्पलाद मुख्य आचार्य हुआ. इस का वातली नामा शिष्य हुआ. बस जीव हिंसा करणं रूप यज्ञ का बीज यहां से उत्पन्न हुआ. याज्ञवल्क्य के वेद बनाने में कुछ भी शंका नहीं. क्योंकि वेद में लिखा है "याज्ञवल्क्येति होवाच" याज्ञवल्क्य ऐसा कहता हुआ तथा आधुनिक वेदों में जो जो शाखा हैं, वे वेदमंत्रकर्त्ता मुनियों के सबब से ही हैं. इस वास्ते जो आवश्यक शास्त्र में लिखा है कि जो वाताइमा गयुक्त वेद हैं वह सुलसा और याज्ञवल्क्यादिकों

ने बनाये हैं सो सत्य है क्योंकि कितनीक उपनिषदों में विश्वनाद का भी नाम है और और ऋषियों का भी नाम है, जमदग्नि, कश्यप तो वेदों में खुद नाम से लिखा है तो फिर वेदों के नवीन बनने में शंका ही क्या है?

अब तत्पश्चात् इन वेदों की हिंसा का प्रचारक पर्वत नाम का ब्राह्मण हुआ उसका भी कुछ संक्षेप से चरित्र लिखते हैं।

लंका का राजा रावण जब दिग्विजय करने चतुरंगणी सेना युक्त सब देशों के राजाओं को आज्ञा मनाने निकला उस अवसर में नारद मुनि लाठी, मोटे, लात और घूसों का मारा हुआ पुकारता रावण के पास आय रावण ने नारद को पूछा, तुम को किसने पीटा है, तब नारद कहने लगे हे राजाधिराज, राजपुर नगर में मरुत नाम राजा है, वह मिथ्या दृष्टि है वो ब्राह्मणाभासों के उपदेश से हिंसक यज्ञ करने लगा है, होम के वास्ते सौनिकों की तरह वे ब्राह्मणाभास अरोट गरोट करते विचारे निरापराधी पशुओं को मारते मैंने देखा तब मैं आकाश से उतर के जहां मरुत राजा ब्राह्मणों के मध्य बैठा है, उसके समीप जाके मैं कहने लगा, हे राजा यह तुम क्या करते हो, तब राजा मरुत बोला, ब्राह्मणों के उपदेशानुसार देवताओं की तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञ में पशुओं का बलिदान करता हूं, यह महाधर्म है, तब नारद ने कहा, यतः "यूपंछित्वा पशून् हत्वा कृत्वारुधिरकर्दमं यद्येवंगम्यतेस्वर्गे नरके केन गम्यते" हे राजा, आर्य वेदों में ईश्वरोक्त यज्ञ क्रिया इस तरह से लिखी है, सो तुम को सुनाता हूं, सो सुनो, आत्मा तो यज्ञ का यष्टा (करनेवाला) तप रूप अग्नि, ज्ञान रूप घृत, कर्म रूप ईंधन, क्रोध, मान, माया, लोभादि पशु सत्य वचन रूप यूप (यज्ञस्तंभ) सर्व जीवों की रक्षा करनी, ये दक्षणा, ज्ञान दर्शन चारित्र रूप त्रिवेदी ऐसा यज्ञ जो योगाभ्यास (मन, वचन, कायावश) युक्त जो करे वह मुक्त रूप हो जाता है और जो राक्षस बन के बकरा, छागादि, मारके यज्ञ करता है वह करने और कराने वाला दोनों घोर नर्क के चिरकालीन दुःख भोगेंगे, हे राजा तूं सुकुलोत्पन्न बुद्धिमान धनवान् होकर यह अधमाधम अयोग्य पाप से निवर्तन होजा, जो

अग्नि यज्ञ से ही जीवों को स्वर्ग मिलता होय तो थोड़े ही दिनों में यह जीव लोक खाली हो जावेगा, और केवल स्वर्ग ही रह जायगा, यह मेरा वचन सुनते ही अग्नि की तरह धमधमायमान ब्राह्मण मेरे को पीटने लगे, तब मैं अपना प्राण ले भागता हुआ तेरे पास पहुँचा हूं, हे रावण, बिचारे निरपराधी पशु मारे जाते हैं उनोंकी रक्षा करने में तू तत्पर हो तब रावण मरुत राजा के पास गया, मरुत ने रावण की बहुत भक्ति पूजा करी, तब रावण बहुत कोप में आकर मरुत राजा को कहने लगा, अरे नरक का देनेवाला यह हिंसारूप चंडाल कर्म यज्ञ क्यों कर रहा है, क्योंकि धर्म तो दयाहिंसा में है, ऐसा अनंत तीर्थंकरों की आज्ञा है, वही जगत् का हित करणे वाला है, अगर नहीं मानेगा तो इस यज्ञ का फल इस भव में तो मैं देदूंगा, और परलोक में नरक में फल मिलेगा, ऐसा सुनते ही मरुत ने यज्ञ छोड़ दिया, क्योंकि उस समय रावण की ऐसी भयंकर आज्ञा थी, इस कथन से यह भी मालूम होता है कि जो ब्राह्मण लोक कहा करते हैं, आगे राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे, जैन धर्मी रावणादि राजा ने पशु वध रूप यज्ञ बंध कराने पर कहा होगा, तब से ही ब्राह्मणों ने अपने बनाये पुराणों में बलवंत जैनधर्मी राजाओं को राक्षस करके लिखा है, कोई जाणे इस रावण के कथानक का यही तात्पर्य ब्राह्मणों ने लिख लिया होगा।

तब फिर रावण ने नारद को पूछा [illegible] पापकारी पशु वधात्मक [illegible] कहां से चला, तब नारद कहता है शुक्तिमती नदी के किनारे [illegible] उसमें [illegible] मुनि सुव्रत स्वामी, हरिवंशी तीर्थंकर के [illegible] नाम के [illegible] महाबुद्धिमान [illegible] उपाध्याय क्षीरकदंब [illegible] उपाध्याय पास में, [illegible] पाठ करने के [illegible] आते थे, उस समय

चारण, श्रमण दो साधु आकाश मार्ग उड़ते परस्पर वार्ता करते क्षीरकदंब के ३ विद्यार्थियों में से दो नरक जायंगे, एक स्वर्गगामी है। मुनि वचन सुन के उपाध्याय चिन्ता करने लगा, मेरे पढ़ाये नरक ये मुझे बड़ा दुःख है, परंतु इनों में से दो नर्क कौन २ जायंगे, इनों परीक्षा करनी, प्रभात समय गुरु ने, तीन पिष्टमय, कुर्कट वणा इम तीनों को देकर कहा, यत्र कोई भी नहीं देखता होय उस जगह इन को मारना है, तद पीछे वसुराज पुत्र (१) और पर्वत (२) निर्जन वन में जाकर मारलाये। मैं (नारद) नगर से बहुत दूर गया, जहां कोई भी मनुष्य नहीं था, तब मेरे मन में यह तर्क उत्पन्न भई, गुरु महाराज दयाधर्मी है, नहीं मारना ही कहा है, क्योंकि ये कुर्कट मुझे देखता है, और मैं इस को देखता हूं, खेचर लोकपाल, ज्ञानी, इत्यादि सर्व देखते हैं। ऐसा जगत् में कोई भी स्थान नहीं जहां कोई भी न देखता हो। गुरु पूज्य, हिंसा से पराङ्मुख है, निकेवल परीक्षा लेने यह प्रपंच रचा है, तब ऐसा ही गुरु पास चला गया। सर्व वृत्तान्त गुरु को कह सुनाया, गुरु ने मन में निश्चय कर लिया, ऐसा विवेकी नारद ही स्वर्ग जायगा। गुरु ने मुझे छाती से लगाया, धन्यवाद दिया। गुरु ने पर्वत और वसु का तिरस्कार करा और कहा तुमने कैसे कुर्कट को मारा, नारदोक्त बात कही, हे पापिष्ठो, तुम ने मेरा हाथ ही लजाया, क्या करूं, पानी जैसे रंग के पात्र में गिरता है तद्वत् वर्ण देता है, यही स्वभाव विद्या का है, मायों मे भी प्यारे पर्वत और वसु, नरक में जायंगे, अब मैं संसार में नहीं रहता, न कुपात्रों को पढ़ाना, क्षीरकदंब ने दीक्षा लेली, पिता की जगह पर्वत स्थापन हुआ, व्याख्या करने में पर्वत बड़ा प्रवीण था, मैं भी गुरु की कृपा से सर्व शास्त्रों का विशारद होकर अन्य स्थान में चला गया, अभिचन्द्र राजा ने दीक्षा ली, वसु राजा सिंहासन ऊपर बैठा, वसु राजा को एक सिंहासन ऐसा मिला, जब सूर्य का प्रकाश होता तब स्फटिक के सिंहासन पर बैठा हुआ राजा वसु अधर दीखता। सिंहासन लोकों को नहीं दीख पड़ता था, तब लोकों में ऐसी प्रसिद्धि हो गई, राजा वसु बड़ा सत्यवादी है, सत्य के प्रभाव से देवता इसके सिंहासन को अधर रखते है, राजा भी इस कीर्ति को सत्य रखने, सत्य का ही वर्ताव करने

लगा, तब अनेक राजा इस महिमा से वसु की आज्ञा मानने लगे, सत्य हो या असत्य परंतु लोकों में जो प्रसिद्धि हो जाती है वह वसु राजा की तरह जयप्रद हो जाती है। तत्वगवेषी थोड़े ही बुद्धिमान् मिलते हैं।

नारद कहता है, हे महाराजा रावण! मैं एक दिन शुक्तमति नगरी गया। गुरु के गृह गया, तो आगे पर्वत छात्रों को वेद पढ़ा रहा है, उस में एक ऐसी श्रुति आई, अजैर्यष्टव्यमिति, अब यह श्रुति ऋग्वेद में विद्यमान है, इस का अर्थ पर्वत ने ऐसा करा, अज (बकरा) से यज्ञ करना, तब मैंने पर्वत को कहा, हे भ्राता, यह व्याख्या तूं क्या भ्रान्ति से करता है, गुरु खीरकदंब ने तो इस श्रुति का अर्थ इस मुजब कराया था, (न जायंत इत्यजा) जो बोने से नहीं उत्पन्न होय ऐसे तीन वर्ष के पुराने जौ से हवन करना। ये अर्थ तुमको हमको और वसु को सिखाया था, सो तूं कैसे भूल गया? तैंने करा सो अर्थ गुरुजी ने कभी भी नहीं करा था, तब पर्वत बोला, हे नारद, तूं भूल गया, गुरुजी ने मैंने करा वोही अर्थ करा था, क्योंकि निघंटु में भी अजा नाम बकरे का ही लिखा है, तब मैंने कहा, शब्दों का अर्थ दो तरह से होता है, एक तो मुख्यार्थ, दूसरा गौणार्थ, इस श्रुति का गुरुजी ने गौणार्थ करा था, हे भ्राता, एक तो गुरु वाक्य, धर्मोपदेष्टा के और दूसरा श्रुति का अर्थ दोनों को अन्यथा करके तूं महापाप उपार्जन मतकर, तब पर्वत ने कहा, गुरुवाक्यार्थ, श्रुत्यर्थ, दोनों तूं विराधता है। मैं तो यथार्थ ही अर्थ करता हूं अपना सहाध्यायी राजा वसु है। इस को मध्यस्थ करो, जो झूठा होय उस की जिह्वा छेद डालना, तब मैंने इस प्रतिज्ञा को मंजूर करी, क्योंकि सांच को आंच क्या, मैं दूसरों से मिलने गया, अब पीछे से पर्वत की मा ने पुत्र को कहा, हे पर्वत, नारद सच्चा है, मैंने एक वखत तेरे पिता के मुख से इस श्रुति का नारदोक्त ही अर्थ सुणा था, तूं झूठा कदाग्रह मत कर, नारद को बुलाकर घर ही में अपने विस्मृति की क्षमा मांगले, तब पर्वत ने कहा, हे माता, अब तो मैं प्रतिज्ञा कर चुका, उस में मैं फिरूं, नारद तो हट नहीं सकता, तब पर्वत की माता दुर्निवार्य, अपने पुत्र के दुःख से दुःखणी पर्वत की माता, वसु राजा के पास पहुंची।

राजा वसु गुरणी को आती देख सिंहासन से उठ खड़ा होकर कहने लगा मैंने आज आप का क्या दर्शन करा, साक्षात खीरकदंब का ही दर्शन करा, हे माता, आज्ञा करो वो मैं करूं, और जो मांगो सो देऊं, ब्राह्मणी कहने लगी, तू मुझे पुत्र के जीवतव्यरूप भिक्षा दे, पुत्र बिना धान्य का क्या करना है, तब राजा वसु कहने लगा, हे माता, पर्वत पूजने योग्य और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुवत् गुरु के पुत्र साथ वर्ताव करना यह श्रुति वाक्य है, तो फिर आज ऐसा यम ने किस को पत्र दिया है सो मेरे भ्राता पर्वत को मारा चाहता है, तब ब्राह्मणी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया, और बोली जो भाई को बचाना है तो अजा शब्द का अर्थ बकरा बकरी करना, क्योंकि महात्मा जन परोपकारार्थ अपना प्राण भी देदेते हैं, तो वचन में परोपकार करने में तो क्या कहना है, तब वसु बोला हे माता, मैं मिथ्या भाषण कैसे करूं, सत्यवादी प्राणांत कष्ट पर भी असत्य नहीं बोलते, तो फिर गुरु का वचन अन्यथा करना, झूंठी साक्षी देना, ये अधर्म मैं कैसे करूं, तब ब्राह्मणी ने कहा या तो मेरे पुत्र के प्राण ही बचेंगे, या तेरे सत्य व्रत का आग्रह ही रहेगा, पुत्र के पीछे मैं भी तुझे प्राण की हत्या देउंगी, तब लाचार हो राजा वसुने गुरणी का वचन माना। तब पीछे पर्वत की माता प्रमुदित हो घर को आई, वहां बड़े २ पंडित सभा में मिले, अधर सिंहासन राजा वसु सभापति बनकर बैठा, तब अपना २ पक्ष राजा को सुणाया, और मैंने कहा, हे राजा वसु, तू सत्य कहना गुरु ने इस श्रुति का क्या अर्थ करा था, तब बड़े २ पंडित वृद्ध ब्राह्मण कहने लगे, हे राजा, सत्य से मेघ वर्षता है, सत्य से ही देवता सिद्ध होते हैं, सत्य के प्रभाव से ही ये लोक खड़ा है और तू पृथ्वी में सत्य से सूर्य की तरह प्रकाशक है, इस वास्ते तुम को सत्य ही कहना उचित है, इस सुनकर वसु राजा ने सत्य को जलांजलि देकर अजानमेषान् गुरुर्व्याख्यात्इति, अर्थात् अजा का अर्थ गुरु ने मेष (बकरा) कहा था, ऐसी साक्षी राजा वसु ने दी, इस असत्य के प्रभाव से व्यंतर देवतों ने स्फटिक सिंहासन को तोड़ वसु राजा को पटक के मारा। वसु राजा मर के सातमी नरक गया, तद पीछे पिता के पट्ट, राजसिंहासन वसु राजा

के आठ पुत्र पृथुवसु १. चित्रवसु २. वासव ३. राज ४. विमानस ५. विश्ववसु ६. शूर ७. महाशूर ८. ये अनुक्रम गादी पर बैठे, उनों आठों को व्यंतर देवनों ने मार दिया. तब सुवसु नाम का नवमा पुत्र उहां से भाग कर नागपुर चला गया और दशमा बृहध्वज नामा पुत्र भागकर मथुरा में चला गया, मथुरा में राज्य करने लगा, इस की संतानों में यदु नाम राजा बहुत प्रसिद्ध हुआ, इस वास्ते हरिवंश का नाम छूट गया. यदुवंश प्रसिद्ध हुआ, जो विद्यमान समय भाटी बजते हैं, यदु राजा के शूर नाम पुत्र हुआ उस शूर के दो पुत्र हुए, बड़ा शौरी, छोटा सुवीर. बाप के पीछे शौरी राजा हुआ. शौरी ने मथुरा का राज्य तो सुवीर को देकर आप कुशावर्त देश में अपणे नाम का शौरीपुर नगर बसा के राजधानी बनाई. शौरी का बेटा अंधकवृष्णि आदि पुत्र हुए. अंधकवृष्णि के दश पुत्र हुए १ समुद्रविजय, २ अक्षोभ्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान, ६ अचल. ७ धरण, ८ पूरण, ६ अभिचन्द्र, १० वसुदेव।

उनों में समुद्रविजय का बड़ा बेटा अरिष्टनेमि जो जैनधर्म में २२ में तीर्थंकर हुए. जिन का नाम ब्राह्मण लोक भी दोनों वख्त सन्ध्या करते जपते हैं, शिवनाति अरिष्टनेमिः, स्वस्ति वाचन में भी है और वसुदेव के बेटे बड़े प्रतापी कृष्ण वासुदेव जिनको जैनधर्मी ईश्वर कोटि के जीवों में गिनते हैं, दूसरे बलभद्रजी भये।

तथा सुवीर का पुत्र भोजकवृष्णि, भोजकवृष्णि का उग्रसेन, उग्रसेन का पुत्र कंस हुआ, वसुराजा का एक बेटा सुवसु जो भाग के नागपुर गया था, उस का पुत्र बृहद्रथ उसने राज गृह में आकर राज्य करा, उस का बेटा जरासिंधु यह प्रति वासुदेव यह भी ईश्वर कोटि का जीव था, यह वार्त्ता प्रसंगवश लिखदी है।

अब उहां नगर के लोक और विद्वान् ब्राह्मणों ने पर्वत को धिक्कार दिया, और कहा, हे असत्यवादी, आप डूबंता पांडिया, ले डूबा यजमान, तेरी झूठी साक्षी में ऐसा प्रतापी राजा वसु को देवतों ने मार दिया, तूं

महापापी, तेरे मुख देखने से ही पाप लगता है, सबों ने मिल के देश से बाहिर निकाल दिया, तब महाकाल असुर, हे रावण, उसका सहायक हुआ।

रावण ने पूछा, महाकाल असुर कोण था? तब नारद कहता है, हे रावण, इहां नजदीक ही चरणायुगल नाम का नगर है, उस में अयोधन नाम राजा था, उसकी दिति नाम की भार्या उन दोनों से सुलसा नाम पुत्री उत्पन्न हुई, रूप लावण्य युक्त यौवन प्राप्त हुई, सुलसा का स्वयम्बर पिता ने रचा, सर्व राजाओं को बुलाये, उस राजाओं में सगर राजा अधिक था, उस सगर की मंदोदरी नाम की रणवास की द्वार पालिका, सगर की आज्ञा से प्रतिदिन राजा अयोधन के आवास में जाती थी, एक दिन दिति और सुलसा घर के बाग में कदली गृह में गई, उस अवसर पर मंदोदरी भी उनों के पीछे २ वहां जा पहुंची, माता पुत्री की बात सुनने उहां प्रच्छन्न खड़ी रही, दिति सुलसा को कहती है, हे पुत्री मेरे मन में ये चिन्ता है वह मिटानी तेरे आधीन है, प्रथम श्री ऋषभ स्वामी के भरत और बाहुबली दो पुत्र हुये, भरत का, सूर्य यश जिस से सूर्य वंश चला, बाहुबलि का चंद्रयश, जिस से चंद्रवंश चला, चंद्रवंश में मेरा भाई तृणबिंदु हुआ, और सूर्यवंश में तेरा पिता राजा अयोधन है, अयोधन की बहिन सत्ययशा, तृणबिंदु की भार्या से मधुपिंगल नामा उत्पन्न मेरा भतीजा है, इस लिए हे बेटी, मैं तुझे उस मधुपिंगल को देना चाहती हूं, तूं न मालुम स्वयंवर में किस राजा को वरेगी, तब सुलसा ने माता का कहना स्वीकार करा, ये बातें सुन मंदोदरी आकर राजा सगर को सर्व स्वरूप निवेदन करा, तब सगर राजा अपने विश्वभूति पुरोहित जो बड़ा कवि था उस से कहा, उस ने राजों के लक्षणों की संहिता बनाई, उस में सगर के तो शुभ लक्षण लिखा, और मधुपिंगल के अशुभ लक्षण लिखा, उस पुस्तक को संदूक में बंधकर रख छोड़ा, जब सब राजा स्वयंवर में आकर बैठे, तब सगर की आज्ञा से विश्वभूति पंडित वो पुस्तक निकाल कर बोला, जो राजचिन्ह रहित राजा इस सभा में होय, उन को यातो

मार डालना, या स्वयंवर से निकाल देना, ये वचन सब राजों ने अंगीकार करा, अब जो पंडित यथा यथा पुस्तक बांचता जाता है. तथा तथा मधुपिंगल अपने में अपलक्षण मान. लज्जा पात्र बन स्वयंवर से स्वतः निकल गया. तदनंतर सुलसा ने सगर को वर लिया, अब मधुपिंगल उस अपमान से दुःख गर्भित वैराग्य से बालतप कर के मरा. ६० सहस्र वर्षों की आयु वाला महाकाल नामा असुर तीसरी नरक तक नारकियों को दंड दाता परमा-धार्मिक देवता हुआ, अवधि ज्ञान से पूर्व भव देखा, सगर का कपटादि सर्व वृत्तांत जान विचारने लगा, सगर को किसी तरह पापकर्मी बनाकर मारूं, नरक में आये बाद इस से पूरा बदला लूं, तब छिद्र देखने लगा, उस अवसर में उस ने पर्वत को देखा, तब वृद्ध ब्राह्मण का रूप कर के पर्वत को कहने लगा. हे पर्वत, तू ऐसा दुःखी क्यों, मैं तेरे पिता का मित्र हूं, मेरा नाम शांडिल्य है. हम दोनों गौतम उपाध्याय पास पढ़े थे. मैंने सुणा है कि नारद तथा और लोकों ने तुझे दुःखी करा है. अब मैं तेरा पक्ष करूंगा. मंत्रों से लोकों को विमोहित करूंगा, अब पर्वत से मिल के लोकों को नरक में डालने वास्ते उस असुर ने व्याधि भूतादि ग्रस्त लोकों को करना शुरू करा है. पीछे जो लोक पर्वत के वचन जाल में फंस जाता उनों से हिंसक यज्ञ करा कर आरोग्य करा अपने मत में मिलाने लगा. आखर उस असुर ने राजा सगर की राणियों को. पुत्रों को रोग ग्रसित करा. पर्वत ने सोमादि यज्ञ राजा से कराकर उनों को नीरोग करा। तब पीछे राजा पर्वत का भक्त बना महाकाल की प्रेरणा से पर्वत कहता है. हे राजा. स्वर्ग की कामना से इस मुजब कृत्य कर सौत्रामणि यज्ञ कर मद्य पान करने से दोष नहीं. गोसव यज्ञ में अगम्य स्त्री चांडाली तथा माता. बहिन. बेटी आदि से विषय सेवन करने में दोष नहीं. मातृमेध में माता का. पितृमेध में पिता का. वध अन्तर्वेदी कुरुक्षेत्रादि में करता दोष नहीं तथा काछवे की पीठ पर अग्नि स्थापन कर तर्पण करे. यदि काछवा नहीं मिले तो शुद्ध ब्राह्मण की खोपरी पर अग्नि स्थापन कर होम करना क्योंकि खोपरी भी काछुए सदृश ही होती है यह वेदों की श्रुति है इन से हिंसा नहीं है वेदों में लिखा है

यतः सर्वं पुरुषेवेदं यद्भूतंयच्चभविष्यति ।
ईशानोयंमृतत्वस्य यदन्नेनातिरोहति ॥ १ ॥

अर्थात् जो कुछ है सो सब ब्रह्म रूप ही है, जब एक ब्रह्म कौन किस को मारता है, इस वास्ते यथा रुचि यज्ञों में पशु आदि मार उनों का मांस खाओ, इस में कुछ दोष नहीं, क्योंकि देवोद्देश करने मांस पवित्र हो जाता है, ऐसे उपदेश देकर सगर राजा से अंतर्वेदी कुरु आदि में पर्वत यज्ञ कराता हुआ, और जो जीवों को पर्वत यज्ञों में मरवाता उनों को वह महाकाल असुर देव माया से विमानों में बैठाया हुआ को जाते दिखाता, जब लोकों को प्रतीति आगई, तब निःशंक होकर और वधरूप यज्ञ करने लगे, राजसूयादिक यज्ञ में घोड़े को उसके संग अनेक जीवों का वध होने लगा, ऐसे अघोर पापों से सगर और सुलसा मर नर्क को प्राप्त हुए, तब महाकाल असुर ने मारण, ताडन, छेदन भेदनादिक से अपना वैर लिया, हे राजा रावण, पर्वत पापी से यह जीव हिंसा यज्ञ के वास्ते विशेषतया प्रवर्त्तन हुआ. जिसको आपने इस अवसर पर बंध करा, तब रावण नारद को प्रणाम कर विदा करा, इस तरह जैनशास्त्रों में वेद की उत्पत्ति लिखी है, सो आवश्यक सूत्र आचार दिनकर तेसठ शलाका पुरुष चरित्रादि से यहां लिखा है।

नवीन वेदों की उत्पत्ति।

इस वर्तमान काल में जो चारों वेद हैं, इनों की उत्पत्ति डाक्टर मोक्षमूलर साहब, पश्चिमी विद्वान् अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथ में ऐसा लिखते हैं कि वेदों में दो भाग हैं, एक तो छंदो भाग, दूसरा मंत्र भाग, तिन में से छंद भाग में ऐसा कथन है जैसे अज्ञानी के मुख से अकस्मात् वचन निकला हो, इस भाग की उत्पत्ति इकतीस सै वर्षों से हुई है, और मंत्र भाग को बने गुनतीस सौ

ई हुए हैं, इस लिखने में क्या आश्चर्य है, जो किसी ने उलट पुलट के वीन बनादिये हों, इन वेदों पर उव्वट, सायण, रावण, महीधर और कराचार्यादिकों ने भाष्य बनाये हैं, टीका, दीपिका रची हैं, अब उस ाचीन भाष्य दीपिका को अयथार्थ जान के दयानन्द सरस्वती स्वामी ाने मत के अनुसार नवीन भाष्य विक्रम १६३२ संवत् के पीछे बनाया है रन्तु सनातन नाम धराने वाले ब्राह्मण पंडित दयानन्दजी के भाष्य को ामाणिक नहीं मानते हैं, परन्तु अंग्रेजी पढे चारों वर्ण के लोक अगले वेद ात से तथा चारों संप्रदायों के मत से घृणा कर समाज की वृद्धि करते ाते हैं, और जैनधर्मी तो जब से प्राचीन वेद बिगाड़े गये उस दिन से ही कल्पित वेद को ईश्वरोक्त नहीं होने से छोड़ दिया है।

जब भगवान ऋषभदेवजी का निर्वाण कैलास पर्वत पर हुआ, तब सब देवतों के संग ६४ ही इंद्र, निर्वाण महिमा करने को आये, उन सब देवता ओं मे से अग्नि कुमार देवता ने भगवान की चिता में अग्नि लगाई, तब से ये श्रुति लोकों में प्रसिद्ध हुई, "अग्नि मुखावैदेवाः" अर्थात् अग्नि कुमार देवताओं में मुख्य है, और [illegible] बुद्धियों ने तो यह श्रुति का अर्थ [illegible] देवताओं का मुख है, यह प्रत्यक्ष [illegible] आवश्यक सूत्र से जान लेना।

[illegible] लिये, तब श्रावक ब्राह्मण [illegible]

[illegible]

से सभी लोक व्यापारी बन गये, वे किराड़ खत्री बजते हैं, तद पीछे सुभूम चक्रवर्ती राजपूत परशुराम को मार २१ बेर निःब्राह्मणी पृथ्वी करी उस भय से जगत के बहुत ब्राह्मण सुनार आदि हो गये, ४ वर्ण का कृत्य करने लगे तथा लाखों पारस देश में जा बसे वे पारसी बजने लगे, अग्नि पूजना, जनेऊ छिपी हुई कमर में अब ले ही रखते हैं ऐसा ख्यात है। अस्थि पुजाने का व्यवहार देवतों की तरह लोक भी करने लगे, दूसरे दिन चिता शीतल होने से ब्राह्मण श्रावकों ने चिता की भस्मी थोड़ी २ सबों को दी, और अपने मस्तक पर त्रिपुंड्राकार लगाई, तब से त्रिपुंड लगाना शुरू हुआ, संध्या करके ब्राह्मण भस्मी उस दिन से लगाते हैं। ऋषभदेवजी को पालणे में इन्द्र मानने की इच्छा हुई और प्रथम वर्षोपयोगी का दारव भी इन्द्र ने ही किया प्रभु का मिष्ट इष्ट होने से सारी प्रजा ने गुरु को सर्व काम में अग्र नायक माना, दीक्षा लेते इंद्र की प्रार्थना से शिखा के बाल नहीं लोंचे, तब से ही आर्य लोक शिखा मस्तक पर रखना प्रारम्भ करा।

भरत चक्रवर्ति के सूर्ययशा, महायशा, अतिबल, महाबल, तेजवीर्य, कीर्तिवीर्य और दंडवीर्य एवं आठ पाट तक ३ खंड का राज्य करते रहे, दंडवीर्य सेत्रुंजय तीर्थ का भरत की तरह दूसरा उद्धार कराया, असंख्य पाटवारी हुये, सब कोई मोक्ष, कोई सर्वार्थ सिद्ध विमान में गये, इन असंख्य पाटों की व्यवस्था सिद्धान्त गंडिका में लिखा है, तद पीछे जितशत्रु राजा हुये। इति भगवान ऋषभाधिकार संपूर्णम्।

अथ अजितनाथ २ तीर्थंकर का संक्षेप स्वरूप लिखते हैं, अयोध्या नगरी में जितशत्रु इक्ष्वाकु वंशी राजा राज्य करता है, जिसका मूल नाम विनीता है, यह अयोध्या पीछे बसी है, इस में राम लक्ष्मण का जन्म हुआ है, जितशत्रु राजा का छोटा भाई सुमित्र युवराज था, जितशत्रु की विजया देवी राणी थी, उन दोनों के १४ स्वप्न सूचित अजितनाथ नाम का पुत्र हुआ और सुमित्र की यशोमती राणी के भी १४ स्वप्न सूचित, सगर नाम का पुत्र हुआ, ये दोनों पुत्र यौवनवंत हुए तब जितशत्रु राजा और सुमित्र

दीक्षा ले मोक्ष गये। अजितनाथ राजा हुए, और सगर युवराज हुआ, बहुत पूर्व लाख वर्षों तक राज्य कर अजित स्वामी स्वयं दीक्षा ली केवल ज्ञान पाय दूसरे तीर्थंकर हुए, पीछे सगर राजा हुआ, तद पीछे चक्रवर्त्ती हुआ, षट् खंड का राज्य करा, जन्हुकुमार प्रमुख ६० हजार पुत्र हुए, उनों ने दंडरत्न से गंगा नदी को अपने असली प्रवाह से फिरा के कैलास के गिरदनवाह खाई खोद के उस खाई में गंगा को लाके डाला, क्योंकि उनों ने विचार करा, हमारे बड़े पुरुषा भरत चक्री ने जो इस पर्वत पर सुवर्ण रत्नमय २४ तीर्थंकरों का सिंह निषद्या प्रासाद कराया उसको घाती न हो, उस के रक्षार्थ गंगा नदी का प्रवाह खाई में फेरदिया, वह जल नाग कुमार देवतों के भवन में प्रवेश करने से उनों ने ६० हजार पुत्रों को मार डाले, तदनंतर गंगा के जल ने देश में बड़ा भारी उपद्रव करा, तब सगर का पोता जन्हु कुमार का पुत्र भगीरथ ने सगर की आज्ञा से दंडरत्न से पृथ्वी को खोद के गंगा को पूर्व समुद्र में जा मिलाई, इस वास्ते गंगा का नाम जाह्नवी भागीरथी कहा जाता है. सगर चक्री ने शत्रुंजय का तीसरा उद्धार कराया, अन्य भी जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया, तथा यह समुद्र भी जो खाड़ी वजती है, सो भरत क्षेत्र में देवता के सहाय से सगर ही जगती के बाहिर के समुद्र में से लाया है. लंका के द्वीप में वैताढ्य पर्वत के वासिंदे घन वाहन को आपणी आज्ञा से सगर ने प्रथम राजा स्थापन करा, लंका के द्वीप का नाम राक्षस द्वीप है, घन वाहन के वंश वाले राक्षस कहलाये. इस घनवाहन के राजाओं में कलियुग काल के पश्चात इंद्र तुल्य साम्राज्य करता इंद्र राजा हुआ, उसने राक्षसवंश छीन लिया, तब राक्षस वंशी राजा भाग के पाताल लंका में जा रहे, तद पीछे रत्नश्रवा के ३ पुत्र रावण, कुंभकर्ण, विभीषण इंद्र को मार, लंका पीछी ले ली. सगर चक्रवर्ति का विस्तार चारित्र शत्रुंजय माहात्म्य से जान लेना, यह ३३ हजार काव्य ग्रंथ है। सगर अजितनाथजी पास दीक्षा ले केवल ज्ञान पाकर मोक्ष गया, अजित नाथजी भी सम्मेत शिखर पर्वत पर मोक्ष पहुंचे ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण पीछे [illegible] लाख कोडी सागरोपम व्यतीत होने से अजित स्वामी का निर्वाण हुआ, इनों के निर्वाण पीछे [illegible] लाख कोडी सागरोपम का

व्यतीत होने से श्रीशम्भवनाथजी तीसरे तीर्थंकर हुए, राज्य सर्व सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, कुरुवंशी आदिक राजों के घराने में रहा। इति अजित तीर्थंकर सगर चक्रवर्त्ती का संक्षेप अधिकार संपूर्ण।

अब श्रावस्ती नगरी में इक्ष्वाकु वंशी जितारि राजा राज्य करता था। उस के सेना नामे पटराणी, उनों का शंभव नामा पुत्र तीसरा तीर्थंकर हुआ, इनों का विस्तार चरित्र त्रेषठि शालाका पुरुष चरित्र से जाण लेना इति।

तद पीछे कितना ही काल के अनंतर अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु वंशी संवर राजा की सिद्धार्था नामक राणी से अभिनंदन नाम का चौथा तीर्थंकर हुआ, तदनंतर अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु वंशी मेघ राजा की सुमंगला राणी उनों का पुत्र सुमतिनाथ नाम का पांचमा तीर्थंकर हुआ, तद-पीछे कितना काल व्यतीत होने से कोशंबी नगरी में इक्ष्वाकु वंशी श्रीधर राजा की सुसीमा राणी से पद्मप्रभ नाम का छट्ठा तीर्थंकर उत्पन्न हुआ। तद पीछे कितना ही काल व्यतीत होने से वाराणसी नगरी में इक्ष्वाकु वंशी प्रतिष्ट राजा की पृथ्वी नामा राणी से सुपार्श्वनाथ नाम का सातमा तीर्थंकर उत्पन्न हुआ, तद पीछे कितना ही काल व्यतीत होने से चंद्रपुरी नगरी में इक्ष्वाकु वंशी महासेन राजा की लक्ष्मणा नाम राणी से चंद्रप्रभ नाम का आठमां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ। तद पीछे कितना काल व्यतीत होने से काकंदी नगरी में इक्ष्वाकुवंशी सुग्रीव राजा की रामा नामक राणी से सुविधिनाथ नामका अपरनाम पुष्पदंत नवमां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ।

यहां पर्यंत तो राजा प्रजा संपूर्ण जैन धर्म पालते थे और सर्व ब्राह्मण जैन धर्मी श्रावक और चार प्राचीन वेदों के पढ़नेवाले बने रहे। जब नवमें तीर्थंकर का तीर्थ व्यवच्छेद होगया तब से ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैन धर्म के द्वेषी और सर्व जगत के पूज्य, कन्या, भूमि, गौ, दानादिक के लेने वाले जगत में उत्तम और सर्व के हर्त्ता कर्त्ता, मतों के मालक बनने को

कई एक ग्रन्थ बनाये क्योंकि सूना घर देख के कुत्ता भी आटा खाजाता है। शनैः २ नदी देव, पहाड देव, वृक्ष देव, ब्रह्मा देव, रुद्र देव, इंद्र देव, विष्णु देव, गणेश देव, शालग देव इत्यादि अनेक पाखंडों की स्थापना करते चले उन मतों में अपनी स्वार्थ सिद्धि का बीज बोते रहे और भी जो वाममार्ग होली प्रमुख जितने कुमार्ग प्रचलित हुए हैं वे सब इन्हों ही ने चलाया है मानों आदीश्वर भगवान की प्रचलित की हुई अमृत रूप सृष्टि के प्रवाह में जहर डालने वाले हुये क्योंकि आगे तो जैन धर्म और कपिल मत के बिना और कोई भी मत नहीं था। कपिल के मतावलंम्बी भी श्री आदीश्वर ऋषभदेवजी को ही देव मानते रहे। यह असंयतियों की पूजा होनी इस हुंडा अवसर्पिणी में जैन धर्म के शास्त्रों में १० आश्चर्यों में आश्चर्य माना है।

तिस पीछे भद्दिलपुर नगर के इक्ष्वाकु वंशी दृढरथ राजा की नंदा नामा राणी उन्हों का पुत्र श्री शीतलनाथ नाम का दसवां तीर्थंकर हुआ इन्हों के समय हरिवंश कुल की उत्पत्ति हुई वह वृत्तांत लिखते हैं—

कोशांबी नगरी में वीरा नाम का कोली रहताथा। उसकी अति-रूपवती वनमाला नामा स्त्री थी, उसको उस नगर के नृप ने अपने अंतेउर में डाल ली। वीरा कोली उस स्त्री के विरह में ग्रथिल हो हा! वनमाला, हा! वनमाला, ऐसा उच्चारण करता नगर में घूमने लगा, एकदा वर्षाकाल में राजा वनमाला के साथ अपने गोख में बैठा था। दोनों ने ऐसी अवस्था वीरे की देख बड़ा पश्चात्ताप किया और विचारने लगे, हमने बहुत निकृष्ट कृत्य किया, इतने में अकस्मात् दोनों पर विद्युत्पात हुआ। राजा और वन-माला शुभ ध्यान से मरके हरिवास क्षेत्र में युगलपने उत्पन्न भये। वीरा कोली दोनों को मरा सुन के अच्छा होकर तापस बन अज्ञान तपकर किल्विष देवता मर के हुआ। अवधि ज्ञान से उन दोनों को युगलिये पने में देख विचार करने लगा, ये दोनों भद्रक परिणामी स्वर्गगामी हैं, इन वाले मर के देवता होवेंगे तो फिर मैं अपना वैर किस तरह लूंगा ऐसा करूं कि जिस से ये मर के नर्क जावें। अब उन दोनों को वहां से उठाया उस

कितना काल व्यतीत होने से चंपापुरी में इक्ष्वाकुवंशी वसु पूज्य राजा उसकी जया नाम राणी से वासुपूज्य नाम का १२मां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ। इन्हों के वारे में द्विपृष्ठ वासुदेव और विजय बलदेव तारक प्रति वासुदेव को मारके दूसरा नारायण ३ खंड का भोक्ता हुआ।

तदनन्तर कितना काल व्यतीत होने से कंपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्म नाम राजा उसकी श्यामा नाम राणी से श्री विमलनाथ नाम का तेरहवां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ, इन के वारे में तीसरा स्वयंभु वासुदेव, भद्र बलदेव, मेरक नाम प्रति वासुदेव को युद्ध में मार के ३ खंड का राज्याधिपति नारायण हुआ।

तदनन्तर अयोध्या विनीता नगरी में इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन राजा, उन की सुयशा नाम राणी से चौदहवां अनंतनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुआ, जिस को अन्य तीर्थी भी देव मानकर अनंत चौदस करते हैं। उन के वारे में पुरुषोत्तम चौथा वासुदेव, सुप्रभ बलदेव, मधुकैटभ प्रति वासुदेव को युद्ध में मार कर ३ खंडाधिपति नारायण हुआ।

तदनन्तर रत्नपुर नगरी में इक्ष्वाकुवंशी, भानु नाम राजा, उस की सुव्रता नाम राणी से श्रीधर्मनाथ नाम का पनरमा तीर्थंकर उत्पन्न हुआ, उस के वारे में पांचवां पुरुष सिंह वासुदेव और सुदर्शन बलदेव तथा निशुंभ नाम प्रति वासुदेव को मार के त्रिखंडाधिपति नारायण हुआ, जिस को नरसिंह अवतार अन्यतीर्थी कहते हैं, इस पांचों ही नारायण बलदेव प्रति वासुदेव १५ जीव जिनधर्मी अरिहंतों के भक्त थे।

अब १५में तीर्थंकर और १६में तीर्थंकरों के मध्य में तीसरा मघवा नामा और चौथा सनत्कुमार नामा ये दो चक्रवर्ती ६ खंड के भोक्ता साम्राट हुए, ये भी अरिहंतों के भक्त जिनधर्मी थे।

तदनंतर हस्तिनापुरी नगरी में कुरुवंशी विश्वसेन राजा उसकी अचिरा

रानी से १६में शान्तिनाथ तीर्थंकर हुये, जो पहिले गृहवास में तो ५में चक्रवर्ति हुये, दीक्षा लेकर तीर्थंकर हुए।

तिस पीछे हस्तिनापुर नगर में कुरुवंशी सूरनाम राजा उनकी श्रीरानी उनों का पुत्र कुंथुनाथ नामा गृहवास में तो छट्ठे चक्रवर्ति हुए, दीक्षा ले १७में तीर्थंकर हुए।

तिस पीछे हस्तिनापुर में कुरुवंशी सुदर्शन नाम राजा, उन के देवी रानी से अरनाथ पुत्र गृहवास में तो सातमें चक्रवर्ति हुए, दीक्षा ले अठारमें तीर्थंकर हुए।

अठारमें और उगणीसमें तीर्थंकर के मध्य में सुभूम नाम का आठमां चक्रवर्ति हुआ, इस के समय में ही परशुराम हुआ, इन दोनों का वृत्तान्त जैनशास्त्रानुसार लिखता हूं, यह कथा योग शास्त्र में ऐसे लिखी है—

वसंतपुर नाम नगर में जिसका कोई भी संबंधी नहीं ऐसा उच्छिन्न वंशी अग्निक नाम का एक लड़का था वह सथवारे के साथ किसी देशांतर को जाता मार्ग भूल के किसी तापस के आश्रम में गया, तब कुलपति ने उसने पुत्रवत् रक्खा, उस [illegible] अग्निक ने बड़ा घोर तप करा, और बड़ा तेजस्वी हुआ, तब यमदग्नि तापसों में नाम से प्रसिद्ध हुआ, इस अवसर में एक जिनधर्मी विश्वानल नाम का देवता और दूसरा तापसों का भक्त धन्वन्तरि नाम का देवता, ये दोनों देव परस्पर में विवाद करने लगे, [illegible]

धना दिये, रास्ते के चारों गिरद बहुत कीड़े आदि जीव हर जगे दिये, तब राजा जीव दया के भाव से कमल जैसे सुकुमार नंगे पांवों उन कंटक जैसे कंकरों पर ही चल रहा है, पांवों में से रुधिर की ... चल रही है, तो भी जीवाकुल भूमि पर नहीं गया, तब देवता ने और गायन आरम्भ करा, तो भी वो राजा क्षोभायमान नहीं हुआ, ... दोनों देवता सिद्ध पुरुषों का रूप करके कहा, हे राजा, अभी तेरी बहुत है, भोग विलास कर, अंत अवस्था में दीक्षा लेना, तब राजा बोला जो मेरी आयु लंबी है तो बहुत चारित्र धर्म पालूंगा, यौवन में इंद्रियों को जीतना है, वही पूरा तप है, तब देवताओं ने विचारा यह डिगने वाला नहीं है, तदनंतर वे दोनों देव सर्व से उत्कृष्ट यमदग्नि तापस के पास आये, जिसकी जटा वडवृक्ष के वडवाई की तरह पृथ्वी में संलग्न हो रही है, पांवों के पास पृथ्वी में सर्पों की बिंबिया पड़ रही है, ऐसा तपधारी देख परीक्षा करने दोनों देवता चिड़ा चिड़ी का रूप रच कर, यमदग्नि की दाढ़ी में घोंसला बना के बैठ गये, पीछे चिड़ा चिड़ी से कहने लगा, मैं हिमवंत पर्वत जाऊंगा, तब चिड़ी कहने लगी, मैं तुझे कभी नहीं जाने दूंगी, क्योंकि तूं उहां जाकर और चिड़ी में आसक्त हो जायगा, पीछे मेरा क्या हाल होगा, तब चिड़ा कहने लगा, जो मैं पीछा नहीं आऊं तो मुझे गौ घात का पाप लगे, तब चिड़ी कहती है, ऐसी शपथ मैं नहीं मानती, मैं कहूं सो शपथ करे तो जाने दूंगी, तब चिड़ा बोला कहदे, तब चिड़ी कहती है कि जो तूं किसी चिड़ी से यारी करे तो इस यमदग्नि को जो पाप है सो तुझ को लगे चिड़ा चिड़ी का ऐसा वचन सुन यमदग्नि क्रोधातुर हो चिड़ा चिड़ी दोनों को हाथों से पकड लिया और कहने लगा मैं सब पापों का नाश करने वाला दुष्कर तपकर्ता हूं तो फिर ऐसा कौनसा पाप शेष रह गया जिससे तुम मुझे पापी बतलाते हो। तब चिड़ी कहती है, ऋषि, तेरा सब तप निष्फल है, तुम्हारे शास्त्रों में लिखा है अपुत्रस्यगति र्नास्ति स्वर्गनैवच २ याने पुत्र विना गति नहीं है, तो जिसकी गति शुभ न होय उससे अधिक पाप फिर कौन होगा, तब यमदग्नि चित्त में विचार लगा, हमारे शास्त्रों में यह बात लिखी तो है जहांतक स्त्री और पुत्र नहीं

रहती हूं तो मेरा पुत्र भी जंगल में रहेगा इस वास्ते मैं क्षत्रिय चरु करूं जिससे मेरा पुत्र राजा होकर जंगलवास छोड़ दे ऐसा [illegible] क्षत्रिय चरु भक्षण कर गई बहिन को ब्राह्मण चरु भेजके खिलाया। रेणु राम नाम का पुत्र हुआ, बहिन के कृतवीर्य पुत्र हुआ, राम क्षत्री का तेज [illegible] लगा अन्यदा एक विद्याधर अतिसारी इन्होंके आश्रममें चला आया, व्या के वश आकाशगामनी विद्या भूलगया, तब राम ने उसकी औषधी पथ्य से सेवा करी, अच्छा हुआ तुष्ट मन से राम को परशु विद्या दी, राम उस विद्या को सरकंडे के वन में जाकर सिद्ध करी, उस शस्त्र विद्या के सिद्ध होने से जगत् विख्यात परशुराम नाम हुआ, एकदा रेणुका यम-दग्नि को पूछ अपनी बहिन से मिलने हस्तिनापुर गई, उहां रेणुका अपने बहनोई से विषय सेवने लगी, उहां रेणुका के दूसरा पुत्र होगया पीछे यम-दग्नि उस को लाने गया, आगे पुत्र युक्त देखी, रेणुका ने समझाया, मेरे आपके वीर्य की छोड़ बंधी थी, वो इहां अच्छा सुयोग्य खान पान से वध कर पुत्र होगया, यमदग्नि स्नेह के वश लुब्ध होगया सब है वृद्ध तो लुब्ध निश्चय होई जाता है,परंतु कतिपय तरुण पुरुष भी स्त्रियों के राग बद्ध बहुलतया दोष नहीं देखते हैं, यमदग्नि उस पुत्र को कंधारूढ कर स्त्री को आश्रम में ले आया, जब परशुराम ने माता के पुत्र देखा तब क्रोध में आकर माता का और उस बालक का परशु से मस्तक काट डाला, जब पहुंचाने आनेवाले राजपुरुषों ने जाकर यह वृत्तान्त राजा अनंतवीर्य से कहा तब राजा सैन्या लेकर आया, तापसों का आश्रम जलाया, सर्व तापस भाग या कर भगे, यह स्वरूप सुनते ही परशुराम, राजायुक्त सारी सैन्या को काष्ठवत् चीर के गेर दिया, तद् पीछे प्रधानों ने कृतवीर्य को राजा बनाया कृतवीर्य पिता का वैर लेने छुपकर यमदग्नि को मार के भग गया, तब परशुराम पिता को मरा देख हस्तिनापुर जाकर राजा कृतवीर्य को मार के राज्य सिंहासन पर बैठ गया, राज्य पराक्रमाधीन है, उस अवसर में कृत-वीर्य की तारा नाम राणी, गर्भवती भाग के किसी जंगल में तापसों के आश्रम में गई, उन तापसों ने मठ के भूमिगृह में दया से छिपा रखी, उहां चौदे स्वप्न देखा जो स्वप्न, उन से सूचित तारा ने पुत्र जना, सुभूम नाम

रक्खा, अब परशुराम का क्षत्रिय जाति वालों से ऐसा द्वेष बधा कि जहां क्षत्रिय होय उहां ही परशुराम का परशु जाज्वल्यमान होजावे, उन क्षत्रियों का मस्तक परशु से छेद डाले, ऐसे निक्षत्रणी पृथ्वी करता परशुराम एक दिन उसी वन में आ पहुंचा, जहां कि तापसाश्रम में पुत्र युक्त वह राणी थी, परशु चमकने लगा, तब परशुराम बोला, इहां कोई क्षत्रिय है, उसको जल्दी बताओ, तब दयावंत तापस बोले, हे राम! हम पहिले गृहस्थपणे जात के क्षत्रिय थे, तदपीछे राम ने उहां से निकल ७ वेर निःक्षत्रणी पृथ्वी करी, तब कातर क्षत्रिय लोक ब्राह्मण बणने को गले में यज्ञोपवीत डाली, अब परशुराम प्रसिद्ध २ क्षत्रिय राजाओं को मार २ के उनकी दाढाओं से एक बड़ा थाल भरा, आप निश्चिंत एक छत्र राज्य करने लगा, जगे २ ब्राह्मणों को राज्य दिया, एक दिन एक निमित्तक से प्रच्छन्न पूछा, मेरी मृत्यु स्वभाव जन्य है, या किसी के हाथ से, तब निमित्तिये ने कहा, जो आपने क्षत्रियों की दाढाओं से थाल भरा है, वह थाल की दाढ़, जिसकी दृष्टि से खीर बन जायगी और उस खीर को सिंहासन पर बैठ के खावेगा उसी के हाथ तुमारी मृत्यु है, यह सुन परशुराम ने [illegible] उस के आगे एक [illegible] उसकी रक्षा वास्ते [illegible] मेघ नामा विद्याधर [illegible] को पूछने लगा, मेरी जो पद्म श्री कन्या है, उस का वर [illegible] तुम्हारे बहिन का पुत्र, [illegible]

[illegible]

सीधा उहां से निकल हस्तिनापुर में आया, लोक कहने लगे, और तूं ऐसा सुर रूप जात का कौन है? सुभूम ने कहा, राजपूत हूं, लोक कहने लगे, अरे इन्द्र, तूं इस ज्वालिगांगार में क्यों आया है? सुभूम ने कहा, परशुराम को मारने आया हूं, लोकों ने बालक जान के उसकी बात का कुछ खयाल नहीं करा, सुभूम उस दानशाला में पहुंच सिंहासन पर बैठगया, दैव निनियोग से डाढ़ों की खीर बनगई, तब उसको खाने लगा, रक्षक ब्राह्मण सुभूम को मारने दौड़े, तब उन ब्राह्मणों को मेघनाद विद्याधर ने मार डाला, तब कांपता होठों को चबाता क्रोधातुर हो परशुराम भागता २ आ पहुंचा, परशु मारने को चलाया, वह परशु बीच में से टूट पड़ा, उस परशु की विद्या देवी सुभूम के पुण्ययोग से भाग गई। सुभूम उस थाल को अंगुली पर घुमा के परशुराम को मारने फेका, वह चक्र होकर परशुराम का शिर काट डाला, उस चक्र से सुभूम ८ मा चक्रवर्त्ती हुआ।

इस कथा की नकल जो यह कथा ब्राह्मणों ने बनाई है सो यथार्थ नहीं है जैसे वो कहते हैं परशुराम जब रामचन्द्र को मारने आया तब रामचन्द्र नरमाई से पगचंपी करके परशुराम का तेज हर लिया, तब परशु हाथ से गिर पड़ा और फिर पीछा नहीं उठा सका। हे ब्राह्मणों! वह रामचन्द्रजी नहीं थे, सुभूम चक्रवर्त्ती था, इस कथा कल्पित बनाने वालों ने परशुराम की हीनता दूर करने को रामचन्द्रजी की बात लिखी है। एक अवतार ने दूसरे अवतार की शक्ति खेंचली परंतु यह नहीं सोचा कि दोनों अवतार अज्ञानी बन जायेंगे जब परशुराम आपही अपने अंश को कुहाड़े से काटने लगा इस से ज्यादा अज्ञानी कौन होगा? और अवतार की शक्ति निकल जाने से परशुराम तो पीछे शववत् निस्सार होकर मरा तो अवतार शक्ति रहित फिर तुम्हारे विष्णु में कैसे मिला होगा? इत्यादि, तद पीछे सुभूम षट् खंड में विजय कर २१ वेर निब्राह्मणी पृथ्वी करी, अपनी समझ से किसी ब्राह्मण को जीता नहीं छोड़ा तब भय से ब्राह्मण व्यापार, खेती, नौकरी, रसोई आदिक चारों वर्णों का काम करने लगे। अग्नि वेष त्यागन कर वर्णाश्रम प्रायः त्याग दिया। सुभूम उन्हों को अन्यवर्णी समझ कर

मारा नहीं तव ब्राह्मण सुभूम के मरे बाद ऐसे को देना, रानण आदि कर के लिखा। परशुराम क्षत्रियों की हत्या से, सुभूम ब्राह्मणों की हत्या से मर के अधोगति में गये।

इस सुभूम चक्रवर्त्ती से पहिले इस अंतर में छठा पुरुष पुंडरीक वासुदेव, आनंद बलदेव बली नाम प्रति वासुदेव को युद्ध में मार के छठा नारायण हुआ, और सुभूम के पीछे दत्त नाम वासुदेव, नंद नाम बलदेव प्रह्लाद प्रति वासुदेव को मार के सातमा नारायण हुआ।

तदपीछे मिथिला नगरी में इक्ष्वाकुवंशी कुम्भ राजा, प्रभावती राणी से मल्ली नाम पुत्री उगणीसमा तीर्थंकर हुआ।

तदपीछे राजगृही नगरी में हरीवंशी सुमित्र राजा, उसकी पद्मावती राणी से मुनि सुव्रत नामा तीर्थंकर २०मां उत्पन्न हुआ, इनों के समय महापद्म नामा नवमा चक्रवर्त्ती हुआ, इन सबों का चरित्र ६३ शलाका चरित्र में देख लेना, इन महापद्म चक्रवर्त्ती के भाई विष्णुकुमार हुए, उनों का संबंध इहां लिखता हूं।

हस्तिनापुर नगर में पद्मोत्तर नाम राजा, उसकी ज्वाला देवी राणी उनों का बड़ा पुत्र विष्णुकुमार और लघुभ्राता महापद्म हुआ, उस समय में अवंती नगरी में श्री धर्मराजा का मंत्री नमुचि अपर नाम बल ब्राह्मण ने मुनि सुव्रत तीर्थंकर के शिष्य श्रीसुव्रताचार्य्य के साथ धर्मवाद करा, बाद में हारगया, तब रात्रि को नंगी तलवार लेके आचार्य्य को वन में मारने चला, रास्ते में पगस्तंभित होगये, यह स्वरूप प्रभात समय देख राजा ने राज्य से निकाल दिया, तब नमुचि बल उहां से निकल हस्तिनापुर में महापद्म युवराज की सेवा करने लगा, किसी समय तुष्टमान हो कर महापद्म ने कहा, जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग, उस ने कहा किसी समय ले लूंगा, अब राजा पद्मोत्तर विष्णुकुमार पुत्र के संग सुव्रत गुरु पास दीक्षा ले पद्मोत्तर मोक्ष गया, विष्णुकुमार तप के प्रभाव महालब्धि मान हुआ, इस अवसर में सुव्रताचार्य हस्तिनापुर में आये, तब नमुचिबल

ने विचारा, यह वैर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्ति से कही, मैं वेदोक्त महायज्ञ करूंगा इसवास्ते पूर्वोक्त वर चाहता हूं, चक्री कहा, मांग, तब बोला, कितनेक दिनों के लिये आपका राज्य मैं ऐसा वर याचताहूं, तब चक्री सर्वाधिकार कतिपय दिनों का दे, आप अंतेउर में चला गया, अब नमुचिवल नगर के बाहिर यज्ञ पाटक बनाया, मुंज, मेखला, कोपीनादि दीक्षा धार के आसन ऊपर बैठा, अब शहर के सर्व लोक तथा सर्व दर्शनी भेट धर के नमस्कार करा, तब नमुचिवल ने पूछा ऐसा भी कोई है सो नहीं आया है, तब लोकों ने कहा, एक जैन सुव्रताचार्य नहीं आया, यह छिद्र पाके क्रोधातुर होके सुभटों को बुलाने भेजा, राजा चाहे कैसा हो, मानने योग्य है, आचार्य आये, तब आक्रोस कर कहने लगा, तुम क्यों नहीं आये, तुम वेद, धर्म के निंदक हो, इस वास्ते मेरे राज्य से बाहिर निकल जाओ, जो रहेगा, उसको मैं मार डालूंगा, तब गुरु मीठे वचन से समझाने लगे, हे नरेंद्र! हमारा ये कल्प नहीं, जो गृहस्थों के कार्य में जाना, लेकिन अभिमान से नहीं, साधु अपने धर्मकृत्य में लगे रहते हैं, तब बड़ी कठोरता से नमुचिवल ने कहा, ७ दिन के अंदर मेरे राज्य से चले जाओ, तब आचार्य अपने तपोवन में आये, विचार करनेलगे, अब क्या करना, एक साधु बोला, महापद्म चक्रवर्ति का बड़ा भाई विष्णुकुमार महान शक्तिवाला मेरु पर्वत पर है, वो आवे तो अभी शान्ति कर देगा, एक साधु बोला, मैं जा तो सक्ता हूं, पीछा आने की शक्ति नहीं, आचार्य बोले, तुझको विष्णुकुमार पीछा ले आयगा, तब वो साधु उड़के मेरु पर्वत गया, सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णुकुमार उसको हाथ में उठा के आचार्य के चरणों में लगे, गुरु आज्ञा ले, इकेले ही नमुचिवल के पास गये, और कहा, निःसंगी साधुओं से विरोध करना यह नरक का कारण है, साधु किसी का बिगाड़ नहीं करते, तुच्छ चपिक राज के पाने से मदांध! अधम! साधुओं से नमस्कार कराने चाहता है, अरे नमुचिवल! इस अधम कृत्य का अभिमान त्याग दे, जो साधु गुरु से धर्म ध्यान करें, नहीं तो तेरा आगल तेरे को दुःख दाता होगा, साधु चौमासे में विहार करते नहीं, और छः खंड में तेरा राज्य इस अवसर में है, साधु

कहाँ आवे, तब बलस्तब्ध होकर बोला, ज्यादा मत बोलो, राज्य इस काल में ब्राह्मण का है, तेरे बिना बाकी साधुओं से कहदे ५ दिन के मध्य मेरा राज्य त्याग दे, तूं राजा का भाई मेरे मानने योग्य है, तुझको ३ पद जगे रहने को देता हूं. बाकी साधु जो रह जायगा उसको चोरवत् प्राणों से रहित करूंगा, तब विष्णुमुनि ने विचारा, ये साम वचन से माननेवाला नहीं, ये दुष्ट महापापी, साधुओं का परम द्वेषी है, इसकी जड़ ही उखाड़ डालनी चाहिये. कोप में आकर विष्णुमुनि वैक्रियपुद्गललब्धि से लाख योजन का रूप बनाया. एक डग से तो भरत क्षेत्र नापा, दूसरी डग से पूर्व पश्चिम समुद्र नापा और बोला, तीजे कदम की भूमि दे. नमुचिबल थर २ कांपते के तीसरा कदम सिर पर धरा. सिंहासन से गिरा, पृथ्वी में दबादिया, नमुचिबल ७वीं नरक में गया, तब इन्द्र के हुक्म से कोप शान्ति कराने देवतों को आज्ञा दी, देवदेवांगना मधुर गीतादि कानों में सुनाने लगे. ब्राह्मण सब स्तुति प्रार्थना से प्राण दान मांगने. इस मंत्र को गाढ स्वर से बोल २ रक्षा करने २ वर्ग के बांधने लगे।

जैनराजा बलिर्मंत्री ब्राह्मणमंत्री महापदाः।
तेन मंत्रेण रक्षामि रक्ष २ जिनेश्वरः ॥ १ ॥

देवताओं की स्तुति से कोप शान्त हुवे होकर धीरे २ अंग संकोच [illegible] केवल ज्ञान [illegible] [illegible] केवल [illegible]

के राजा दशरथ की कौशल्या राणी से पद्म [रामचन्द्र] नामा बलदेव और सुमित्रा राणी से लक्ष्मण वासुदेव जिसका .. . भया आठमां, रावण प्रति वासुदेव को युद्ध में मारके ३ खंड के हुये ।

परन्तु लौकीक रामायण में रावण के दश शिर लिखे हैं वह यथार्थ बात नहीं हैं, क्योंकि मनुष्य के स्वाभाविक दो शिर भी कभी नहीं हो सक्ते, १० की तो बातही क्या, पद्मचरित्र प्रथमानु योगशास्त्र में लिखा है, रावण के बडा बडेरों से १ नवमाणक्य का हार चला आता था, वो माणक बहोत बडे थे, रावण ने पेटी में से बाल्यावस्था में वह हार निकाल के गले में पहन लिया, चार एकतरफ, पांच एकतरफ, उन नवों में नवमुख दीखता था, और एक असली मुख, इस वास्ते दशकंधर कहलाया, रावण के समय में ही हिमालय पहाड में बद्रीनाथ तीर्थ उत्पन्न हुआ, पार्श्वनाथ पुराण में इसका लेख है, असली पार्श्वनाथ की मूर्त्ति का ही नाम बद्रीनाथ रखागया है।

तद् पीछे मिथिला नगरी में इक्ष्वाकु वंशी विजयसेनराजा उनकी विप्रा राणी से नमिनाथ नामा २१मां तीर्थंकर हुआ, उनों के बारे में हरि-षेण नामा दशमां चक्रवर्त्ति हुआ, और इकीसमें बाइसमें तीर्थंकर के अंतर में इग्यारमां जय नामा चक्रवर्त्ति हुआ ।

तदनन्तर शौरीपुर नगर में हरिवंशी समुद्र विजय राजा, उनकी शिवा देवी राणी से अरिष्टनेमि नाम का २२मां तीर्थंकर हुआ, उनों के बारे में अरिष्टनेमि के चचा के बेटे कृष्ण वासुदेव, राम बलदेव, प्रति वासुदेव जरासिंधु को युद्ध में मारके नवमां नारायण हुआ, कृष्ण वासुदेव को साक्षात् ईश्वर या ईश्वर का अवतार जगत् का कर्त्ता ब्राह्मण लोकों ने माना है, परंतु ये बात उनके जीते दम नहीं हुई, किन्तु उनके परलोक गमन किये पीछे ईश्वरावतार माना है, उसका वृत्तांत ६३ शलाका पुरुष चारित्र में ऐसे लिखा है, जब कृष्ण वासुदेव कोशांबी वन में शरीर छोडा तब काल करके बालुप्रभा पृथ्वी पाताल में गये, जिस को ब्राह्मण लोकों ने अन्योक्ति

करके लिखा है, उनका सारांश नरसिंघ महता की हुंडी में, इस्तरें से है, "चार मास हरि बल के द्वार, आप पधारे श्री करतार" हर वर्ष चार महीने बलि के द्वार जाना, इस सत्य वार्ता की नकल बना डाली है, जिसको देव शयनी कहते हैं, पुनः कार्तिकान्त बाहिर निकलना मानते हैं, जैनियों से द्वेष करते हैं, परंतु वह आप विचारलें, बलि का द्वार किस स्थान में है, भारत ब्राह्मणों के बनाये शास्त्र में लिखा है, वन में सूते कृ-ष्ण को जराकुमार ने बाण से व्यापादन करा, बलभद्रजी ब्रह्मदेवलोक गये, सौ वर्ष जैनसाधु व्रत पाल के उहां देव संबन्धी सर्व कृत्य करते मनुष्य लोक संबंधी =१॥ हजार करीब वर्ष व्यतीत होगये, देवसंबंधी एक दिन ही मानूं बीता ऐसी सुख दशा में जब अवधि ज्ञान से अपने भाई कृष्ण को पाताल की तीसरी पृथ्वी में देखा, तब भाई के स्नेह से वैक्रिय शरीर बना-कर कृष्ण के पास पहुंचे और कृष्ण से आलिंगन करके कहा, मैं बलभद्र तेरे पूर्व जन्म का भाई हूं. मैं तप के प्रभाव पांचमें, ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ हूं. तेरे स्नेह से मिलने आया हूं. तेरे सुखके लिये क्या काम करूं, इतना कह. बलभद्रजी ने जब कृष्ण को हाथों में लिया, तब कृष्ण का शरीर पारे की तरह हाथों से भूमि ऊपर गिरगया. फेर मिलकर पूर्ववत् शरीर बण गया. इत्यादि वृत्तांत करने देख कृष्ण ने जानलिया. यह मेरे पूर्व जन्म का अति वल्लभ बलभद्र भाई है. तब कृष्ण, संभ्रम से, उठके, नमस्कार करा, तब बलभद्रजी ने कहा. हे भ्राता. जो भगवान नेमिनाथ ने कहाथा कि विषय सुख मदिरा. मांस जीवघातादि महादुःखदाई हैं. वह न छोडा उसके विपाक तुम को प्राप्त हुआ. और तुझ कर्म नियंत्रित को मैं स्वर्ग में भी नहीं लेजा सकता हूं. परंतु तेरे स्नेह से तेरे पास में रहे चाहता हूं. तब कृष्ण ने कहा. हे भ्राता. तेरे रहने से भी क्या. मेरे किये कर्म का फल तो मुझे ही अवश्य भोगना हो पड़ेगा. परन्तु मुझ को इस दुःख से वो दुःख अधिक सताता है. जो द्वारिका में सकल परिवार के दग्ध होजाने से इकेला कुसुंबी वन में जरा कुमार के तीर से मरा. मेरे शत्रुओं को सुख और मेरे मित्रों को दुःख हुआ. उनका सब मान नष्ट होगया गये. मरा तो कोई स्वजन पास नहीं सब यदुवंशी बदनाम हुये इस वास्ते हे भ्राता. तू भरतक्षेत्र

में जाकर मेरा और तेरा पूर्व रूप रच कर चक्र धनुष शंख गदा पीतांबर गरुडध्वज वाला, और नील वस्त्र और तालध्वज हल मूसल शस्त्रधर तेरा रूप बनाकर कभी रथ कभी विमान में बैठ अपना रूप सर्व लोकों को दिखाकर कहो, हम राम कृष्ण दोनों अविनाशी पुरुषोत्तम हैं, स्वेच्छा विहारी हैं, यह बात प्रत्यक्ष जब लोक देखेंगे तो सब सत्य मानेंगे तब सर्व अपयश दूर होजायगा, तब बलदेवजी ने तादृश ही करा और कहा भो लोको, हम दोनों के मंदिर मूर्तियां बना कर तुम ईश्वर बुद्धि से पूजो क्योंकि हम ही जगत् के रचने वाले और स्थिति व संहार के कर्ता हैं, हम अपणीं इच्छा से वैकुंठ चले जाते हैं और इच्छा होय तब चले आते हैं, द्वारका हमनें ही रची, हमने ही संहार करा हमारे उपरांत कोई जगत का कर्ता हर्ता नहीं है, ऐसा प्रत्यक्ष देख बलभद्रजी के वचन सुण लोकों ने कृष्ण बलभद्र की प्रतिमा सर्वत्र पूजी, पूजने वालों के मनोरथ बलभद्रजी धनादिक से पूर्ण करने लगे, तब से बहोत लोक हरि भक्त होगये, तदनंतर उन भक्त लोकों में से पठितों नें अपणीं रची पुस्तकों में कृष्ण को पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि विष्णुसहस्र नाम तथा गोपालसहस्रनामावली में अनेक गुणानुवाद रचा क्या जानें जब से बलभद्रजी ने कृष्ण की पूजा कराई तब से ही लोकों नें ईश्वरावतार का कृष्ण को पद दिया है, उस समय की बातें पांच हजार वर्ष हुये हैं, इस हेतु से ही पौराणि कृष्ण को हुये पांच हजार वर्ष कहते हैं, भागवत में ऐसा लिखा है, जब कृष्ण ने अपने विरह विधुर व्रज जनों को देखा उनों को समझाने अपने जैसा रूपधारी को रथ में बैठा के भेजा, तब व्रजवासी साक्षात् कृष्ण को आते देख बड़े आनंदित हुये, तदनंतर मालुम हुआ यह कृष्ण नहीं उधवजी है, इस कथा कौन जाने पूर्वोक्त बलभद्रजी की ही कल्पना से कृष्ण के भक्तों नें रची हो। बाईसमें और

नोट-१-जिस कृष्ण नारायण को हुये पांच हजार वर्ष हुआ उस कृष्ण का पाताल में उत्पन्न होना जैन शास्त्रों में कहीं भी नहीं लिखा, साढा छयासी हजार वर्ष पर हुये कृष्ण से संबन्ध उनका है।

नव लेछिक क्षत्रिय जात के, उज्जयनी का चंद्रप्रद्योत अमलकप्पा नगरी का स्वेत, पोलासपुर का विजय, क्षत्रिय कुंड का नंदिवर्द्धन, वीतभयपत्तन का उदायन, दशार्णपुर का दशार्णभद्र, पावापुरी का हस्तिपाल, पुण्यपालादिक बड़े२ मां राजे भगवान के सेवक जैनधर्मी हुये, आनंद कामदेव शंख पुष्कली आदिक बड़े २ श्रीमंत व्यवहारी सेठ सेनापति, सार्थवाहादिक जैनधर्मी श्रावक थे और जयंती, रेवती, सुलसा एवं लाखों श्राविकाएं थी, शाक्यसिंह, गौतम बुद्ध, वीर प्रभु के विद्यमान समय गया के राजा शुद्धोदन का पुत्र पहिले पार्श्वनाथ के संतानी साधुओं पास दीक्षा ली, बाद ये कुछ प्ररूपना अन्य करने लगा, वह वीर के समय में ही परलोक पाया, तदनंतर १६ वर्ष और प्रभु विचरते रहे, बुद्ध मत को ग्रहण कर्त्ता राजाओं ने अहिंसा परमोधर्मः, वीर परमेश्वर का तथा वीतराग सर्वज्ञपणा देख वीर अर्हंत के लाखों प्रजा तैसे अनेक राजा जिनधर्मी पीछे बणगये, उन श्रावकों में से एक सत्यकी नामा अविरति समकितदृष्टी श्रावक हुआ, उसका संबंध आवश्यक शास्त्र में ऐसे लिखा है, विशाला नगरी का चेटक नाम राजा की छठी पुत्री सुज्येष्ठा कुमारी कन्या ने दीक्षा ली, जैनधर्म की साध्वी वीर प्रभु की होगई, वह किसी अवसर में उपाश्रय के अन्दर सूर्य के सन्मुख आतापना ले रही थी, इस अवसर में पेढाल नामा परिव्राजक सन्यासी विद्या सिद्ध था, वो अपनी विद्या देने को पात्र पुरुष देखता था, विचारता था, यदि ब्रह्मचारिणी का पुत्र होय तो सुनाथ होगा, तब उस सन्यासी ने रात्रि में सुज्येष्ठा को नग्नपणे शीत की आतापना लेती को देखा, तब धुंधविद्या से अंधकार में अचेत करके उसकी योनि में अपना वीर्य संचार करा, सुज्येष्ठा को ऋतुधर्म का आठमा दिन था, गर्भ रहगया, सब साध्वियों में चर्चा होने लगी, पीछे भगवान् ने फरमाया, सुज्येष्ठा अपने-स्ववश यह कृत्य नहीं करा, सब स्वरूप कहा, तब संघ की शंका दूर होगई, पीछे किसी गृहस्थी के घर सुज्येष्ठा के पुत्र हुआ, श्रावकों ने अपने पास पाला, नाम सत्यकी रखा, एक दिन वह सत्यकी साध्वियों के साथ समवसरण में वीर प्रभु के पास गया, उहां कालसंदीपक नामा विद्याधर महावीर प्रभु को वंदन कर पूछने लगा, हे भुवनभास्कर, मेरे को किस से भय है, तब

प्रभु ने फरमाया, यह जो सत्यकी नामा लड़का है. इस से तुमको महाभय है, जब समवसरण के बाहिर सत्यकी निकला. तब कालसंदीपक सत्यकी लड़के को पावों के नीचे गेर के कहा, अरे तूं मुझे मारेगा. इतने में उस सत्यकी का पिता पेढाल सन्यासी आपहुंचा, लड़के को बलात्कार छुड़ा के अपने स्थान लेजा के सर्व अपनी विद्या सत्यकी को दे दी, इस सत्यकी ने अगले छः जन्मों में रोहिणी विद्या देवी को साधा था, पांच जन्म में तो इसको विद्यादेवी रोहिणी ने मारडाला था, छट्ठे जन्म में छः महीना जब आयु शेष रही तब इस ने रोहिणी को साधा नहीं, अब इस विद्यमान ७में भव में पुनः उस विद्यादेवी का साधन प्रारंभ करा, अनाथ मृतक को चिता में जलाना, गीले चमड़े को अपने सारे अंग पर ओढ के बांये पांव के अंगूठे ऊपर एक टांग के बल खड़ा, जहां लग वो चिता का काष्ट जले वहां तक जाप करने लगा, ऐसे विद्या साधते देख वह कालसंदीपक विद्याधर भी आ पहुंचा, इसको डिगाने के लिए बड़े २ काष्ट उस चिता में डाल सात दिन रात्रि अग्नि बुझने नहीं दी तो भी सत्यकी एकांग ही खड़ा रहा ऐसा सत्व देख रोहिणी विद्यादेवी प्रसन्न हो कालसंदीपक को कहने लगी, भागजा मत विघ्न कर, मैं इसके सिद्ध हो गई, कालसंदीपक भाग गया, तब देवी कहने लगी, हे सत्यकी, मांग २ वर, सत्यकी ने कहा मेरे मस्तक द्वार से मेरे अंग में प्रवेश कर जा, तब रोहिणी ने प्रवेश करा, मस्तक में खड्डा गिरगया, देवी तुष्टमान होकर उस स्थान तीसरे नेत्र का चिन्ह कर दिया, तब सत्यकी त्र्यम्बक त्रिनेत्र नामों से विख्यात हुआ, तदपीछे सत्यकी ने विचारा, मेरी माता साध्वी सती का ब्रह्मव्रत. इस पेढाल ने खंडित कर डाला इस वास्ते प्राण दंड के योग्य है, तत्काल पिता को पछाड़ के मार डाला, तब लोकों ने सत्यकी का रुद्र (भयानक) नाम धरा, क्योंकि निज पिता को जिस ने मार डाला. ऐसे शंकर से ज्यादा भयानक और कौन होगा, तदपीछे कालसंदीपक को मारने चला, इस को आता देख कालसंदीपक इस को धोका देने ३ नगर विद्या से रचे. उस में ढूंडे तो उस में प्रवेश कर जावे, तब सत्यकी ने विद्या से तीनों नगर जला दिये, तब त्रिपुरारी नाम हुआ, तब कालसंदीपक भाग के समुद्र के पाताल कलशे में जा छिपा.

तब सत्यकी समुद्र को हाथों से ढूंढता आखिर कालसंदीपक को मार गेरा, इस बात को ही लोकों ने कहना शुरू करा महादेव ने समुद्र को मथा, बाद सत्यकी १४ हजार विद्या का जानकार विद्याधरों में चक्रवर्ती होगया, बाद सत्यकी त्रिकाल गये तीर्थंकरों को वंदना करता कैलास पर सिंह निषद्या प्रासाद के अर्हन् प्रतिमाओं को द्रव्य भावार्चा करते देख ताण्डवादि नृत्य प्रभु सन्मुख भाव शुद्ध कर्त्ता देख के शक्रेन्द्र नें महेश्वर नाम सत्यकी का रक्खा,इसके दो शिष्य मुख्य हुये एक तो नंदीश्वर दूसरा नांदिया, और भैरव, शिनायक, भैरवादि शिष्यगण उनों के संतान कालांतरलिये हुए, उस में नांदिया शिवा महेश्वर की शिष्यनाई हुई से वृषभ का रूप रखकर महेश्वर को अपने पर आरूढ कर अनेक स्थानमें क्रीडा कुतूहल कराते फिरता महेश्वर भगवान महावीर स्वामी का परम भक्त अखण्डित समकित दृष्टी श्रावक था बड़ा कामी था। ब्राह्मणों के साथ उस के बड़ा विरोध होगया था, तब [illegible] ब्राह्मणों की सैकड़ों ही कुमारी कन्याओं को बिगाड़ा, अन्य लोक तथा राजा प्रमुखों की बहु बेटियों से काम क्रीडा करने लगा लेकिन उस को विद्याओं के भय से उस को कुछ कोई भी कह नहीं सकता था, जो कभी कोई रोक टोक करता सो वह मारा जाता था, महेश्वर ने विद्या से एक पुष्पक नाम का विमान बनाया, उस में बैठ के फिरता मद्य भंग धतूरादि पान करता। एक दिन महेश्वर उज्जैन नगरी गया, वहां चन्द्र प्रद्योत की एक शिवा रानी को छोड़ के [illegible] के साथ [illegible] भोग करा और भी [illegible] की बहु बेटियां [illegible] प्रद्योत हाथ उठा इस को मारने का भाव रखाया, मगर कोई युक्ति नहीं चलती थी। भगवान महावीर उस समय निर्वाण पाये थे, उस उज्जैन नगरी में एक उमा नाम वेश्या बड़ी रूपवती रहती थी, उस का यह काम था जो कोई इतना धन दे वह सेज में सोया करे, एक दिन महेश्वर उस उमा के घर गया तब उमा ने महेश्वर के सन्मुख दो पुष्प करे एक तो खिला, दूसरा बिना खिला हुआ, तब महेश्वर ने खिले पुष्प के तरफ दृष्टि रक्खी तब उमा ने महेश्वर के हाथ में बिना खिला हुआ पुष्प [illegible]

ौर कहा ऐसे पुष्प तेरे योग्य है, समस्या इन में ऐसी थी के तेरे योग्य । खिले पुष्प की तरे कुमारी कन्याएं हैं, मैं तो विकासित पुष्प की तरे , तब महेश्वर उन के हाथ में खुला पुष्प ले लिया और कहा तूं मेरे े बहोत वल्लभ है, ऐसा कह उस से भोग मग्न हुआ, वह नायका ाद विलास से महेश्वर को काम कला में ऐसा वश करा, सो महेश्वर को ुमा विगर चैन नहीं होता था, उमा के घर रहने लगा, उमा नचावे ्यों नाचता था, इन बात की खबर राजा चंड प्रद्योत को हुई, अब महे- श्वर किसी दिन कैलास पर गया, तब उमा को चंड प्रद्योत राजा ं बुला कर बहोत आदर सत्कार कर बहोत सा धन दिया और कहा : उमा, तूं महेश्वर से ऐसा पूछ के आप के पास किस वक्त विद्या नहीं भी रहती है और नहीं रहती । तदा एक समय काम प्रचिल महेश्वर से उमा ने पूछा तब महेश्वर ने कह दिया जिस समय विषय सेवता हूं उस समय विद्या देवी मेरे शरीर में से निकल के दूर होजाती है, तब उमा प्रच्छन्न जा के राजा चंद्र प्रद्योत से संपूर्ण वृतांत कह दिया तब राजा उमा को कहा, अब हम इस को भोग भोगते को मारेंगे, उमा ने कहा ऐसा न हो जावे तो साथ ही में सुभट हम को ही मार डाले. चंद्र प्रद्योत ने कहा तुम्ह को नहीं मारेंगे । तब राजा ने गुप्त अपने सुभटों को उमा के घर में छुपा रखा, रात्रि में मदांध महेश्वर रात्रि से आकर निःशंक उमा के संग विषयमग्न एक शरीरवत् होगया तब सुभट ने ऐसा खड्ग का प्रहार मारा सो दोनों का मस्तक धड़ से जुदा होगया. एकाएक प्रहार से मरने को दो को शब्द उच्चारण करा. दोनों अधोगति गये. इनके मरने से सब प्रजा का त्रास मिट गया । तब महेश्वर की विद्यादेवी ने उनके शिष्य नंदीश्वर को अपना अधिष्ठाता बनाया. तब नंदीश्वरादि शिष्यों ने अपने गुरु को इस विटंबना से मरा सुना, तब विद्या ने उनको पर शिक्षा दी और [illegible] [illegible] में [illegible] करने लगा. [illegible] तब [illegible] हूं. [illegible] हूं. मैं किसी [illegible] नहीं. [illegible] हूं. [illegible]

करने पर ये सर्व लोक स्तुति कर नमन कर अपराध की क्षमा मांगने लगे, तब नंदीश्वर ने कहा जैसे मैं उमा के साथ रत करता था तद्रूप योनि में स्थापित लिंग, ऐसा स्वरूप बना के तुम पूजा करो तो मैं तुम सबों को शीतल छोडूंगा, प्रसन्न हो वांछित पूरूंगा, तब मरता क्या नहीं करता इस मरण भय से वैसा ही स्थापनकर भग लिंग की पूजा करी, नंदीश्वर ऐसे लोकों को भय दिखादिखा के रुद्रालय सर्वत्र कराये, मैंने तुम सब लोकों को दुःख करा, इस वास्ते तुम मेरा जाप शंकर नाम से करो क्योंकि, मैंने उपद्रव टाला, इस वास्ते मेरा नाम शिव है, लोकों ने भय से सब अंगीकार करा, इसतरह ११वां रुद्र महावीर स्वामी के निर्वाण पीछे [illegible] वर्ष बीतने से देव करके शिष्यों ने पुजाया, इस नंदीश्वर नंदी के धारण वाले नाथजी, कालबेलिया, पूंगी बजाके सांप पकड़नेवाले इन्हीं में हैं। कनीपाव मछंदर, गोरख वगैरह हुये हैं।

महावीर प्रभु के विद्यमान में राजगृह नगर में श्रेणिक (भंभसार) राजा के चेलना नाम राणी से अशोकचन्द्र (कोणिक) नाम का पुत्र हुआ, परन्तु श्रेणिक के साथ कोणिक का पूर्व जन्म का वैर था, इसवास्ते कोणिक [illegible] दीक्षा लिये पीछे श्रेणिक पिता को काष्ट के पींजरे में डाल के आप राजा होगया, सो कोरड़े मारता। एक दिन माता के मुख से सुना कि तेरे बाप को तूं जैसा वल्लभ था, ऐसा कोई भी पुत्र नहीं था, मैंने तुझे जनते ही अशोक वन में डाला दिया था, उस काल में कुर्कट ने तेरी अंगुली कतरी, वह वृत्तान्त सुन तेरे पिता ने मुझे बहुत धिक्कारा और जाकर तुझे उठा लाया, मुझे पालने को कहा, वह अंगुली में पीप पड़ गया, तब तू रोता, तेरा बाप उस को मुख २ मुख में तेरी अंगुली रखी रखी, इत्यादि अनेक तरह तेरे पर प्यार करा, जिसका बदला तैंने पिता से ऐसा करा, यह बात सुनते ही कोणिक बड़ा दुःखी हुआ, और अपनी करतूत से लज्जित हो, कुहाड़ा लेकर दौड़ा कि पिता का पींजरा तोड़ फिर सिंहासन बैठाऊंगा, तब श्रेणिक कुहाड़ा लेकर कोणिक को आते देखा मन विचार करा, अब यह मेरा टुकड़ा २ करेगा, तब श्रेणिक मुद्रिका का

निकाल खा गया, जब पींजरा तोड़ा, आखिर पिता को मरा पाया, बहुत रोया, पीटा, इस दुःख की ऐसी ज्वाला कोणिक के लग गई, सो पिता की जो वस्तु देखे और रोवे, तब प्रधानों ने प्रच्छन्न ब्राह्मणों से एक पुस्तक ऐसी लिखवाई जो पुत्र अपने मरे हुए पिता को पिंड प्रदान, गौ दान, शय्यादान, वस्त्र, गहना ब्राह्मणों को देता है, वह सर्व श्राद्धादि सामग्री पिता को प्राप्त होती है, उस पुस्तक को प्रथम प्राचीन पत्रों पर लिखा कर धूंए में रख पुरानी बना डाली, राजा कोणिक पिता के महल अस्त्र, शस्त्रादि देख कर व्याकुल होता, चंपा नगरी नई बसाई, सर्व सामग्री नवीन तया बनवाई, तो भी हाय मैं कपूत ने पिता की सेवा कुछ भी नहीं करी, इस दुःख से खान पान स्नान, राज्य कार्य सब छोड मूढ बन गया, तब प्रधान मंत्री समझाने लगे, हे राजेन्द्र! मरे बाद भी जो पुत्र पिता के वास्ते सर्वस्व देता है, श्राद्ध करता है, वो सर्व पिता को पहुंच जाता है, राजा ने कहा, इस बात की सबूती क्या, तब पंडित ब्राह्मणों ने वह पुस्तक सुनाया, तब राजा कोणिक ब्राह्मणोक्त पिता की भक्ति से सब कुछ ब्राह्मणों को दिया, राजा श्रेणिक मांस भक्षी था, स्वार्थपारायणों ने मांस पिंड देना, हिरण बकरा आदि जीवों के मांस से ब्राह्मण भोजन श्राद्ध करना मनुस्मृति में लिखा, इस तरह गरुड़ पुराण बना, तब से मृतकों को पिंड प्रदान श्राद्धादि प्रवृत्त हुए, यथा राजा तथा प्रजा भी राजा की श्रद्धा दृढ़ करने श्राद्ध करने लगगये, जो लौकिक में प्रसिद्ध है, राजा कर्ण ने श्राद्ध चलाया, सो इस कोणिक ही को कर्ण नाम से लिख लिया।

पार्श्वनाथ स्वामी के चरण स्पर्श से वाराणसी में पंचकोशी गंगा पवित्र तीर्थ मानना लोकों ने प्रारंभ करा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिक ने अपना पाप दूर करने किसी ने चरणों में, किसी ने कमंडल में और किसी ने मस्तक में गंगा को धारण करी, परद्रोही, बाल हत्या, स्त्री हत्या, ब्रह्म हत्या, पारदारिक, चोरादिकों के सब पाप गंगा में लोक डालते हैं, वह पाप सब निरदोषी भगवान् पार्श्वनाथ के स्पर्श से मुक्त हुआ, हरिवंश पुराण में इन्द्र ने गंगा से पूछा है, उहां ये पाप संबंध गंगा का सब लिखा है।

अग्नि का पुत्र जैनाचार्य अत्यन्त वृद्ध, गंगा नदी उतरे को केवल ज्ञान हुआ, तब से गंगा तीर्थ का महात्म देवतों ने बधाया, गया तीर्थ प्रसिद्ध हुआ, ये अग्नि का पुत्र आचार्य, प्रयाग में मोक्ष गये, देवतों ने महिमा करी, तब से लौकिक में प्रयाग तीर्थ प्रगट हुआ।

कोणिक के पुत्र उदाई ने पाडलीपुर (पटना) नगर बसा के राजधानी करी, इस के पाटानुपाट अशोक भी राजा हुआ, उसने जैनधर्म को छोड़, बौद्ध धर्म की वृद्धि करी, जगे २ शिलस्थंभों में बौद्ध धर्म के अनुसार, उपदेश खुदवा के गड़वाये, उस में अपना नाम प्रियदर्शी महाराजा अशोक का पहिला फरमान "अहिंसा परमो धर्मः" इत्यादि चौदह स्थान २ उदेश्य के इस काल में मिले हैं, बाकी लड़ाई दंगों में नष्ट भ्रष्ट हो गये।

तदपीछे राजा संप्रति हुआ उस ने जैनधर्म की बड़ी वृद्धि करी।

पटने में नवनंद चन्द्रगुप्तादि सर्व जैनधर्मी राजा शाहनशाह हुये, जिन जैनधर्मी राजाओं का व्यवहार, कहां तक जैनधर्म फैल रहा था, सो सब आवश्यक सूत्र, वीर चरित्र, कल्पसूत्र, परिशिष्टपर्वादि ग्रंथों से जान लेना।

इति श्रीमज्जैनदिग्विजयपताकायां श्रीऋषभादि महावीर पर्यंत जैनशासन उदे वृत्तान्त वर्णनो नाम प्रथमांशाम सम्पूर्णम्।

बावन बोल का नाम।

१. श्री तीर्थंकर का नाम.
२. च्यवन तिथि.
३. किस विमान से आये.
४. किस नगरी में जन्म हुआ.
५. जन्म तिथि.
६. पिताओं का नाम.
७. माताओं का नाम.
८. किस नक्षत्र में जन्मे.
९. जन्म राशि.
१०. लांछन का नाम.
११. शरीर के उच्चपणे का मान.
१२. आयु के वर्ष का प्रमाण.
१३. शरीर का वर्ण.
१४. पदवी.
१५. विवाह या कुमार.
१६. कितने जनों के साथ दीक्षा ली.
१७. दीक्षा कौनसी नगरी में ली.
१८. दीक्षा दिने कितना तप.
१९. प्रथम पारणे क्या आहार मिला.
२०. प्रथम पारणे का घर.
२१. कितने दिनों का पारणा.
२२. दीक्षा की तिथि.
२३. छद्मस्थ पणे का कालमान.
२४. किसनगरीमेंकेवलज्ञानप्राप्तहुआ.
२८. गणधरों की संख्या.
२९. साधुओं की संख्या.
३०. साध्वियों की संख्या.
३१. वैक्रिय लब्धिवंतों की संख्या.
३२. अवधि ज्ञानियों की संख्या.
३३. केवल ज्ञानियों की संख्या.
३४. मनः पर्यवज्ञानियों की संख्या.
३५. चौदह पूर्व धारियों की संख्या.
३६. वादियों की संख्या.
३७. श्रावकों की संख्या.
३८. श्राविकाओं की संख्या.
३९. शासन के यक्षों का नाम.
४०. शासन के यक्षणियों का नाम.
४१. प्रथम गणधर का नाम.
४२. प्रथम आर्या का नाम.
४३. मोक्ष होने का स्थान.
४४. मोक्ष पहुंचने की तिथि.
४५. मोक्ष दिने तप.
४६. मोक्ष जाने के आसन.
४७. परस्पर अंतर का मान.
४८. गण नाम.
४९. योनि का नाम.
५०. मोक्ष परिवार.
५१. सम्यक्त्व पाये पीछे मोहटेभव.

२५. ज्ञानोत्पत्ति दिने कितना तप. ५२. किस कुल में उत्पन्न हुए.
२६. किस वृक्ष के नीचे दीक्षा ली. ५३. गर्भवास का कालमान.
२७. किस तिथि में ज्ञान उत्पन्न हुआ.

---

१. श्री तीर्थंकर का नाम.	१ श्रीऋषभदेव.	२ श्री अजितनाथ.	३ श्रीसंभवनाथ.
२. च्यवन तिथि.	आषाढ वदी ४.	वैशाख सुदी १३.	फाल्गुनसुदी ८.
३. विमान नाम.	सर्वार्थ सिद्धि.	विजय विमान.	ऊपरला ग्रैवेक
४. जन्म नगरी.	विनीता भूमि.	अयोध्या.	सावत्थी.
५. जन्म तिथि.	चैत्र वदी ८.	माह सुदी ८.	माह सुदी १४.
६. पिता का नाम.	नाभि कुलकर.	जितशत्रु.	जितारि.
७. माता का नाम.	मरुदेवी.	विजया.	सेना.
८. जन्म नक्षत्र.	उत्तराषाढा.	रोहिणी.	मृगशिर.
९. जन्म राशि.	धन.	वृष.	मिथुन.
१०. लांछन नाम.	वृषभ.	हस्ती.	अश्व.
११. शरीर मान.	५०० धनुष.	४५० धनुष.	४०० धनुष.
१२. आयुमान.	८४ लक्ष पूर्व.	७२ लक्ष पूर्व.	६० लक्ष पूर्व.
१३. शरीर वर्ण.	सुवर्ण वर्ण.	सुवर्ण वर्ण.	सुवर्ण वर्ण.
१४. पदवी राज की.	राज पदवी.	राज पदवी.	राज पदवी.
१५. पाणी ग्रहण.	विवाह हुआ.	विवाह हुआ.	विवाह हुआ.
१६. कितनेंसाथदीक्षा.	४००० साधु.	१००० साधु.	१००० साधु.
१७. दीक्षा नगरी.	विनीता.	अयोध्या.	सावत्थी.
१८. दीक्षा तप.	दो उपवास.	दो उपवास.	दो उपवास.
१९. प्रथम पारणे का आहार.	इक्षु रस.	परमान्न खीर.	परमान्न खीर.
२०. पारणेकास्थान.	श्रेयांस के घर.	ब्रह्मदत्त के घर.	सुरेंद्रदत्तके घर.

४४. मोक्ष तिथि.	माघ वदी १३.	चैत्र सुदी ५.	चैत्र सुदी ५.
४५. मोक्ष संलेषणा.	छः उपवास.	एक मास.	एक मास.
४६. मोक्ष आसन.	पद्मासन.	कायोत्सर्ग.	कायोत्सर्ग.
४७. अंतरमान.	५०लाखकोटीसा.	३०लाखकोटीसा.	१०लाखकोटीसा
४८. गण नाम.	मानवगण.	मानवगण.	देवगण.
४९. योनि नाम.	नकुल योनि.	सर्प योनि.	सर्प योनि.
५०. मोक्ष परिवार.	१००००.	१०००.	१०००.
५१. भव संख्या.	तेरह भव करा.	तीन भव करा.	तीन भव करा.
५२. कुल गोत्र नाम.	इक्ष्वाकु कुल.	इक्ष्वाकु कुल.	इक्ष्वाकु कुल.
५३. गर्भ कालमान.	९मास चार दिन.	८मास २५ दिन.	९मास ६ दिन.

---

१. श्री तीर्थंकर का नाम.	४श्री अभिनंदन.	५श्री सुमतिनाथ.	६श्री पद्मप्रभ.
२. च्यवन तिथि.	वैशाख सुदी ४.	श्रावण सुदी २.	माघ वदी ६.
३. विमान नाम.	जयंत विमान.	जयंत विमान.	उपरिम ग्रैवेयक.
४. जन्म नगरी.	अयोध्या.	अयोध्या.	कौसुंबी.
५. जन्म तिथि.	माघ सुदी २.	वैशाख सुदी ८.	कार्तिक वदी १२
६. पिता का नाम.	संवर राजा.	मेघ राजा.	श्रीधर राजा.
७. माता का नाम.	सिद्धार्था.	मंगला.	सुसीमा.
८. जन्म नक्षत्र.	पुनर्वसु.	मघा.	चित्रा.
९. जन्मराशि.	मिथुन.	सिंह.	कन्या.
१०. लांछन नाम	बंदरका.	क्रौंच पक्षी का.	पद्म कमल का.
११. शरीर मान.	३५० धनुष.	३०० धनुष.	२५० धनुष.
१२. आयुमान.	५० लाख पूर्व.	४० लाख पूर्व.	३० लाख पूर्व.
१३. शरीर का वर्ण.	सुवर्ण वर्ण.	सुवर्ण वर्ण.	रक्त वर्ण.
१४. पदवी राज की.	राजा.	राजा.	राजा.
१५. पाणिग्रहण.	विवाह.	विवाह.	विवाह.

१६. कितनेनाथदीक्षा	१००० साधु.	१००० साधु.	१००० साधु.
१७. दीक्षा नगरी.	अयोध्या.	अयोध्या.	कौसुंबी.
१८. दीक्षा तप.	दो उपवास.	दो उपवास.	दो उपवास.
१९. प्रथम पारणे की वस्तु.	खीर.	खीर.	खीर.
२०. पारणे का स्थान.	इंद्रदत्त घर.	पद्म घर.	सोमदेव घर.
२१. कितने दिन का पारणा.	२ दिन.	२ दिन.	२ दिन.
२२. दीक्षा तिथि.	माघ सुदी १२.	वैशाख सुदी ९.	कार्तिक वदी १३.
२३. छद्मस्थ काल.	१८ वर्ष.	२० वर्ष.	६ मास.
२४. ज्ञान नगरी.	अयोध्या.	अयोध्या.	कौसुंबी.
ज्ञान तप.	दो उपवास.	दो उपवास.	चौथ भक्त.
दीक्षा वृक्ष.	प्रियंगु वृक्ष.	साल वृक्ष.	छत्र वृक्ष.
ज्ञान तिथि.	पोष वदी १४.	चैत्र सुदी ११.	चैत्र सुदी १५.
गणधर संख्या.	११६.	१००.	१०७.
साधुओं की संख्या.	३०००००.	३२००००.	३३००००.
साधवियों की संख्या.	६३००००.	५३००००.	४२००००.
३१. वैक्रियलब्धिवंत.	१९०००.	१८४००.	१६१०८.
३२. वादियोंकीसंख्या	११०००.	१०४५०.	९६००.
३३. अवधि ज्ञानी संख्या.	९८००.	११०००.	१००००.
३४. केवली संख्या.	१४०००.	१३०००.	१२०००.
३५. मनःपर्यवसंख्या.	११६५०.	१०४५०.	१०३००.
३६. चौदहपूर्वीसंख्या	१५००.	२४००.	२३००.
३७. श्रावक संख्या.	२८८०००.	२८१०००.	२७६०००.
३८. श्राविका संख्या.	५२७०००.	५१६०००.	५०५०००.

३९.	शासन यक्षनाम.	नायक यक्ष.	तुंबरुयक्ष.	कुसमयक्ष.
४०.	शासन यक्षिणी नाम.	कालिका.	महाकाली.	श्यामा.
४१.	प्रथम गणधर नाम.	वज्रनाभ.	चरम.	प्रद्योतन.
४२.	प्रथमआर्यानाम.	अजिता.	काश्यपी.	रति.
४३.	मोक्ष स्थान.	समेत शिखर.	समेत शिखर.	समेत शिखर.
४४.	मोक्ष तिथि.	वैशाख सुदी ८.	चैत्र सुदी ९.	मार्गसर
४५.	मोक्ष संलेषणा.	१ मास.	१ मास.	१ मास.
४६.	मोक्ष आसन.	कायोत्सर्ग.	कायोत्सर्ग.	कायोत्सर्ग.
४७.	अंतरमान.	९ लाखकोटीसा.	९०हजारकोटीसा.	९हजारकोटीसा.
४८.	गण नाम.	देवगण.	राक्षसगण.	राक्षसगण.
४९.	योनि नाम.	छाग योनि.	मूषक योनि.	महिष योनि.
५०.	मोक्ष परिवार.	१०००.	१०००.	३०८.
५१.	भव संख्या.	३ भव करा.	३ भव करा.	३ भव करा.
५२.	कुल गोत्र नाम.	इक्ष्वाग कुल.	इक्ष्वाग कुल.	इक्ष्वाग कुल.
५३.	गर्भ कालमान.	८मास २८ दिन.	९मास ६ दिन.	९मास ६ दिन.

१.	श्री तीर्थंकर का नाम.	७ श्री पार्श्वनाथ.	८ श्री चंद्रप्रभ.	९ श्रीसुविधिनाथ
२.	च्यवन तिथि.	भाद्र वदी ८.	चैत्र वदी ५.	फागण वदी ९.
३.	विमान नाम.	मध्यम ग्रैवेयक.	विजयंत.	आनतदेवलोक.
४.	जन्म नगरी.	बणारसी नगरी.	चंद्रपुरी नगरी.	काकंदी नगरी.
५.	जन्म तिथि.	ज्येष्ठ सुदी १२.	पोष वदी १२.	मगसिर वदी ५.
६.	पिता का नाम.	प्रतिष्ट राजा.	महासेन राजा.	सुग्रीव राजा.
७.	माता का नाम.	पृथ्वी माता.	लक्ष्मणा माता.	रामाराणीमाता.
८.	जन्म नक्षत्र.	विशाखा नक्षत्र.	अनुराधा नक्षत्र.	मूल नक्षत्र.
९	जन्मराशि.	तुल राशि.	वृश्चिक राशि.	धन राशि.

३६. चौदह पूर्वी संख्या.	२०३०.	२०००.	१५००.
३७. श्रावक संख्या.	२५७०००.	२५००००.	२२६०००.
३८. श्राविका संख्या.	४२३६०००.	४७६०००.	४७६०००.
३९. शासन यक्ष नाम.	मातंग यक्षः	विजय यक्ष.	अजित यक्ष.
४० शासन यक्षिणीनाम	शांता.	भृकुटी.	सुतारिका.
४१. प्रथमगणधरनाम.	विदर्भ.	द्विप्र.	वराहक.
४२. प्रथम आर्या नाम.	सोमा.	सुमना.	वारुणी.
४३. मोक्ष स्थान.	समेत शिखर.	समेत शिखर.	समेत शिखर.
४४. मोक्ष तिथि.	फागण वदी ७.	भाद्रवा वदी ७.	भाद्रवा सुदी ६.
४५. मोक्ष संलेखणा.	१ मास.	१ मास.	१ मास.
४६. मोक्ष आसन.	काउस्सग्ग.	काउस्सग्ग.	काउस्सग्ग.
४७. अंतर मान.	९ सौ कोड़ी सागर.	९० कोड़ी सागर.	९ कोड़ी सागर.
४८. गण नाम.	राक्षसगण.	देवगण.	राक्षसगण.
४९. योनि नाम.	मृग योनि.	मृग योनि.	वानर योनि.
५०. मोक्ष परिवार.	५००	१०००.	१०००.
५१. भव संख्या.	३ भव करा.	३ भव करा.	३ भव करा.
५२. कुल गोत्र नाम.	इक्ष्वाग कुल.	इक्ष्वाग कुल.	इक्ष्वाग कुल.
५३. गर्भ कालमान.	९ मास १९ दिन.	९ मास ७ दिन.	८ मास २६ दि

---

१. श्री तीर्थंकर का नाम.	१० श्रीशीतलनाथ.	११ श्रेयांसनाथ.	११ श्री वासुपूज्य
२. च्यवन तिथि.	वैशाख वदी ६.	ज्येष्ठ वदी ६.	ज्येष्ठ सुदी ९.
३. विमान नाम.	अच्युत देवलोक.	अच्युत देवलोक.	प्राणत देवलोक.
४. जन्म नगरी.	भद्दिलपुर	सिंहपुरी.	चम्पापुरी.
५. जन्म तिथि.	माह वदी १२.	फागणवदी १२.	फागणवदी १४.
६. पिता का नाम.	दृढरथ राजा.	विष्णु राजा.	वसुपूज्य राजा.
७. माता का नाम.	नंदा माता.	विष्णु माता.	जया माता.
८. जन्म नक्षत्र.	पूर्वाषाढ़ा.	श्रवण नक्षत्र.	शतभिषा नक्षत्र.

९. जन्म राशि.	धन राशि.	मकर राशि.	कुंभ राशि.
१०. लंछन नाम.	श्रीवत्सलांछन.	गेंडेका लांछन.	पाड़े का लांछन.
११. शरीर मान.	९० धनुष.	८० धनुष.	७० धनुष.
१२. आयुमान.	१ लाख पूर्व.	८४ लाख वर्ष.	७२ लाख वर्ष.
१३. शरीर वर्ण.	सुवर्ण वर्ण.	सुवर्ण वर्ण.	लाल वर्ण.
१४. पदवी राज की.	राजा.	राजा.	कुमार.
१५. पाणि ग्रहण.	परणे.	परणे.	परणे.
१६. कितनेसाथदीक्षा.	१००० साधु.	१००० साधु.	६०० साधु.
१७. दीक्षा नगरी.	भद्दिलपुर.	सिंहपुरी.	चंपापुरी.
१८. दीक्षा तप.	दो उपवास.	दो उपवास.	दो उपवास.
१९. प्रथम पारणे का आहार.	खीर भोजन.	खीर भोजन.	खीर भोजन.
२०. पारणेका स्थान.	पुनर्वसु के घर.	नंद के घर.	सुनंद के घर.
२१. कितने दिन का पारणा.	दो दिन.	दो दिन.	दो दिन.
२२. दीक्षा तिथि.	माह वदी १२.	फागणवदी१३.	फागुण सुदी १
२३. छद्मस्थकाल.	३ मास.	२ मास.	१ मास.
२४. ज्ञान नगरी.	भद्दिलपुरी.	सिंहपुरी.	चम्पापुरी.
२५. ज्ञान तप.	दो उपवास.	दो उपवास.	दो उपवास.
२६. दीक्षा वृक्ष.	प्रियंगु वृक्ष.	तंदुक वृक्ष.	पाडल वृक्ष.
२७. ज्ञान तिथि.	पोष वदी १४.	माह वदी ३.	माह सुदी २
२८. गणधर संख्या.	८१ गणधर.	७६ गणधर.	६६ गणधर
२९. साधुओंकीसंख्या.	१००००० .	८४००० .	७२००० .
३०. साधवियोंकीसं०.	१००००६.	१०३००० .	१०००००
३१. वैक्रियलब्धिवंत.	१२००० .	११००० .	१०००० .
३२. वादियोंकीसंख्या.	५८०० .	५००० .	४७०० .
३३. अवधिज्ञानीसं०.	७२०० .	६००० .	५४०० .
३४. केवली संख्या.	७००० .	६५०० .	६००० .

३५.	मनःपर्यवसंख्या.	७५००.	६०००.	६५००.
३६.	चौदह पूर्वी सं०.	१४००.	१३००.	१२००.
३७.	श्रावक संख्या.	२८८०००.	२०६०००.	२१५०००.
३८.	श्राविका संख्या.	४५८०००.	४४८०००.	४३६०००.
३९.	शासनयक्षनाम.	ब्रह्मा यक्ष.	अनुगद यक्ष.	कुमार यक्ष.
४०.	शासनयक्षिणीनाम.	अशोका.	मानवी.	चंडा.
४१.	प्रथमगणधरनाम.	नंद.	कच्छप.	सुभूम.
४२.	प्रथमआर्यानाम.	सुयशा.	धारणी.	धरणी.
४३.	मोक्ष स्थान.	समेत शिखर.	समेत शिखर.	चम्पापुरी.
४४.	मोक्ष तिथि.	वैशाख वदी २.	श्रावण वदी ३.	आषाढ़ सुदी १४.
४५.	मोक्ष संलेखणा	१ मास.	१ मास.	१ मास.
४६.	मोक्ष आसन	काउस्सग्ग.	काउस्सग्ग.	काउस्सग्ग.
४७.	अंतरमान.	१कोड़ी सागर.	५४ सागर.	३० सागर.
४८.	गण नाम.	मानव.	देव.	राक्षस.
४९.	योनि नाम.	नकुल.	वानर.	अश्व.
५०.	मोक्ष परिवार.	१०००परिवार.	१०००परिवार.	६०० परिवार.
५१.	भव संख्या.	३ भव.	३ भव.	३ भव.
५२.	कुल गोत्र नाम.	इक्षाग कुल.	इक्षाग.	इक्षाग.
५३.	गर्भ कालमान.	९मास ६दिन.	९मास ६दिन.	८मास २०दिन.

१.	श्रीतीर्थंकरनाम.	१३विमलनाथ.	१४ अनंतनाथ.	१५ श्रीधर्मनाथ.
२.	च्यवण तिथि.	वैशाख सुदी १२.	श्रावण वदी ७.	वैशाख सुदी ७.
३.	विमान नाम.	सहस्रार देवलोक.	प्राणत देवलोक.	विजय विमान.
४.	जन्म नगरी.	कंपिलपुरी.	अयोध्या.	रत्नपुरी नगरी.
५.	जन्म तिथि.	माह सुदी ३.	वैशाख वदी १३.	माह सुदी ३.
६.	पिता का नाम.	कृतवर्म राजा.	सिंहसेन राजा.	भानु राजा.
७.	माता का नाम.	श्यामा माता.	सुयशा.	सुव्रता.

३६. चौदह पूर्वी सं०	११००.	१०००.	६००.
३७. श्रावक सं०	२०८०००.	२०६०००.	२०४०००.
३८. श्राविका सं०	४२४०००.	४१४०००.	४१३०००.
३९. शासन यक्ष नाम.	षण्मुख.	पाताल.	किन्नर.
४०. शासन यक्षिणी नाम.	विदिता.	अंकुशा.	कंदर्पा.
४१. प्रथमगणधरनाम	मंद्र.	जम.	अरिष्ट.
४२. प्रथम आर्या नाम.	धरा.	षमा.	आर्य शिवा.
४३. मोक्ष स्थान.	समेत शिखर.	समेत शिखर.	समेत शिखर.
४४. मोक्ष तिथि.	आषाढ वदि ७.	चैत्र शुदि ५.	ज्येष्ठ शुदि ५.
४५. मोक्ष संलेखणा	[illegible] मास	[illegible] मास.	१ मास.
४६. मोक्ष आसन	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग.	काउस्सग्ग.
४७. [illegible]	१ सागरोपम.	४ सागरोपम.	३ सागरोपम.
गण नाम.	मानव.	देव.	देव.
४९. योनि नाम.	छाग.	हस्ति.	मंजार.
५०. मोक्ष परिवार.	६००.	[illegible]	[illegible]
५१. भव संख्या.	३ भव.	३ भव.	३ भव.
५२. कुल गोत्र नाम.	इक्ष्वाग.	इक्ष्वाग.	इक्ष्वाग.
५३. गर्भ काल मान.	८ मास [illegible] दिन.	९ मास ६ दिन.	८ मास २१ दिन.

---

१. तीर्थंकर नाम.	१६ श्रीशांतिनाथ.	१७ श्रीकुंथुनाथ.	१८ श्री अरनाथ.
२. च्यवन तिथि.	भाद्रवा वदि ७.	श्रावण [illegible].	फागण शुदि २.
३. विमान नाम.	सर्वार्थ सिद्ध.	सर्वार्थ सिद्ध.	सर्वार्थ सिद्ध.
४. जन्म नगरी.	गजपुर.	गजपुर.	गजपुर.
५. जन्म तिथि.	जेठ वदि १३.	वैशाख वदि १४.	मगसिर शुदि १०
६. पिता का नाम.	विश्वसेन.	सूरराजा.	सुदर्शन.
७. माता का नाम.	अचिरा राणी.	श्री राणी.	देवी राणी.

३६. चौदह पूर्वी सं०	८००.	६७०.	६१०.
३७. श्रावक सं०	१८००००.	१७६०००.	१८४०००.
३८. श्राविका सं०	३६३०००.	३८१०००.	३०२०००.
३९. शासन यक्ष नाम.	गरुड़.	गंधर्व.	यक्षेर.
४०. शासन यक्षिणी नाम.	निर्वाणी.	बला.	धारिणी.
४१. प्रथमगणधरनाम	चक्रयुद्ध.	सांब.	कुंभ.
४२. प्रथम आर्या नाम.	सुचि.	दामिनी.	रक्षिता.
४३. मोक्ष स्थान.	समेत शिखर.	समेत शिखर.	समेत शिखर.
४४. मोक्ष तिथि.	जेष्ठ वदि १३.	वैशाख वदि १.	मगशिरशुदि१०.
४५. मोक्ष संलेषणा.	१ मास.	१ मास.	१ मास.
४६. मोक्ष आसन.	काउस्सग्ग.	काउस्सग्ग.	काउस्सग्ग.
४७. अंतरमान.	०॥ पल्योपम	०। पल्योपम.	१००० क्रोड़वर्ष.
४८. गण नाम.	मानव	राक्षस	देव.
४९. योनि नाम.	हस्ति.	छाग.	हस्ति.
५०. मोक्ष परिवार.	६००परिवार.	१०००परिवार.	१००० परिवार.
५१. भव संख्या.	१२भव.	३ भव.	३ भव.
५२. कुल गोत्र नाम.	इक्षाग.	इक्षाग.	इक्षाग.
५३. गर्भ काल मान.	९ मास ६दिन.	९ मास ५ दिन.	९ मास ८ दिन.

---

१. श्रीतीर्थंकर नाम.	१९श्री मल्लीनाथ.	२०श्रीमुनिसुव्रत.	२१ श्री नमिनाथ
२. चवण तिथि.	फागण शुदि ४.	श्रावण शुदि१५.	आशोज शुदि१५
३. विमान नाम.	जयंत.	अपराजित.	प्राणत देवलोक.
४. जन्म नगरी.	मथुरा.	राजगृही.	मथुरा.
५. जन्म तिथि.	मगशिर शुदि११.	जेष्ठ वदि ८.	श्रावण वदि ८.
६. पिता का नाम.	कुंभ राजा.	सुमित्र राजा.	विजय राजा.
७. माता का नाम.	प्रभावती.	पद्मावती.	विप्रा राणी.

८. जन्म नक्षत्र.	अश्विनी.	श्रवण.	अश्विनी.
९. जन्म राशि.	मेष.	मकर.	मेष.
१०. लांछन नाम.	कलश का.	कच्छप का.	कमल का.
११. शरीर मान.	२५ धनुष.	बीश धनुष.	१५ धनुष.
१२. आयुमान.	५५००० वर्ष.	३०००० वर्ष.	१०००० वर्ष.
१३. शरीर वर्ण.	नीला.	श्याम.	पीला.
१४. पदवी राज की.	कुमार.	राजा.	राजा.
१५. पाणि ग्रहण.	नहीं परणे.	परणे.	परणे.
१६. कितने साथ दीक्षा.	३०० साधु.	१००० साधु.	१००० साधु.
१७. दीक्षा नगरी.	मिथिला.	राजगृही.	मथुरा.
१८. दीक्षा तप.	३ उपवास.	२ उपवास.	२ उपवास.
१९. प्रथम पारणे का आहार.	खीर भोजन.	खीर भोजन.	खीर भोजन.
२०. पारणे का स्थान.	विश्वसेन.	ब्रह्मदत्त.	दिन्नकुमार.
२१. कितने दिन का पारणा.	२ दिन.	२ दिन.	२ दिन.
२२. दीक्षा तिथि.	मगशिर सुदी ११.	फागण सुदी १२.	आषाढ़ वदी ९
२३. छद्मस्थकाल.	एक अहोरात्र	११ मास.	९ मास.
२४. ज्ञान नगरी.	मथुरा.	राजगृही.	मथुरा.
२५. ज्ञान तप.	२ उपवास.	२ उपवास.	२ उपवास.
२६. दीक्षा वृक्ष.	अशोक.	चंपक.	बकुल.
२७. ज्ञान तिथि.	मगशिर सुदी ११.	फागण वदी १२.	मगशिर सुदी ११.
२८. गणधर संख्या.	२८ गणधर.	१८ गणधर.	१७ गणधर.
२९. साधुओंकीसंख्या.	४००००.	१००००.	२००००.
३०. साध्वियोंकीसं०.	५५०००.	५००००.	४१०००.
३१. वैक्रियलब्धिवंत.	२९००.	२०००.	५०००.
३२. वादियोंकीसंख्या.	१४००.	१२००.	१०००.
३३. अवधिज्ञानीसं०.	२२००.	१८००.	१६००.

३४. केवली संख्या.	१५००.	१०००.	७००.
३५. मनःपर्यव संख्या.	१०००.	७५०.	५००.
३६. चौदह पूर्वी संख्या.	४००.	३५०.	३००.
३७. श्रावक संख्या.	१६९०००.	१६४०००.	१५९०००.
३८. श्राविका संख्या.	३३६०००.	३३९०००.	३१८०००.
३९. शासन यक्षनाम.	गोमेध.	पार्श्व.	मातंग.
४०. शासन यक्षिणी नाम.	अंबिका.	पद्मावती.	सिद्धायिका.
४१. प्रथम गणधर नाम.	वरदत्त.	आर्य दिन्न.	इंद्रभूति.
४२. प्रथम साध्वीनाम.	यक्ष दिन्ना.	पुष्पचूला.	चंदनबाला
४३. मोक्ष स्थान.	गिरनार.	समेत शिखर.	पावापुरी.
४४. मोक्ष तिथि.	आषाढ शुदी ८.	श्रावण शुदी ८.	कार्तिक वदी १५.
४५. मोक्ष तपस्या.	१ मास.	१ मास.	२ उपवास.
४६. मोक्ष आसन.	पद्मासन.	काउस्सग्ग.	पद्मासन.
४७. अन्तरमान.	८३७५० वर्ष.	२५० वर्ष.	चरम जिनेश्वर.
४८. गोत्र नाम.	गौतम.	गौतम.	मानर.
४९. वाहन नाम.	महिष.	मृग.	महिष.
५०. मोक्ष परिवार.	५३६ परिवार.	३३ परिवार.	एकाकी मोक्ष.
५१. भव संख्या.	९ भव.	१० भव.	२७ भव.
५२. कुल वंश नाम.	हरि वंश.	इक्ष्वाक.	इक्ष्वाक.
५३. गर्भ कालमान.	९ मास ८ दिन.	९ मास ६ दिन.	९ मास ७॥ दिन.

सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रीऋषभदेव अर्हंत को वंदन नमन कर संस्कार विधि दर्शाता हूं। जैन धर्म में संस्कारविधि अनादि प्रवाह से प्रचलित है, सदा से जैन पण्डित जैनब्राह्मण कुलगुरु कराते चले आये, काल दोष से वर्तमान समय ब्राह्मण लोक मिथ्यात्वियों के मुख से जैनधर्मी लोक संस्कार कराने लगे, यह सर्वविधि मिथ्यात्व युक्त होने से अनाचीर्ण हैं क्योंकि दक्षिणी ब्राह्मण जैनधर्मियों को शुद्ध संस्कार कराते हमने देखा है। जैनधर्मियों में संस्कार विद्यमान रहते क्यों जैनधर्मी अन्य कल्पित शास्त्रों से अपने धर्म की न्यूनता कराते हैं, आशा है अब जैनधर्मी लोक अपने प्राचीन संस्कार विधि से ही संस्कार करायेंगे, ये संस्कार की विधि आवश्यक सूत्र, कल्प सूत्र आचार दिनकरादि शास्त्रों से यहां लिखी है।

सोलह संस्कारों के नाम।

१ गर्भाधान संस्कार, २ पुंसवन संस्कार, ३ जन्म संस्कार, ४ चंद्रार्क दर्शन संस्कार, ५ क्षीराशन संस्कार, ६ षष्ठी पूजन संस्कार, ७ सुचिकर्म संस्कार, ८ नामकरण संस्कार, ९ अन्नप्राशन संस्कार, १० कर्णवेध संस्कार, ११ केशवपन संस्कार, १२ उपनयन संस्कार, १३ विद्यारंभ संस्कार, १४ विवाह संस्कार, १५ व्रतारोप संस्कार, १६ अंतकर्म संस्कार।

संस्कार करानेवाला कुलगुरु धर्मभ्रष्ट दुराचरणवाला नहीं होना। अपनी वस्ती में यदि कुलगुरु नहीं होय तो पवित्र श्रावक संस्कार करा सकता है यदि तादृश श्रावक भी नहीं मिले तो पण्डित ब्राह्मण से इस में लिखी विधि जैन मंत्रों से सर्व संस्कार करा ले।

एक व्रतारोप संस्कार, विना जैन यति साधु के नहीं हो सकता, चाहे गृहस्थ के सम्यक्त्वमूल द्वादश व्रत ले, चाहे पंचमहाव्रत, यह तो मुनिजन ही कराते हैं, संस्कार कराते शुद्ध मंत्र यथातथ्य उच्चारण स्पष्टतया करे।

अथ गर्भाधान संस्कार विधि।

स्त्री के गर्भ रहे के अनंतर पांचवें मास सोम, बुध, गुरु वा शुक्रवार हो, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी या दशमी तिथि हो, रोहिणी, हस्त,

न पुनर्जन्मजरामरण संकुलं संसारवासं गर्भमासं,
प्राप्तोसि अर्हं ॐ ॥

इस मंत्र को ७ बेर पढ़े, सात ही बेर जल सींचन करता रहे बाद ग्रंथि बंधन को छोड़ कर इस मंत्र को पढ़े–

ॐ अर्हं ग्रंथौ वियोजमानेस्मिन्, स्नेहग्रंथिःस्थिरोस्तुवां,
शिथिलोस्तिभवग्रंथिः, कर्मग्रंथी दृढीकृतः ॥ १ ॥

इस विधान करे पीछे, प्रथम पति, पीछे गर्भवती, चौकी पर से उठे, गर्भाधान संस्कार पूर्ण हुआ, कुल गुरु को यथाशक्ति भेट दे, तत्पश्चात् कुल गुरु इस काव्य के पढ़ कर अपने स्थान जावे।

ज्ञानत्रयंगर्भगतोपिविंदन् संसारपारैकनिपद्धचेताः ॥
गर्भस्यपुष्टिं पुत्रयोश्चतुष्टिं युगादिदेवः प्रकरोतुनित्यं ॥१॥

ज्ञातीय पुरुष स्त्रियों को अपनी शक्त्यनुसार नारियल वा मिठाई बांटे।

अथ पुंसवन संस्कार विधिः।

पुंसवन संस्कार गर्भवती के आठवें मास कराना चाहिये. जिस दिन मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मूल वा श्रवण नक्षत्र हो, द्वितिया तृतीया पंचमी सप्तमी दशमी, त्रयोदशी वा पूर्णिमा तिथि हो, रवि भौम वा बृहस्पतिवार हो उस दिन इसको चन्द्रशुद्धि देखना, बृहस्पति केंद्र त्रिकोण में स्थित [illegible] अष्टम और द्वादश में स्थान को छोड़ के अन्यत्र [illegible] श्रेष्ठ है।

मुहूर्त के दिन [illegible] गान करें, गर्भवती को [illegible] शुद्ध जल से स्नान करावे, वस्त्राभूषण [illegible] पात्र को ३ [illegible]

सी पञ्चा जोड़ के नीहीयर बेटा के गर्भवती के हाथ में कंगना नारेल देकर संग उपर मंत्र ७ वेर पढ़ २ कर पूरित स्नात्र जल छिड़के।

मंत्र—ॐ अर्हं गर्भंकृत्नामकर्मबंधसंबास सुरासुरनाहि त्यात्मन स्वं आत्मायुः कर्मबंध प्राप्तमनुष्यजन्म गर्भावासमाप्नोसि मनुभवजन्म जरामरण गर्भावास विच्छित्तये प्राप्तार्हद्धर्मो अर्हद्भक्तः सम्यक्त्वनिश्चलः कुलभूषणः सुखेन सवजन्म अस्तु मवां त्यत् मातापित्रोः कुलस्याभ्युदयः भवः शांतिः पुष्टिः तुष्टि ऋधिः कांतः सनातनी अर्हं ॐ॥

तदनंतर चौकी पर [illegible] को भेट दे नारेलादिसें अपनी शक्तिसें भोजन [illegible]।

अथ जन्म संस्कार विधिः।

जिस अवसर में बेटा बेटी का [illegible] उस वक्तको लिख लेवें, और पंडित ज्योतिषी को [illegible] प्रथम त्रि पायेमें संतान का जन्म हो उसका फल पूछना [illegible], पाय श्रेष्ठ, सोनेका लोह का नेष्ट, नेष्ट पाया होयतो जिन मंदिर में नगद भेट दिला भेजे, नगद में शक्ति नहीं फेर गरीब अपंग भूखेको भोजन वस्त्र दे दान पुन्यकर ज्योतिषी के भेट धर लड़के के जन्मग्रहों का फल सुनें, यदि नेष्ट ग्रह होयतो पूजा, तीर्थंकरो का मंत्रजाप जैन पाठकों से करावे ग्रहोंकी पूजा शांति मंत्रजाप सर्वविधि दस दिन बाद पुत्रका पिता निजभी करे ज्योतिषी जन्मग्रहों का फल कहकर ये काव्य पिता भ्रातादि को सुनावे।

मंत्र जन्म संस्कार का—ॐ अर्हं कुलं योवधेमांसंतु शनशः श्चत्तीणमस्त्वायुर्धनंयशः सुखंच अर्हं ॐ॥ (काव्यं[१]) आदित्यो रजनीपतिः क्षितिपतिः सौम्यस्तथा वाक्पतिः शुक्रः सूर्यसुतो विधुंतुद इति श्रेष्ठा महाःपांतुव अश्विन्यादि कमंडल नक्षत्री

१—नोट हमारी छपाई सार्थ पंच प्रतिक्रमण देखो।

ंयाङ्गिराशिकमः कल्याणं प्रतनोतु वृद्धिमधिकं संतानमप्यस्यच १
ोमेरुशृंगे त्रिदशाधिनाथैः दैत्यादिनाथैस्सपरिच्छदेश्च कुंभामृतैः
ंस्नपितः सदैवः साधोविदध्यात्कुलवर्धनंच ॥ २ ॥

तदनंतर कुलगुरु लड़के का स्नान करानेका जल मंत्र पढ़कर तैयार करे

ॐ अर्हं नमो सिद्धाचार्यो पाध्याय सर्वसाधुभ्य [काव्यं]
क्षीरोदनीरे किलजन्मकाले यैर्मेरुशृंगस्नपितोजिनेन्द्रः स्नानोदकं
तस्यभवत्विदंच शिशोर्महामंगल पुण्यवृध्यैः ॥ १ ॥

इस मंत्रको सातवेर पढ़के जलके ऊपर दाईको दे वह जापेके गृह में
जाकर लड़के को स्नान करावे और नाल च्छेदन कर, खुद प्रसूती भी
गर्म जलसे श्नान करै, अशुची दूर करने को यदि निर्बलता के कारण स्नान
नहीं करसके तो दुर्वा से अंगपर जल छांटकर गाय शुद्धितो भवश्यही करे।

इति जन्म संस्कार विधिः ।

अपने २ द्रव्यानुसार राजा सेठादिक, तथा गृहस्थी सभी अपने कुल
क्रम मुजब उच्छव करना जिन मंदिर में पूजा अंगी रोसनी. गुरुपूजा ज्ञान
पूजा अनाथों को दान देना धन को जिसने पाकरके सुपात्रों को दान नहीं
दिया संसार में शोभा नहीं ली इज्जत मुजब तन को आराम नहीं दिया
उसका धन पाना व्यर्थ ही है जिसके घर बेटा हो दस दिन का
अशौच उस घर की बनी रसोई खाने वाला मनुष्य १० दिन तक जिन
ातिमा की पूजा नहीं करै दूर से दर्शन करै उसमें दोष नहीं, धर्मशास्त्र
ाथा स्थापनाचार्यजी को स्पर्श करे नहीं मुनि जन को अन्न पानी का
ान नहीं दे, न मुनि उस घर का अन्नादि ग्रहण करै दूरसे दर्शन करै उस
तड़के का पिताही क्यों न हो, अगर अन्य घरका खान पान करता हो तो
उसको सूतक नहीं वह पूजा, दान, अन्य गृहके द्रव्य से कर सक्ता है २
जिसके घर पुत्री उत्पन्न हुई हो उस घर का ग्यारह दिन का सूतक ३ सगे
भाई के घर बेटा बेटी हो और खान पान का वस्तुओं का मेल मिलाप
रहता हो तो उस दूसरे घर वाले का ५ दिनका अशोच हो अगर खान

पान की चीजों का मिलाप नहीं होता होयतो कुछभी अशोच नहीं ४ अन्य देश में अपणी स्त्रीके पुत्र पुत्री हो, जिस दिन सुने उस एक दिनका ही अशोच ५ निज रहने के घर में किसी दासी के लड़का लड़की होय तो तीन अहो रात्रि का अशोच ६ गौ, भैंस, घोडा, ऊंटणी, या बकरी के निज रहने के घर में बच्चा बच्ची होतो एक अहोरात्रि का अशोच ७ जिस मास का गर्भपात हो उसके घर उतनेही अहोरात्रि का अशोच ८ जिन मंदिर में नगद रुपयादि देकर अंगी रोसनी करावे उसमें अशोच नहीं।

अथ चन्द्रार्क दर्शन संस्कार विधिः।

पुत्र उत्पन्न होने के तीसरे दिन पश्चात् चंद्रार्क दर्शन कराया जाती प्रसूतिका गृहको छोड़ अन्य गृह में धातु का छोटा जिन प्रतिमा रखकर उसको अष्ट द्रव्य से कुलगुरु पूजा करे या करावे और एक पट्ट पर सोनेकी या ताम्रकी सूर्यकी मूर्ति स्थापन कर मंत्र पढ़ कर गंध पुष्पादि चढ़ावे।

मंत्र—ॐ नमः सूर्याय सहस्र किरणाय जगत्कर्मसाक्षिणे इहजन्मसहोत्सवे सायुध सवाहन सपरिच्छद आगच्छ आगच्छ इदं अर्घ्यं पाद्यं बलिं गृहाण गृहाण सन्निहितो भव भव स्वाहा जल गंध पुष्प अक्षतान फलानि धूपं दीपं नैवेद्यं मुद्रां सर्वोपचारान गृहाण शांतिं कुरु २ तुष्टिं कुरु २ ऋद्धिं वृद्धिं सर्वसमीहितं देहि देहि स्वाहा।

इस प्रकार सूर्य मूर्ति का कुलगुरु पूजन करना पुत्र तथा माताको सन्मुख बैठावे फेर साक्षात् आकाशस्थित सूर्य को माता पुत्रको दर्शन करावे तब ये मंत्र कुलगुरु पढ़े।

ॐ अर्हं सूर्योसि दिनकरोसि तमोपहोसि सहस्रकिरणोसि जगच्चक्षुरसि प्रसीद अस्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु २ सन्निहितोभव अर्हं -

अथ क्षीरासन संस्कार विधि।

चंद्रार्क दर्शन के दिन वा दूसरे दिन स्तनपान कराना ३ दिन बालक को निरोग गऊ वा बकरी का दूध देना चाहिये प्रसूता का दूध ३ दिन अच्छा नहीं होता।

इस मंत्र को १०८ वार पढ जल पवित्र कर माता पुत्र को स्नान करावे।

ॐ अमृते अमृतोद्भव अमृतवर्षणि अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहा।

माता का जिस तरफ का स्वर चलता हो वोही स्तन बालक के मुख में देवे गुरु मनुष्य पट्टे पर बैठ क्षीराशन संस्कार का ३ वेर मंत्र पढ माता दूध पिलावे।

ॐ अर्हं जीवोसि आत्मासि, पुरुषोसि शब्दज्ञोसि रसज्ञोसि स्पर्शज्ञोसि, सदाहारोसि, कृताहारोसि, अभ्यस्ताहारोसि, कावलिकाहारोसि, लोमाहारोसि, औदारिकशरीरोसि, अनेनाहारेण, सर्वांग वर्द्धतां, बलं वर्द्धतां, तेजोवर्द्धतां पाटवं वर्द्धतां, सौष्ठवं वर्द्धतां पूर्णायुर्भव अर्हं ॐ।

अथ षष्ठि पूजन संस्कार।

बालक जन्म के छठे दिन सायं [illegible] सगादरी की स्त्रियें एकत्रित हो प्रसूता के गृह भीत भाग को पट्ट [illegible] चांदी का वा कांसे का एक थाल रक्खे उसमें केसर वा कुंकम से स्वस्तिक मधर गौ से करावे उसपर प्रसूता से चक्रेश्वरी के दो पादुका का आकार बनावे सोहागन स्त्री सन्मुख बैठ कुंकम, चावल, पुष्प, दीप, नैवेद्य और फल से पूजा कर प्रसूता स्त्री को सुगंध धूप देवे जिसमें अशुभ पुद्गलों के परमाणु अंग से दूर होजावें इधर कुल गुरु २१ वेर नमस्कार मंत्र जल के उपर पढे पीछे उस जल से बालक को स्नान करावें पीछे ये मंत्र ७ वेर पढना उस के पीछे से थोडा २ जल बालक के उपर छींटे डालना जावे शीतल अनु

अथ कर्णवेध संस्कार विधिः।

कर्णवेध तीसरे पांचवें वा सातवें वर्ष कराना चाहिये जिसदिन अश्वनी रेवती मृगशिरा पुनर्वसु पुष्य उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद वा रेवती नक्षत्र हो, चौथ नौमी चौदस इस रिक्त तिथियों को छोड़ अन्य कोई तिथि हो, रवि मंगल बृहस्पतिवार अच्छा योग हो, उस दिन लग्न शुद्धि देख कर्णवेध कराना चाहिये, लग्न शुद्धि में इतना देखो तीसरे ग्यारहवें शुभग्रह होना, पाप ग्रह नहीं होना कान बींधने वाले को यथाशक्ति दान दे खुश करना।

अथ केशवपन संस्कार विधिः।

यह संस्कार जन्म से सवावर्ष के अभ्यंतर ही कराना चाहिये कई लोग आठ नो वर्ष तक झडूला किसी देवता के नाम से रख छोड़ते हैं, इस शिरमें मैल जूँ लीख गरमी के मोसम में बड़ी तकलीफ बच्चोंके होती है बालाना देवतों के हाथ नहीं तीर्थंकरों की आज्ञा मुजब चलना ही श्रेयस्कर जिस दिन मृगशिरा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती नक्षत्र हो १, २, ३, ५, ७, १०, ११, १३, ये तिथियें हो सोम बुध वा शुक्रवार हो उस दिन चंद्रबल देखकर लड़के का बाल उतरवाना चाहिये, जिस वस्त्र में बाल गिरे उसमें रुपया वगेरे नाई को डालना चाहिये पगड़ी दुपट्टा नाई को इनाम दे बाद दही मसालासे स्नान कराना अच्छे वस्त्र पहनाना शक्ति हो तो ज्ञाति को भोजन देना जिन मंदिर में पूजा गुरु भक्ति करना।

अथ उपनयन संस्कार विधिः।

आठ वर्ष का बालक हुये पीछे जिस दिन अश्वनी, मृगशिरा, पुनर्वसु पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, श्रवण धनिष्ठा रेवती नक्षत्र हो, २, ३, ५, ७, १०, १३ ये तिथि हो, बुध, गुरु वा शुक्रवार हो आगे जिनेउ धारन कराने

तुल्य हो भूले परंतु ये सम्यक्त्वी महाद्योतिषर देव कैसे भूला पहले इसको द आपको वंदन कैसे करा तब केवली ने कहा इसका धर्माचार्य निस्तारक हद्न आमस्रोपकारी है देवता ने यथार्थ वंदन करा भूला नहीं ऐसे वाई सूत्र में अंबड श्रावक के सात सौ चेलों ने अंत आराधना में म्बडजी को नमस्कार करा और हमारे धर्माचार्य ऐसा कहा देवलोक गये गवान् उन्हों की आराधना कही है कहीं गुरु महाराज का भी योग नहीं मिले तो बाप मा ही नवकार मंत्र सिखावें ।

अथ विद्यारम्भ संस्कार विधिः ।

संसार में विद्या के तुल्य कोई धन नहीं जिसके मा बाप पुत्रको विद्या नहीं पढ़ाते उनके तुल्य कोई मूर्ख नहीं धन आज है न मालुम घडी में क्या होना है जो पढ़ाई पाठशाला (मदरसे) में होती है वैसी घर पर कभी नहीं होती अध्यापक पढ़ाते बालकको तस्वी दे तो मा बाप यही कहवे रोना नहीं पढ़ेगा तना पावगा ।

जिस दिन अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, असेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, मूल, पूर्वाषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद ये जो नक्षत्र हों २, ३, ५, ७, १०, ११, १२, १३ ये तिथियें रवि गुरु ये वार हों प्रथम प्रारंभ में बालक का दर्प स्वर चलता हो तो विद्या शीघ्र आवेगी ।

पहले गणित पीछे लिखना पढ़न जब हुंसियारी में आवे तब प्रतिक्रमण पूजा विधि और विचार गर्भ दंडक सार्थ, नवतत्व सार्थ, संग्रहणी, क्षेत्र समास, कर्म विचार, नयचक्र, व्याकरण, कोश, स्याद्वादमंजरी, तत्वार्थ सूत्र, इन पढ़ाके बाद संस्कृत प्रकृत सिखलावे, जिनसे स्वधर्मच्युत नहीं होवे, जैनदिग्विजय पताके आगम नाटकादिक अवकाश देख पढ़ता जावे क्योंकि आजकल माता पिता स्वरित पुत्रको धनव्यापारी चाहते हैं, १८ वर्ष बालक को धनार्थ विदेश भेज देते हैं उहां निन्दकों की तथा पाखंडियों की कुयुक्तियें

शुद्ध सत्य धर्म त्याग मनुष्य कल्पित आधुनिक मत मतांतर में प्रवेश हो जाते हैं।

कितनेक कहते हैं पुत्रीको पढ़ाना अच्छा नहीं, वैधव्य व्यभिचारिणी होजाती है ऐसे अक्कल के पूरे इस जमाने में बहोत हैं ऐसों को इससे ज्यादा क्या कहें, तुमने देखा होगा अपठित स्त्रियें तो सब अक्सनारियां हैं और जगत्गुरु सर्व अपठित स्त्रियें तो सोहागनें हैं, प्रजापति भगवान् तीन ज्ञानके धरणे वाले भी ऋषभ देवने अपनी पुत्रियों को ६४ कला कैसे सिखलाई और सर्व स्त्रियों को पढ़ानेकी आज्ञा कैसे देगये असंख्य शिष्य की ये एकही शिक्षा को चित्त में धारण कर पुत्रियों को विद्या सिखलाओ जो पढ़ी पुत्री धूर्तों के हाथ कभी ठगाती नहीं न अपने संतानं को कुपथ्य खिलाकर रोगी बनायेगी, निरोगी होनेसे भेरू भोपे नाथी योगी देवी आदिक का झाड़ा, फूंका, डोरा डाँरा आरोपन क दुर्दशा कर बेमोत मारेगी न घरका धन बरबाद करेगी अपने संतानों को सुशिक्षित करेगी शील मत भाग्यवती के चरित्र पढ़ कर दृढ़व्रत धारी होजायगी, पतिकी आज्ञा कारिणी बनी रहेगी इत्यादि पढ़ाने के अनेक लाभ हैं।

याद रक्खो इस संसार में अनेक मत चले परंतु उनों का नाम निशान भी नहीं रहा, इसका हेतु क्या होगा, यह विचार करो गोशाले के हजारों लाख उपासक मनुष्य थे आज उनके मतका शुद्ध खोज नहीं रहा ।

संसार में नाम कायम रखने के ३ पदार्थ हैं भीतिका १ गीतिका २ चीतिका ३ मंदिर, धर्मशाला, उपाश्रय आदि भीतिका कहलाता है इनको बनाने वाले प्रथम तो जैनधर्मी श्रावक, जिनों का नाम निशान ऋषभदेवजी से लेकर अद्यावधि प्रचलित है तदनंतर ५ हजार वर्षोंसे कृष्ण बलदेवजी के मंद-रादि तदनंतर बौद्धों के शिखर ये ३ भारत निशान [illegible]
गीतिका तो उस धर्म के शास्त्रों की रचना वह भी इन
शास्त्र विद्यमान हैं ये दूसरा नाम कायम

तीसरा चीतड़ा सो प्रतिमा चित्रादि ये तीसरा नाम कायम रखने का संसार में निशान विद्यमान है जो मतांतरी इन तीनों से वंचित मत चलाने वाले हैं वह पानी के बुलबुले की तरह क्षणस्थायी परन्तु चिरस्थाई नहीं रहेंगे युगके आदिमें जैनियों ने ही जिन मंदिर जिन प्रतिमा करवाये, इस बात की साक्षी अन्य दर्शनी भी अपने शास्त्रों में लिखते हैं जैसे शंकर दिग्विजय में लिखा है, (न गच्छेज्जिन मंदिरे) जिन मंदिर प्राचीन है तभी तो उसमें नहीं जाना लिखा है फेर जैनियों की बुद्धिमानी का अनुकरण पूर्वोक्तों ने भी करा।

अथ विवाह संस्कार विधिः।

विवाह आठ प्रकार का लिखा है १ कोई राजा वा बादशाह किसी कन्या का विवाह किसी पुरुष से करादे वह ब्राह्मण विवाह कहाता है, २ मा बापोंकी आज्ञा से ज्ञाति के सन्मुख धर्मशास्त्र विधि से विवाह करादे वह प्राजापत्य विवाह कहाता है, ३ ऋषिलोग अपणी पुत्रि को किसी ऋषि पुत्र से गौवच्छा आदि दे विवाह करदे वह आर्ष विवाह कहाता है ४ ऋत्विज विवाह ५ पुरुष और स्त्री अपणी इच्छा मुजब गुप्तपणे व्याह करले उसका नाम गांधर्व विवाह कहाता है, ६ हारजीत ठहराकर जीतकर विवाह करले उसका नाम असुर विवाह कहाता है, ७ जबरदस्ती विवाह किसीकी लडकी से करलेणा वह राक्षस विवाह कहाता है, ८ किसी की पुत्री हरण कर व्याह लेना वह पिशाच विवाह कहाता है जैसे पृथीराज संजोकता का।

इनोंमें से इस अवसर प्राजापत्य विवाह के संबंध में ही लिखते हैं, जिसको सर्व गृहस्थ अंगीकार करते हैं बेटी का नाम दुहिता है जो दूर देने में हितकारी हो, अन्यग्रामांतर में विवाहना इससे दोनों पक्षको प्रत्यक्ष लाभ दृश्यमान है इस लाभको लिखने की आवश्यक्ता नहीं बूढेको आजन्म ठहरने वाले रोगी को विद्या हीन अनकमाउ को तथा वृद्ध ५० वर्ष उपर वाले को कन्या देना माता पिता को लज्जितकारक कृत्य है कन्या विक्रय है सो मांस विक्रयवत् है रुपया ले पुत्री देनेवाला रोगी गिणे न वृद्ध।

विवाह में रोहिणी मृगशिरा, मघा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, और रेवती येतो नक्षत्र परन्तु इसमें लत्ता पात एकार्गल वेध और उपग्रह आदि दोष नहीं होना, नक्षत्र गंडांत तिथि गंडांत भद्रा व्यतीपात और वैधृति कुयोगों को बचाना क्रांतिसाम्य दग्धतिथि अधिकमास मल मास तारा अस्त चातुर्मास इनोंमेंब्याह वर्जित है वृद्धि तिथि क्षयतिथि रिक्तातिथि अष्टमी षष्टी द्वादशी और अमावास्याको त्याग के २, ३, ५, ७, १०, ११, १३, १५, तिथि हो इसमें विवाह का मुहूर्त निश्चय करना सिंहका बृहस्पति धन, मीन, राशिस्थित सूर्य इत्यादि पूर्वोक्तों में तथा संक्रांति के दिन तथा दूसरे दिन ग्रहण के दिन ग्रहण के पीछे भी ७ दिन विवाह दीक्षा प्रतिष्ठा करना मना है जन्म लग्न जन्म वार जन्म नक्षत्र जन्म तिथि और जन्म मास इनों में भी विवाह करना निषिद्ध है जन्म लग्न का स्वामी अस्त हो वा क्रूर ग्रह करके पराजित हो जन्म राशि से और जन्मलग्न से आठमें लग्नमें ब्याह करना निषिद्ध है विवाह लग्न दो पापग्रहों के बीचमें मना है उत्पात दोष रहित लग्न शुद्धिकी उत्तमता होती बुध गुरु शुक्रवार विवाह में अच्छे हैं स्थिर द्विस्वभाव या चर इनों में से चाहे कोई लग्न हो विवाह में अच्छे हैं विवाह लग्न की उदय शुद्धि और अस्त शुद्धि ऐसे देखना लग्न का स्वामी और लग्न के नवांश का स्वामी नवांश को देखता हो या नवांश में युक्त हो उसको उदय शुद्धि कहते हैं और सप्तम नवांशका स्वामी सप्तम नवांशको देखता हो या सप्तम नवांशमें युक्तहो उसको अस्त शुद्धि कहते हैं चंद्रमा दो पाप ग्रहोंके बीच में वा पापग्रह करके दृष्ट होना अच्छा नहीं लग्न में शुभ ग्रहका नवांशहो या उसको शुभ ग्रह देखते हों ऐसे लग्न पर विवाह करना श्रेष्ठ कहा, उसमें फेर इतनी बात देखो सप्तम स्थान में कोई ग्रह नहीं होना चाहिये, जिसमें भी बृहस्पति का होना तो तद्दन नेष्ट है सूर्य तीसरे छठे या दसवें भुवन में होना अच्छा है चंद्रमा पहिले छठे और आठमें भुवन को छोड चाहे जिस भुवन में पड़ा हो अच्छा है मंगल तीसरे छठे होना अच्छा है बुध पहिले दूसरे चौथे पांचवें छठे आठमें वा दशमें होना अच्छा है बृहस्पति पहिले दूसरे पांचवें सातमें नवमें या दशमें होना अच्छा है शुक्र पहिले पांचवें छठे वा दशमें

होना अच्छा है शनि तीसरे छठे होना अच्छा है ग्यारहवें भुवन में सभी ग्रह अच्छे हैं छठे वा तीसरे भुवन में राहु हो पांचवें भुवन में कोई पापग्रह नहीं होना. सातमें भुवन में शुभा शुभ कोई भी ग्रह नहीं हो ऐसे लग्न पर विवाह करना अच्छा है स्त्रीको बृहस्पति का बल देखना पुरुष के सूर्य बल, चंद्रबल दोनों के लिये देखना अच्छा है इत्यादिक ज्योतिष शास्त्र नार चंद्रादिक से विवाह लग्न देखना ।

ज्योतिष से स्वरोदय ज्ञान श्रेष्ठ है इसलिये सामान्य दिन शुद्धि देख चंद्र स्वर चलते विवाह करा दिया जावे यदि वर कन्या दोनों का चन्द्र स्वर चलता हो तो इस के बराबर कोई भी श्रेष्ठ लग्न नहीं बरात चढ़ते तोरण छूवते और कर मेलन करते समय वर कन्या का चन्द्र स्वर चलता होय तो अतीव श्रेयकारी है चन्द्र स्वर एक घंटा सूर्य स्वर चले पीछे चलता है किसी कारण से सब रात नहीं चले चन्द्र स्वर तो दूसरे दिन रात को चन्द्र स्वर चलते हस्त मेलन करा देना ज्ञानियोंके वचन पर श्रद्धा रख तो निश्चय शंका दूर रख इस विधि से बर्ताव करना तो जरूर संसार संबंधी सुख आनन्द का भोक्ता बनेगा ।

कुल धर्म मुजब विवाह खर्च कौड मुजब धन खलाना अच्छा है घरी भर की वाह २ सुख कर फजूल खर्च से खजाना खोना ठीक नहीं न धन कमना न उधार लेकर योग्य खर्च करना चाहिये पीछे से तकलीफ उठानी पड़े ऐसा खर्च नहीं करना चारण भाट इत्यादिक भिक्षुकों के वाह वाह से फूलना अच्छा नहीं हजारों रुपये खान पान नाटक नाचके भांडों के लिये वे लगाके खर्च कर डालते हैं परन्तु जिन मंदिर का पुन धन के लोभी पुरु. उपाश्रय पाठशाले में दो चार रुपये देनेभी फिर टालता है याद रखो पूर्व जन्म में धर्म कमाया जिससे इस जन्म में सदवृद्ध मिला है अगर अपने हाथ से हजारों लगाते. ४. १० भी धर्म कार्य में नहीं लगाने वाला पर भव में उसका पश्चात्ताप होगा और कहते हैं वर कन्या को उसमें उबटना लगाना शुरू हो ऐसे दिन मंदिर में पूजा नहीं करनी चाहिये परंतु ये सब जिनाज्ञा विरुद्ध है अक्षत आदि जिन पूजा करके अक्षत निर्मल करनेमें कोई दूषण

क्रिया नहीं है देखो ज्ञाता छठे अंग सूत्र में द्रोपदीजी नें हमेस ज्यों जिन पूजा करती थी त्योंही विवाह के दिनों में भी हमेस करती रही का लेख है संसार में २ भाग के लोक अधर्मी है उनों के सामल मिलना है सबतो जिनाज्ञा कोई वस्तु नहीं अगर धर्म प्यारा है तो जिनाज्ञा सूत्रके मुजब वर्ताव करो विवाह मुहूर्त पक्का होजावे तब वरके स्वजन संबंधी कन्या के संबंधियों को लिख भेजे अमुक दिन विवाह मुहूर्त ठहरा है। तब कन्या के पक्षवाले ज्योतिषी को बुला कर लिखावे हमारे कुलकी अमुक नामकी कन्या तुमारे कुलके अमुक नाम वरको दी जायगी उसका ये लग्नपत्र भेजा है तब वर के माता पिता खुशी के साथ लेवे कुल गुरु पै मंत्र पढे।

ॐ अर्हं परम सौभाग्याय परमसुखाय परमभोगाय परमधर्माय परमयशसे परमसंतानाय भोगोपभोगांतराय व्यवच्छेदाय इमाम् अमुक नाम्नीं कन्यां अमुक गोत्रांममुक नाम्ने वराय अमुक गोत्राय ददाति प्रतिगृह्णातु अर्हं ॐ।

कुम्हार के घर से मंगल कलश लाना क्योंकि प्रस्तुत इस समय चक्र में तीर्थंकर ऋषभ देवने प्रथम कुंभकार का शिल्प प्रकट करा इस वास्ते प्रथम उसकी इज्जत करना फरमाया उस लाये हुए ये चार मंगल कलश मधवा स्त्रियें गीत गान वादित्रयुक्त व यथाहर लावे पीछे मातृगृह कौतुकागार में स्थापन करे जैसे कन्याके पक्ष वाले चार मंगल कलश लावे तथा विधि वरपक्ष की स्त्रियें भी लावे कौतुकागार में स्थापना करे गीतगान पीछे दोनों के घर गुरु करे मंगल कलशों को कुंकुम अक्षत पुष्पों से अभिषेक करना।

अथ जवारा रोपन ।

विवाह दिन के ५-७ दिन पहिले वर कन्या दोनों के घर पांच प्याले मिट्टी के लेकर उसमें जव धान्य बोना।

एक कोठे में दिवाल के पास अर्द्धनिपद दोनों दिशाओं में बड़ा कलश रखे, छोटा कलश उसके ऊपर दोनों कलश के बीच २ हाथ का

अंतर रहना चाहिये दोनों कलशों के ऊपरका जो छोटा कलश है उनके ऊपर नारेल यूंपर खड़ा धरके दोनों कलशों के लाल कईनल वस्त्र मोलीके लच्छे से बांधना उन दोनों कलशों के आपस में तीन २ हाथका फासला छोड़ा है उसमें सवा सवा हाथका दो पट्टा धरना दाहने पासेकी चौकी पर ७ कुलगुरों की थापना बांई तरफ की चोकी पर शासन देवी की स्थापना करनी दो प्याले जवारों के दाहने तरफ के पास रखना दो बायें तरफ के मंगल कलश के पास रखना एक प्याला ७ कुलकर के और शासन देवीके स्थापना पास बीचमें रक्खे ७ कुलकरों और शासन देवी के स्थापना के पास दिवालपर कुंकुम में घृत मिला कर पहले एक स्वस्तिक बनावे उसके नीचे एक लयन में ८ टीके लगावे दूसरी लयन उसके नीचे ८ टीके लगावे उस साथियों के ऊपर ५ रंग से दिवाल पर चितेरे पास पूर्ण कलश का चित्र करावें सात कुलकरों की स्थापना करते समय तथा शासन देवता की स्थापना करते समय पट्टे का अभिषेक इस मंत्रों से करे, सात बेर पढ़ै, ॐ आधाराय नमः आधारशक्तये नमः आसनाय नमः यह पीछे जलका भरा कलश लेकर ये मंत्र पढता पट्टेपर जलधारा दे धोवे ॐ अमृतं अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणी अमृतं वर्षय वर्षय, स्वाहा, कुंकुम चंदन से पूजा करे तदनंतर एक ढेरी चावलोंकी करता हुआ कुल गुरु ये मंत्र पढ श्रीफल और पुष्पमाल धर प्रथम कुलकर की स्थापना करै इस तरह ७ की करें उस एक एक ढेरी पर एक रुमाल रुपया गमुख चढा कर धूप दीप नैवेद्य फल पुष्प अतर सातोंपर नढा २ पान बीडी सबोंके रक्खे ।

प्रथम कुलकरमंत्र- ॐ नमः प्रथम कुलकराय कांचनवर्णाय श्याम वर्ण चन्द्रयशा प्रियतमा सहिताय हाकार मात्र स्थापित न्याय पथाय विमलवाहनाभिधाय इह विवाह महोत्सवादौ आगच्छ आगच्छ इह स्थाने तिष्ठ तिष्ठ सन्निहितोभव क्षेमदोभव उत्सवदोभव आनन्ददोभव भोगदोभव कीर्तिदोभव अपत्य-संतानदोभव स्नेहदोभव राज्यदोभव अर्घ्यं पाद्यं बलिं चर्चा आचमनीयं गृहाण २ सर्वोपचारान् गृहाण २ ।

मंत्र दूसरे कुलकरका—ॐ नमः द्वितीय कुलकराय, वर्णाय, चन्द्रकांता प्रियतमासहिताय, हाकारमात्र पथाय चक्षुष्मानभिधानाय इत्यादि पूर्ववत्।

मंत्र तीसरे कुलकरका—ॐ नमः तृतीय कुलकराय, वर्णाय सुरूपा प्रियतमासहिताय हाकारमात्र न्यापित न्या पथयस्मानभिधानाय इत्यादि सर्व पूर्ववत् पढके पूर्ववत् पूजा करे।

मंत्र चौथे कुलकरका—ॐ नमः चतुर्थ कुलकराय, श्यामवर्णाय प्रतिरूपा प्रियतमासहिताय, माकार मात्र न्यापि न्यायपथाय अभिचन्द्राभिधानाय इत्यादि आगे पूर्ववत् पढ पूजा क

मंत्र पांचवें कुलकरका—ॐ नमः पंचम कुलकराय श्य वर्णाय चक्षुःकांता प्रियतमासहिताय धिक्कारमात्र न्यापित न्य पथाय प्रसेनजिदभिधानाय इसके आगे सर्व पूर्ववत् पढ पूजा करै।

मंत्र छठे कुलकरका—ॐ नमः षष्टम कुलकराय स्वर्णवर्ण श्याम वर्णा श्री कांता प्रियतमासहिताय धिक्कार मात्र न्यापि न्याय पथाय मरुदेवाभिधानाय आगे पूर्ववत् पढ पूजा करनी।

मंत्र सातमे कुलकरका—ॐ नमः सप्तम कुलकराय कां वर्णाय श्याम वर्णा मरुदेवी प्रियतमासहिताय धिक्कार मा न्यापित न्याय पथाय नाभि अभिधानाय इह विवाह महोत्स आगच्छ २ इत्यादि पूर्ववत् पढके पूजा करै।

श्री शांति के पट्ट पर शासन देवी की स्थापना अभिषेक पट्ट का क करनी अभिषेक का पट्ट पूजा का मंत्र पूर्ववत् पढ़े उसा नाम॥ का कमन आठ पंखड़ी का करना मंत्र शासन देवी का।

ॐ नमो भगवती शासनदेवी चतुर्भुज श्यामवर्णा ॐ धर्मासंसार मण्डितांगि पुण्य मूर्ति अस्मिन् विवाह म आगच्छ २ इह स्थाने तिष्ठ २ सन्निहिता भव भव धूप दीप

विवाह मुहूर्त के घंटा दो घंटा पहले वर घोड़ेपर सवार हो कन्या के घर पर जावे तब सासु मिट्टी का घड़ा कुंकुम से सन्मुख आकर करके तिलक करे दुन्दा उस घड़ेमें नगदी डाले साथ करके पग दूधसे धोवे धूसर मंथान मूसल हल और चरखेकी आकसें वरको पोंखे अर्थात् इनोंको भिन्न २ लाल वस्त्र में लपेट २ फेर करके मस्तकपर फिरानी हुई उतारे ये सब वस्तुएं छोटी २ बनीहुई इस कार्यार्थ पहले ही से तैयार रहती हैं इस उतारेकी चीजों का दो अर्थ भिन्न २ हैं ज्ञानीतो कहते हैं सासू धूसर गाड़ी का दिखाकर समझाती है तुम मेरी बेटीके सामने गाड़ी के वृषभ ज्यों जोते रहोगे मंथान दिखाकर समझाती है इससे जो दही मथाये जाता है त्यों मथे जाओगे २ मूसल दिखा समझाती है धान्य जो खंडाते रहोगे हल दिखा समझाती है छातीमें हल चलायगी मेरी बेटी, आक दिखा समझाती है जैसा इसके सूत लिपटता है वैसे मेरी बेटी के साथ जालमें फस जाओगे अभीभी समझतो विवाह से ये नतीजे होंगे मुनासिब है घर चलेजाओ ।

दोहा

फूलन २ फिरत हैं आज हमारा ब्याह ।
तुलसी गाय बजायके दिया काष्ट में पांव ॥

ऐसा समझनदार कोई एक शिवादेवी नंदन जैसे आजेही होते हैं ।

अब दूसरा अर्थ वर इन चीजों का ये समझना है सासू धूसरा दि-[...]ती है इससे हमारे घर गऊ गाड़ी बैल ज्यादा होंगे मंथान दिखाती है [...] दही के बिलोनेका ठाठ होगा. मूसल दिखाने से धान्य बहोत खंडाते [...]ा हल दिखाने से धन धान्य के खेत की वृद्धि होगी चरखेकी आक [...]ाने से हम स्त्री भर्तार के प्रेम डोरी हमेश बंधी रहेगी ऐसा समझ [...]ह करने उद्यत होना है नव मास अंदर आनेकी आगाही देवें वर [...]क रखे लवण संपुट ऊपर पांवदे कौतुका गार में जावे जहां प्रथम ही [...] बैठी है वरको आया देख खड़ी हो विनय साचवे तदनंतर कुलगुरु दोनों [...]थ में कंकण डोरे बांधे जिनमें मदनफल लगाहो अर्थात् तुम दंपती [...]नका फल प्राप्ति हो वरके दाहिने तर्फ वधूको बिठलावे सब कुलकरों

के सन्मुख सात श्रीफल ७ कुलकरों के क्रमसे मंत्र पूर्वोक्त पढ़ चढ़ावे पूर्वोक्त केसर चंदन से पूजा सात पुंगीफल अलग २ सातों पर पीछे मातृ देवी का मंत्र पढ़ यही द्रव्य चढ़ाकर पूजा करावे ८ ही जगे केशर चंदन के टीके दोनोंमे दिरावे पीछे लाल सूत या मोली की वरमाला दोनोंको कुलगुरु पहनावे पीछे वर वधू का पल्ला पल्ली बांधे पीछे पीसी हुई शमी वृक्ष और पीपल के छाल मिलाकर दोनों के हाथ में देवे यदि यह वस्तु हाजर नहीं होयतो मेंहदी और नागरवेल के पान दोनों के हाथमें देकर हस्त मेलन करावे इस मंत्रको कुलगुरु पढ़ता हुवा।

ॐ अर्हं आत्मासि जीवोसि समकालोसि समकर्मासि समाश्रियोसि समदेहोसि समक्रियोसि समस्नेहोसि समचेष्टितोसि समाभिलाषोसि समेच्छोसि समप्रमोदोसि समविषादोसि समावस्थोसि समनिमित्तोसि समवचोसि समक्षुत्तृष्णोसि समागमोसि समविहारोसि समविषयोसि समशब्दोसि समरूपोसि समरसोसि समगंधोसि समस्पर्शोसि समेन्द्रियोसि समाश्रवोसि समसंवरोसि समबंधोसि समनिर्जरोसि सममोक्षोसि तदेकत्वं इदानीं अर्हं ॐ।

कन्या के घर वेदी बनावे जो चार हाथ चौरी हो उसके चारों कोनों पर बांस की चौरी बनावे सात या नव छोटे २ मिट्टी के घड़े एक एक तरफ क्रम से बड़े पर छोटा इस तरह रखे और त्रिकोण बांस से बंधन करे उन्हीं की चारों तरफ आम्र पत्र का तोरण बांधे वेदी के बीचोबीच में त्रिकोण आकार एक अग्नि कुंड बनावे बाद पीछे कुलगुरु उस वेदी की प्रतिष्ठा पूर्व आसन कुंकुम हाथ में ले मंत्र पढ़े।

ॐ नमः क्षेत्र देवतायै शिवायै क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः इह विवाह मंडपे आगच्छ २ इह बलिं परि भोग्यं गृह्ण गृह्ण भोग देहि, सुखं देहि, यशो देहि, संततिं देहि, ऋद्धिं देहि, वृद्धिं देहि सर्व समीहितं देहि २ स्वाहा।

पक्ष वाले दोनों अपना २ गोत्र जाति वंश प्रकट करे तब पीछे कुलगुरु ये मंत्र पढ़े।

ॐ अर्हं अमुक गोत्रीय इयत्प्रवरः अमुक ज्ञातिः अमुकान्वय अमुक प्रपौत्रः अमुक पौत्रः अमुक पुत्रः अमुक गोत्रीयः इयत्प्रवर अमुक ज्ञातीयः अमुकान्वयः अमुक प्रदौहित्रः अमुक गोत्रीयः इयत्प्रवरः अमुक ज्ञातीयः अमुकान्वयः अमुक प्रपौत्री: अमुक पौत्री: अमुक पुत्री: अमुक गोत्रीयः इयत्प्रवरः अमुक ज्ञातीयः अमुकान्वयः अमुक प्रदौहित्री अमुक गोत्रीयः इयत्प्रवरः अमुकान्वयः अमुक प्रदौहित्री अमुका वधू तदनयोर्निवडो विवाह संबन्धोऽस्तु शांतिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु अर्हं ॐ।

पीछे वर कन्या के हाथमें सुगंध पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि चीजों से अग्निकी पूजा करावे और चावलकी थाली अग्निमें प्रक्षेप करावे कुलगुरु दाहिने तरफ अपने वरको बांई तरफ कन्या को बैठाये मंत्र पढ़े।

ॐ अर्हं अनादिविश्वं अनादिरात्मा अनादिकालः अनादिकर्म अनादिसंबंधो देहिनां देहानुमतानुगतानां क्रोधाहंकार छद्मलोभैः संज्वलनप्रत्याख्याना प्रत्याख्याना नंतानुबंधिभिः शब्दरूपरसगंधस्पर्शेच्छा परिसंकलितैः संबंधोऽनुबंधः प्रतिबंधः संयोगः सुगमः सुकृतः स्वनुष्ठितः सुप्राप्तः सुलब्धो द्रव्यभाव विशेषेण अर्हं ॐ।

पीछे ये पाठ पढ़े, तदस्तु वो सिद्धप्रत्यक्षं केवलिप्रत्यक्षं चतुर्निकायदेव प्रत्यक्षं विवाहाग्निप्रत्यक्षं नाग प्रत्यक्षं नरनारी प्रत्यक्षं जनप्रत्यक्षं गुरु प्रत्यक्षं मातृप्रत्यक्षं पितृप्रत्यक्षं संबंधः सुकृतः सदनुष्ठितः सुप्राप्तः सुबंधः सुसंगतः।

तुम दोनों का विवाह संबंध सिद्ध प्रत्यक्ष केवली प्रत्यक्ष माता पिता प्रत्यक्ष श्रेष्ठ पने हुआ तब अग्नि की परिक्रमा दो तब पल्ला बांधे से कन्या

हेतुरस्ति आश्रव यद्धमास्ति क्रियावद्धमस्ति कायवद्धमस्तिमित्रवद्धमस्ति संसारिकसंबंध अर्हं ॐ ॥

तदपीछे कुलगुरु कन्या के पिता आदि के हाथ में तिल जव कुश और जल देकर ऐसा संकल्प करावे, अद्य अमुक संवत्सरे अमुकायने अमुक ऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुक करणे अमुकमुहूर्ते पूर्वकर्म संबद्धानुबद्ध वस्त्रगंधमाल्यालंकृतां सुवर्ण रूप्य मणि भूषण भूषितां कन्यां ददाम्ययं प्रतिगृह्णीष्व ।

ऐसा कहके वर वधू के हाथ जुडेपर डलावे उस वख्त वर कहे प्रतिगृह्णामि कुलगुरु कहे सुप्रतिगृहितास्तु शांतिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु ऋद्धिरस्तु वृद्धिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु ।

इतना पढ़े पीछे कन्याका हाथ हथलेवे में पहले ऊपर था सो वरका हाथ ऊपर और कन्या का हाथ नीचे करदेना ३ फेरों में कन्या आगे फिरती है इस चोथे फेरे में वर आगे कन्या पीछे रह के फेरा अग्निके बाहर करदेवे और चावलों की धानी अग्निमें डाले अब वरके बांये तर्फ वधूको बैठावे कन्या का पिता भाई आदि गहना वस्त्र आदि देना हो सो देवे पीछे कुलगुरु दूर्वा अक्षत वगैरा सुगंधवस्तु हाथमें लेकर ऐसा पढ़े ।

येनानुष्ठानेन आयोर्हन् शक्रादिदेवकोटिपरिवृतो भोगाय संसारिजीव व्यवहारमार्गसंदर्शनाय सुनंदासुमंगले पर्यणैषीत् ज्ञानमज्ञानं वा तदनुष्ठानानुष्ठितमस्तु, वर वधूके मस्तकपर डाले ।

फेर कन्या का पिता जव तिल कुश जलको हाथमें लेकर वरके हाथ दे और ऐसा कहे (दायंददामि) अर्थात् दायचा देताहूं वर कहे प्रति गृह्णामि अर्थात् लेताहूं पीछे कुलगुरु कहे (सुगृहितमस्तु सुपरिगृहीतमस्तु तब कन्या का पिता जमीन जायदाद वर्तन आदि देना हो सो देवे त पीछे कुलगुरु ऐसा कहे ।

वधू वरौ वां पूर्वकर्मानुबंधन निबिडेन निबिडदृढेन अनुपवर्त्तनीयेन अनुपायेन अश्लेषेन अवश्यभोग्येन विवाह प्रति

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनंचयत्कृतं तत्सर्वंकृपयादेव क्षमस्वपरमेश्वर १

विवाहकी चाल मुल्क २ में भिन्न २ है परन्तु जैन धर्मियों को चाहिये भगवान ऋषभदेव के विवाहकी विधि शक्रेन्द्रकी बताई ही श्रेयकर है जो आवश्यक सूत्र आचार दिनकरादि जैन शास्त्रों से यहां लिखी है धर्मियों को साधुओं की प्रतिनामना जैन पंडित धर्मोपदेशकों को भोजन वसनादि से भक्ति स्वधर्मी वात्सल्य जिन पूजा संसार कृत्य विवाहादि के बाद पूर्वोक्त धर्मक्षेत्र में स्व शक्त्यानुसार धन व्यय करे।

अथ व्रतारोप संस्कार विधि।

जिस दिन अश्वनी, रोहणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवतीनक्षत्र हो रवि, बुध, गुरु, शनि वारहो रिक्त तिथि को छोड कोई भी तिथि हो व्यतीपात वैधृति भद्रा वगेरा कुयोग से रहित हो गणिविज्जा पयन्नेमें जो संध्यागत रविगत विड्डेर क्रूराक्रांत विलंबी राहूगत और ग्रह भिन्न ये सात दोष जो नक्षत्रों के बयान किये हैं तथा वेध लत्ता पात और एकार्गल वगेरा दोषों को यथाक्रम अच्छे नक्षत्र को ग्रहण करना कोई अच्छा योग मिल जाय तो नक्षत्र चाहे सो हो हर्ज नहीं धन मीन के सूर्य में वर्षाकाल चातुर्मास में तारा अस्तमें अधिक मास में मिथुन, वृश्चिक, धन और कुंभ लग्न दीक्षाके वास्ते अच्छे हैं वृषभ और तुला लग्न और इन दोनों का नवांश भी अच्छा नहीं दीक्षाके ल्पाम में लग्न साधारण वस्तु है परन्तु लग्न शुद्धि में बलवान मिलै तो हर्ज नहीं लग्नकी उदय और अस्तशुद्धि भी देखना चाहिये दोनों [illegible] मिले तो उदयशुद्धि अवश्य देखना दीक्षा लेने वाले का चंद्रस्वर [illegible] हो तो श्रेष्ठ यदि देनेवाले गुरु का भी चलताहो तो महा श्रेष्ठ है।

१ नवकारका काउसग्गकर स्तुतिकहै यदंघ्रि
देहिनःसंति सुखिना तस्मैनमस्तुवीराय सर्वविघ्नवि
१ लोगस्स वंदनवत्तियाए अन्नत्थु० १ नवकारका काउ
सुरपतिनतचरणयुगा न्नाभेयजिनादिजिनपतिनौमि यद्वचनपालन
पराः जलांजलिंददतुदुःखेभ्यः २ पुक्खरवरदी० नवकारका
काउसग्ग, वदंतिवृंदारुगणाग्रतोजिना सदर्थतोयद्रचयंतिसूत्रतः
गणाधिपास्तीर्थ समर्थनक्षणे तदंगिनामस्तुमतंनमुक्तये: ३ सिद्धा
णं बुद्धाणं० वेयावच्चगराणं० १ नवकारका काउसग्ग शक्रः
सुरासुरवरैः सहदेवताभिः सर्वज्ञशासनसुखाय समुद्यताभिः
श्रीवर्द्धमान जिनदत्तमत प्रवृत्तान् भव्यान् जनानवतुनित्यममंगले
भ्यः ४ श्रीशांतिनाथ आराधनार्थं करेमिकाउस्सग्गं वंदणवत्ति
याए० १ नवकारकाकाउस्सग्ग, रोगशोकादिभिर्दोषैरजितायजिता
रये नमः श्रीशांतयेतस्मै विहितानंतशांतये ५ श्रीशांतिदेवता
निमित्तंकरेमि काउसग्गं १ नवकार० श्रीशांतिजिनभक्ताय
भव्याय सुखसंपदां श्रीशांतिदेवतादेया दशांतिमपनीयतां ६
श्रुतदेवतानिमित्तंकरेमिका० १ नवकारकाका० सुवर्णशालिनी
देयात् द्वादशांगीजिनोद्भवाः श्रुतदेविसदामह्य मशेषश्रुतसंपदं
७ भुवनदेवतानिमित्तंकरेमि० चतुर्वर्णायसंघाय देविभुवनवा
सिनी निहत्यदुरितान्येषा करोतुसुखमक्षतं ८ क्षेत्रदेवता आराध
नार्थंक० यासांक्षेत्रगतासंति साधवः श्रावकादयः जिनाज्ञांसाध
यंतस्ता रक्षंतुक्षेत्रदेवता ९ अंबिका आराधना० अंबानिहतडिंबामे
सिद्धबुद्धसुतान्विता सितेसिंहस्थिताधाणीर्विं वितनोतुसमीहितं १०
पद्मावती आराधनार्थं० धराधिपतिपत्नीया देवी पद्मावतीसदा
क्षुद्रोपद्रवतः सामां पातुस्फुरत्फणावली ११ चक्रेश्वरी आराध०
चंचच्चक्रधराचारुः प्रवालदलसंनिभा चिरंचक्रेश्वरीदेवी नंदतादव
ताच्चमां १२ अच्छुप्तादेवी आराधनार्थं० खड्गखेटककोदंड
बाणपाणिस्तडिद्द्युतिः तुरंगगमनाच्छुप्ता कल्याणानिकरोतुमे
१३ कुबेरादिदेवता आराधनार्थं० मथुरापुरिसुपार्श्वश्री श्रीपार्श्व

रागद्वेष वीतराग सच्चेगुरु गच्छे धर्मकी श्रद्धा रक्खो इसमें ही पहुंचना है किसी जीवको जानकर मत मारो हर काममें यत्न करो जीव जो वायुकाय वगैरा है उनकी दया हरगिज नहीं पलेगी इसले जीवोंकी रक्षा के कारण स्थावरजीवों को जरूर बचाना चाहिये गृहस्थ श्रावक १२ व्रतधारी से भी ५ स्थावरों की हिंसा का त्याग नहीं होसकता मर्तपयो २ बड़े झूंठ बोलने का त्याग करो ३ चोरी ठगोरी दगाबाजी त्यागो ४ पर स्त्री से बचो ४ धन धान्यादिक से ममता घटाकर प्रमाण करो ५ राज विरुद्ध लोकविरुद्ध सर्व कार्य त्यागो ६ रात्रि भोजन का नियम करो ७ चौदह नियम हमेशा याद करो ७ दशों दिशाओं में जाने का प्रमाण करो ८ किसी को कड़वाने देग दुःखी मत मानों कर्मका स्वरूप विचारो ९ हमेश समताकर सामायक करो १ माला जरूर परमेष्ठी मंत्र की जपो १० पर्व तिथि में देशावकाशिक तथा पौषधोपवास करो ११ साधुओं को सब उचित वस्तु का दान देकर भोजन करो १२ दीन दुःखी अनाथ की खबर लो १३ हरसाल १ तीर्थ की यात्रा करो १४ देव मंदिर का जीर्णोद्धार कराओ १५ धर्मशाला बनवाओ १६ व्याख्यान हमेशा सुनाकरो १७ सामक्त किसीके भी मत खाओ एक पात्र से १८ सज्जन के वियोग होजानेमे ज्यादा शोक मत करो १९ पैदायस में से धर्मका हिस्सा जरूर निकाला करो २० जो तुमारा मन सर इंद्रिय दमन में पूरा वश होगया हो तो साधुपना ग्रहण करो क्योंकि आजकल दुःख गर्भित वैराग्यवान् मोह गर्भित वैराग्यवानसे ज्यादा साधुपना लेते हैं साधु धनके न किसी के वंदन से खुशहो न गरम आहार से खुशहो तपस्की चौकसी सब करते आओ।

साधुपना लेना होतो १८ स्तुति से देव वंदना कर खमासमण देकर इच्छा कारेण संदिसह भगवन् मुण्डे सर्व सयल्याणई वेषं समप्पह तब गुरु कहे गुण्हई करेह ३ नवकार मनमें पढ गुरु मस्तक की शिखाके बाल मोती धव चांदी के कड़े में थोड़ा बांधे वाम कर करे गुरु पूर्व या उत्तर मुख करके वेशकारण्ल मांगे तब नमनकर ईशान कूण में जाकर आभरणादि उतारकर क्षुर मुंडन करावे स्नानान्तर वेष पहर गुरु पास आकर खमासमण देकर

श्याम दिनकी शूल तृषा लगना यह मरता है सब वस्तु लालरंग की दिखलाई दे मर्म धूम जलने दीखे ये असाध्य रोगके चिन्ह हैं, जिस रोगी के हस्तपाद तो उष्ण रहें हुशियारी से बात करे तो जानना रोगी मरेगा नहीं, जिसकी रोगी हालतमें भी लज्या स्त्री की विद्यमान है तो मरेगी नहीं, देखनेकी शक्ति रोग से चलीजावे तो जानलो रोग कष्टकारी है, रोगीको अपनी जिव्हा तथा नाक की अनी आंखोंसे नहीं दीखे जानलो मृत्यु समीप है, जिसकी अपनी देहकी छाया में मस्तक दिखाई नहीं दे खुराक बिल्कुल छूटजाय तो मृत्यु समीप जानो, जिसरोगी की गरदन आप से स्थिर नहीं रहे तो जानलो व्याधि कष्टप्रद है, अपने दोनों कानों में एक साथ दोनों अंगुली दबाकर देखो भीतरका घोरशब्द सुनाई देता है या नहीं यदि नहीं सुनाई दे तो जानलो कि मरना नजीक है, रोगीकी भ्रू टेढी होजाय तो नव दिनकी आयु है, कान से शब्द नहीं सुनाई देतो ७ दिन की आयु है, नाकसे सुगंध दुर्गंध का ज्ञान नहीं रहे तो ५ दिनकी आयु है, अपने हाथोंकी रेखा नहीं दीखे तो ३ दिनकी आयु है, जिव्हाका रसास्वाद न आतारहे तो एक दो दिनकी आयु है, शिरका तिलक सूके नहीं तो सात दिनमें मृत्यु, नाककी डंडीपर अपने हाथके पोंचेको लगाकर देखे हाथ जैसा हाथ दीखे तो १ मास में मृत्यु, पादा दीख बिल्कुल पांवों के लगे नहीं तो ७ दिन में मृत्यु, अंधेरी रातको आंखें मसल उघाडने से बिजली नहीं भलकावे तो मृत्यु नजीक जाननी, दिनको दहोत देखकर आंख मुंदी रखने से आकाश में तरह २ की धारें नहीं चर्पनी दिखाई दें तो मृत्यु नजीक जाननी, छींक खांसी [illegible] दस्त मूत्र निकलपडे तो १ महीने में मृत्यु जाननी, रातको स्वप्न अच्छा नहीं दीखे तो जानना मृत्यु आगई, चैत सुदि ४ को सूर्य उदय समय चन्द्रस्वर नहीं चले तो नव महीने में मृत्यु जाननी सप्तऋषि दीखते हों ऐसे आकाश के मध्य एकटकि लगावे [illegible] [illegible] नहीं [illegible] ऐसे ६ महीना [illegible] ने [illegible] दूसरा आकाश में [illegible] दीखता अब [illegible] नहीं दीखे तो ३ वर्ष में निश्चय मृत्यु, [illegible] हाथ नहीं दीखे तो [illegible] मृत्यु [illegible] हाथ नहीं दीखने [illegible] मृत्यु [illegible] पांव नहीं दीखने से पुत्र की मृत्यु, [illegible] पांव नहीं दीखने से [illegible] की मृत्यु ऐसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ।

मृत्यु चिन्ह जान के पद्मावती सुने, पुण्य प्रकाश सुने, पंकार इत्यादि स्तवन सुन सब जीवों से खमावे १८ पाप स्थान को करे बोसरावे गृह संबन्धी पापकारी अधिकरण धनादिक द्रव्य व्यापार छोड अनित्यादि १२ भावना भावे अर्हंत सरण १, सिद्ध सर्व साधु सरण ३, केवली प्ररूपित धर्म का सरण ४, अरिहंत ध्यान करता समाधि से देह को बोसरावे।

जैन साधु का पंडित मरन होता है सर्व व्रती होने से १, देश व्रत धारी का बाल पंडित मरन होता है २, अज्ञानी अव्रती का बाल मरन होता है ३।

ठाणांग सूत्र में लिखा है जिसका जीव पांव से निकले वह नरकगति जाता है कमर के नीचे भाग से कहां से ही निकले वह तिर्यंच गति में जाता है २, छाती से निकले मनुष्य गति में जाता है ३, जिसका मुंह से आंख से मस्तक से निकले वह देवगति में जाता है ४, ये बात व्यवहार नय से है निश्चय नय से तो केवली जाने वह कौनसी गति में गया जीव मुए दूसरी गति में जाता है लोक कहते हैं यम के दूत आये थे उसको पकड़ ले गये थे सब अज्ञों के बोलने हैं जीव जैसा कर्म करता है वैसा फल उसको आप ही से मिल जाता है बाकी तो सब निमित्त मात्र बन जाता है आत्मा अरूपी वस्तु है वह [illegible] लोह की कोठी में से भी निकल जाता है जैसे सब [illegible] परन्तु इसके पात से जैसे जीव उत्पन्न होजाता है वैसे कर्मों के उदय से आत्मा चेतन हो जाता है।

कुटुम्ब के लोकों का मरने से शोक को त्याग के मरने वाले को धर्म सुनाना यह न [illegible] न गणधर सनत्कुमार आदि समुद्रपालादिक ही काल [illegible] लिखा यह निन्दा का लोक ईश्वर तथा अवतार मानते हैं तो सामान्य मनुष्य तो किस गिनती में इस वास्ते शोक करना कर्मबंध का हेतु है अन्य २ लोक कोई तो मृतक को गाडते हैं कोई श्मसान करके उसको जलाते हैं कोई जल में बहा देते हैं आगे जंगल में भी छोड देने की चाल थी परन्तु जब श्रीऋषभदेव कैलाश पर निर्वाण पाये उनका शरीर

स्नान चंदन का लेप कर सर्व देवतोंने सुगंध द्रव्यों से अग्नि संस्कार करा तब से आर्य जैनीयों में वही विधि प्रचलित है सब विधि से अग्नि संस्कार विधि प्रजाहितकारही है क्योंकि सुगंध द्रव्यों से दुगंध के परमाणु वातावरण से छिन्न भिन्न होजाते हैं गमी के वस्त दुस्मन के भी जाना उत्तमों का काम है जलाई हुई चिता के उपर थडा छतरी वनाना जिससे वह उडे नहीं संतानों के लिये याददास्ती रहती है शक्रेन्द्र ने ऋषभ प्रभु का स्तूप रचा राजा भरत चक्रवर्ति ने भी कैलाश पर सौ भाइयों की चिता पर सौ स्तूप कराये आवश्यकजी में लिखा है मरने वाले के घर १२ दिन सूतक है उस घर का खान पान जैन मुनि भी नहीं लेते मरे के पीछे जो कुछ लोक करते हैं वह सब लोकाचार है उस जीव को कुछ नहीं पहुंचता अलबत्त इस बहाने धन खरचने वाले को कीर्ति दान का फल हासल होता है गंगादेवी के संग ६० सहस्र वर्ष दिग्विजय करते भरत चक्री ने स्त्री का व्यवहार किया सत्रुंजय महात्म्य में लिखा है चार तीर्थंकर सुपार्श्व ७ चंदा प्रभु ८ श्रेयांस ११ और पार्श्व प्रभु २३ इन्हों के चरण स्पर्श से गंगा तीर्थ जल पवित्र माना गया है जो अनभिज्ञ जन कहा करते हैं जैन सूत्र में चार संघ को ही तीर्थ कहा अन्य तीर्थ कहा नहीं उत्तर-जंबू द्वीप पन्नती सूत्र में भरत चक्रवर्ति का दिग्विजय मागध १ वरदाम २ प्रभास ३ क्षेत्र इन तीर्थों में भी हुआ लिखा है ये चारों से भिन्न ३ तीर्थ कैसे लिखा है आचारांग सूत्र की चूलिका में बहोत से जैन तीर्थों का लेख है।

इति श्रीजैन दिग्विजय पताकाया पोडस सस्कार वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्याय सम्पूर्णम् ।

की भेट पूजा. प्रभावना. स्नात्रियों को पहरावणी, शक्ति होवतो संघ पहरावणी, साधर्मी वात्सल्य. तम्बोल, नारेल. सुपारी. आदि से करे. जैसा द्रव्य व्यय करैं. तैसेही फलदाता है. पीछे अट्ठाई महोत्सव पूजा. दादा गुरुदेव की पूजा, इत्यादि चढ़ावें. विस्तार विधि गुरु मुख धारणा करणी नवग्रह दश दिग्पाल अष्टमंगल. दो पट्ट. सदरा लिखी लिख कर स्थापन करें।

अथ चैत्य प्रतिष्ठा विधिः ।

अच्छे दिन शुभ उत्तम ग्रह बलयुक्त स्थिर लग्न कराने वाले को शुभचन्द्रबल, लग्न को पधाकर लेणा. मुहूर्त देनेवाले को अक्षत द्रव्य श्रीफल वस्त्रादि देकर सत्कार करणा. अब लग्न के दिन से प्रथम १० दिन वा ७ दिन वा ५ दिन. कम से कम ३ दिन पहले, जिनगृह के अन्दर वा बाहिर कम से कम १०० हाथ भूमि चारों दिशा में शुद्ध करावे. जहां से जिन बिंब लाना होय वह-भूमि भी पवित्र करानी, दोनों जगह मंडप वस्त्र का बंधवाना, दोनों जगह प्रभात संध्या मंगल गायन गीत गवाना, पीछे संघ के लोग तथा स्नात्रिया तथा प्रतिष्ठाकारक, उच्छव प्रारम्भ के दिन से एकाशण करे ब्रह्मचर्य धारे, सचित्त त्यागे, मलीन अशुद्ध व्यापार नहीं करे. भूमिया पट्ट पर शयन करे, प्रसन्नचित्त से वर्ते जिस जगह जिन बिंबस्थापन करना है. उस जगह तीनों टंक दीप, धूप, युक्त. पवित्र वस्त्र नए आसन पर बैठ सप्त स्मरण का पाठ करे, एक नवीन कोरा रूपा व तांबे का कलश बड़ा जल पवित्र का भरा हुआ. उस जल को सोनेवाणी मान नवकार तथा ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ रक्षां कुरु २ स्वाहा। ये सात बेर पढ़ के करे, वह मंत्रित सोना पाणी चैत्य में सर्वत्र छिड़के प्रतिष्ठाकर्ता के भी घर में छिड़के. उत्तम धूप खेवे, पीछे उस दिन वा दूसरे दिन शुभ लग्न देख कुंभस्थापन चक्रानुसार कुंभ जहां जिन बिंबस्थापन करना है उसके दाहिने तरफ चार कोरे सरा (पालसियों) में चारों दिशि में जवारा बोवे, वह पात्र धरे, सुहागण स्त्री से सत्तावर जवों का स्नात्रिक करावे. जवारों के मध्यभाग में

अरहउ भगव ओ महावीरस्स सिज्झउमे भगवई महाविज्जाओ, वीरे २ महावीरे जय वीरे सेणवीरे ५८ वीरे जय विजय जयंते अपराजिए सव्वट्ट सिद्धे, महाणमे महब्बले ओं ह्रीं स्वाहाः इस मंत्र से ७ वेर मंत्र करे।

पीछे बलिबाकुल, निम्बु मांकली, थडे पाजा, लापसी मिला१० में उछाले पीछे शिष्य के हाथ के कंकणडोरा, स्वर्ण मुद्रिका धारण करा केसर चंदन से पादुका की पूजा करावे कर्पूर कस्तूरी पुष्प चढावे, कुंकुम के हत्थे देवै ५ नालेर ५ पुड़ी ५ नाटन (सरबत करावे) सेर जो पादुका सन्मुख चढावें वह पुजारी को देवे बाकी शेष मिष्टान्न भात आविका को देवे पीछे [illegible] मर्यादा से आवे तब कलश वह का भग (वह भेटा) सन्मुख भोजक लावे उसमें श्रावक रूप्यमुद्रा डालें वह पीछे [illegible] गुरु प्रतिष्ठा भक्ति के फल का धर्मोपदेश करे पीछे [illegible] को दान देवे कहांइ ये भी [illegible] गणधर गुरु स्तूप प्रतिष्ठा विधिः।

स्तूप प्रतिष्ठा में [illegible] है, उह्वे मुख नक्षत्र लेना स्तूप प्रतिष्ठा [illegible] में भी [illegible] सकती है बीकानेर चिंतामणिजी के मन्दिर में स्तूप [illegible] है बृहस्पति १ शनि २ सोम ३ [illegible] में पंचक में दीक्षा प्रतिष्ठा हो सकता है [illegible] सोमवार क्षेमकर है २ मंगलवार [illegible] नाशना, ४ गुरु में प्रतिमा [illegible] प्रतिष्ठा द्रव्य नाशकारी लेकिन प्रतिमा [illegible] उत्तम।

अथ कलश प्रतिष्ठा विधिः।

शुभ लग्न में प्रथम जमीन की शुद्धकर पीछे पंचरत्न की पोटली कुम्भ केवक की मट्टी सूगी का शाल के उपरांत रख स्थापन,

स्वाहा पीछे सप्तस्मरण बड़ी शांति लघुशांति ७ नवकार ७ उवसग्ग गिणकर शांतिक पौष्टिक करै दिग्पाल विसर्जन करै अपने प्रतिष्ठाकारक गुरु कों वस्त्र नगद भेट देवै स्वजातिकों यथाशक्ति भोजन ताम्बूल देवै।

हट्ट प्रतिष्ठा ॐ श्रीं वांछितदायिन्यैनमः इस मंत्र कों पढकर करै, मठकी ओं ऐं वाग्वादिन्यैनमः, इस मंत्र को पढकर करै उष्ट्र की प्रतिष्ठा ओं ह्रींहूं सवाहायै नमः इस मंत्र को पढकर करै घास पड़ने की शाला कि प्रतिष्ठा ओं भूतधात्र्यैनम तृणागार की प्रतिष्ठा ओं शांतायैनमः ऐसा पढकर करै सत्रागार दान शाला की प्रतिष्ठा ओं अन्नपूर्णायैनमः प्रपा (पो) की प्रतिष्ठा ओं वरुणायैनमः पढकर करै हस्तिशाला की प्रतिष्ठा ओं रं अग्न्यैनमः पढकरै इन सबों के द्वार छाजन दिवालों की प्रतिष्ठा पूर्ववत् करै। इति गृह प्रतिष्ठा विधिः।

दश मे विद्याप्रवाद पूर्वान्तर्गत ये सर्व मंत्र विद्या परं परागत आचार्य २ चित्तग्रंथ परिपाटी प्रवाह से विक्रमसंवत १४ सय में श्री रुद्रपल्ली खरतर गच्छ नायक वर्द्धमान सूरि ने सप्रमाण आचार दिनकरनाम ग्रंथ रच उसमें सर्व प्रकार चैत्य, दंड, ध्वज, जलाशय, देवी, क्षेत्रपाल, ५२ वीर ६४ योगिनी, इत्यादि सर्व प्रतिष्ठा का संग्रह करा है ऐसी कोई प्रतिष्ठा नहीं जो कि इस ग्रंथ में न हो तदनुसार ही गृह.प्रतिष्ठा आदि लिखी है।

अथ शांतिकपूजा में प्रथमदिन जलयात्रा विधिः।

शांतिकपूजा तथा जलयात्रा में जो वस्तु चाहिए सो लिखते हैं।

चार देवीये मट्टी के (छोटे घड़े) चेनमट्टी पोतकर मेरु के रंग से रंगिए जैसे विवाद में मटके को करते हैं तैसा चाहिये सिंहासन १ पट्टा १ बड़ा कलश जलधारा योग्य १ छोटे कलश ४ झारी १ मंगलदीपक १ धूपधाणा १ पुष्पमाला १ या ६ नारेल ६ फल धूप दीप वासक्षेप पुष्प, गजवर्ण नग ५१ नन्द्यावर्त्त प्रतिष्ठा विधि में लिखे अनुसार

थाली सवा सेर घृत सवासेर छत्र, चामर ध्वजा पंचशब्दादि वाजित्र तंबोलपत्र अंगलूहणा धोतिया ५ केसर चंदन कपूर बडा मटका २ विवाह में लेते जैसे।

अथ जलयात्रा विधिः।

पालखी में श्री शांतिनाथ स्वामी की प्रतिमा वा श्री पार्श्वनाथजी की प्रतिमा विराजमान करें पंचतीर्थी की स्नात्र करावै, नवग्रह, दश दिग्पाल की पट्टों की पूजा कर दोनों पट्ट प्रतिष्ठा में लिखे विधि अनुसार स्थापन करें मंदिर से उहां से छत्र, चमर, ध्वज, घोडे, हस्ती नाना वाजित्र जिनगुण गायन करते महामहोत्सव पूर्वक श्री संघयुक्त पीछे गुरु उनों के पीछे स्त्रियें जिनगुण गाती हुई जल भरणार्थ चार छोटे घडे स्नात्र करण सामग्री साथ लिये बलिबाकुल जल के स्थान प्रथम से ही तइयार करवा रखें इस प्रकार पवित्र जलाशय के स्थान जावें, प्रभु की पालखी शुद्ध भूमी पर विराजमान करें, स्नात्र करावें, विस्तार से माला चढावें [illegible] साथ बलिबाकुल लेकर दश दिग्पालों को बलिबाकुल देवे आह्वान करें।

[illegible] तीन पुंज प्रतिमा के सन्मुख [illegible] लोंग [illegible]

[illegible]

उत्तर—यह शांति विधि किसी प्राचीन लिखित के अनुसार मद्देशादिक (जहां नाकोडा तीर्थ है) वहां के विधि के जानने श्रावकों का करते हुए अनुक्रम को देख कर के विक्रम [illegible] गीतार्थ आचार्यों ने लिखा है वह संस्कृत का अनुवाद हिन्दी भाषा में करा है।

शुभ दिन शुभ मुहूर्त में शुभ समय में संघ के नाम से वो एक करने वाले के नाम का चंद्रबल श्रेष्ठ लेकर के गुरु के उपदेश से संघ समुदाय को एकत्रित कर जिन चैत्य में आकर प्रथम शुद्ध पवित्र जल से स्नान तिलक जनेउ हाथ के मोली बांध कर [illegible] पंचतीर्थीजी की स्नात्र करे, पीछे मूल नायकजी के [illegible] हुआ निश्चल १ पट्टा बिछाय उसपर केसर से [illegible] करे ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ अनुक्रम से चावल से [illegible] स्थापना करे तब पीछे दहने तरफ १० दिग्पालों के पट्टे पर प्रतिष्ठा विधि में लिखे अनुसार पूजा करके स्थापन करे पीछे मूलनायकजी के बांये तरफ नवग्रह के पट्टे की स्थापना पूजा करके करे पीछे [illegible] क्षेत्रपाल (देवता) शासन देवता, नवग्रह के समीप ही स्थापन करे, एवं २५ देवतों की स्थापना इन तीनों की भी बलि पुष्प धूप दीप नैवेद्य फलादि वासचूर्ण प्रक्षेप करना, पीछे १४ पूंज पर ऐसा मंत्र पढ़, नमः पुंजिमुच्चयेषु, द्रव्योपि गुरुणोदिता, बलि पूजां प्रतीच्छंतु संतुसंघस्यशांतये / इस श्लोक से सर्व पूंज पर अखंड धारा देना।

यह पीछे बलिबाकुल प्रतिष्ठाविधि में लिखे अनुसार तैयार करके उसमें अतर गुलाब जल मिला पूर्व प्रतिष्ठाविधि में लिखे मंत्र से वासचूर्ण ३ बेर प्रक्षेप कर आधे बलिबाकुल अशेष रख. आधे लेकर १० दिग्पालों का आव्हान करे, नाम शांतिक पूजा महोत्सवे आगच्छ २ ऐसा कहना/ प्रथम इंद्र के आव्हान में तथा अंत के आव्हान में नमोर्हत्सिद्ध कहकर पीछे श्लोक कहना।

यदि शांतिक पूजा श्रीसंघ की तरफ से होय तब तो मंदिरजी का कलश लेना जो एक कराता होय तो उसके घर से चार भाविकवाली सुहागण स्त्री के मस्तक पर कलश देना उसके घर से कलश में पंचरत्न की पोटली डाल ऊपर लाल वस्त्र मुख पर देके मौली से बांधकर वाजित्र, गीत गान, दान, सन्मान से मंदिरजी में कलश अर्थात् मटका मंगाना फिर यह कलश भवन रखे पट्टे पर केशर का साथिया उसपर धरवाना, वा तिवर्षी पर धरना, उस कलश में शांतिनाथ स्वामी की प्रतिमा साथिया कर धरना उस कलश के ऊपर मौली की तणी चारों दिसि खाज पेकर बांधनी उस तणी के मध्यभाग में मौली का नालेर की आकृतिका दड़ा बनाकर ऐसा लटकाना सो दड़ा उस मटके के अन्दर प्रतिमाजी के चार अंगुल ऊंचा अधर रहे, उस मटके की पुष्प, चंदन से पूजा श्रावक करें, गुरु ३ नवकार से मटके पर वासखेप करें, पीछे मटके के आगे कुसुमांजलि, लवण पानी परियापनि का (लाल वस्त्र ओढ़ावे) आरती ४ मंगलदीप करना, घृतनड़े, मौली की बत्ती, इस प्रकार दीपक में करना सो एक ही बत्ती शांतिपूजा की पूर्णता हो उहां तक बुझे नहीं पीछे चतुर्विधसंघयुक्त गुरु इरियावही पडिक्कम में १ लोगस्स का काउसग्ग करें पीछे पार के नमोत्थुणं सव्वां त्रुतांइवंदे पर्यंत पीछे १८ स्तुति से देव वंदे, जैसे प्रतिष्ठाविधि में लिखा है देव वंदन करते बीच में से किसी कूं निकलने नहीं देना ये अंतरायदोष कहाता है।

पीछे संपूर्ण अंगोपांगवाले अजिनका डंभ जिसके पेग में न लगा हो सो परधीन हो सुशील, पुत्रवाला, महोदंबन हाथ के मौली बंधा हुआ पहेन गुब्बेन में विचक्षण ऐसे आठ इंद्र के स्थानक स्नात्रिये पविआंग को बुलाना।

एक स्नात्रिया दोनों हाथ से मटके को पकड़ के रक्खे, एक धूप देवे, एक पुष्प चंदन वासखेप करे, दो स्नात्रिये पंचामृत के कलश भरे हुये नवकार मनमें स्मरण करते नाव देव जल की धारा टहर २ देवे, पीछे नमोर्हत्सिद्धा० कहके कर नम स्मरण गिने, भक्तामर छोटी

शांति बड़ी शांति गिणै, पार्श्वनाथ स्वामी का प्रक्षालजल इस शांति जल में मटके में मिलावे, पीछे मंगल दीप को खमावे पुष्प, धूप, दूध के पक्ष से धूप को मिलावे, पीछे अर्द्ध वलियाकुल रहे यह देकर दिग्पाल का विसर्जन करे।

सामान्य श्री दिग्पतिनां विसर्जनं कृत्वाशेषान्, शेषी व्यायतारान् प्रासानारानप्रेपयें त्स्वाधिवासान् १ अर्हदभिषेक दर्शितसा निध्यनिरस्त कल्मषो उल्लंघा गच्छंतियथास्थानं केचिदुपगता देवा २ शक्राद्यालोकपालादिशि विदिशिगता शुद्धसद्धर्म्मशक्ताः, आगाता स्नान काले कलुष हृति कृते तीर्थनाथस्य भक्त्या, न्यस्ताशेषापदाघ्ना विहितशिवमुख्याःस्वस्थपदं गमनंते, स्नात्रे पूजा मवाप्य स्वमनिकुलमुदोयांतु कल्याण भाजः। इन दो श्लोकों को पढ कर सर्व देवों का विसर्जन करे, पीछे देवगृह पर द्रव्य देवै, याचक को दान देवै, गुरु की वस्त्र द्रव्यादि से पूजा करै, पीछे गुरु वह मटके का मोली का दूडा निकलवा के रायडी ३ नवकार ३ उपसग्ग हर से मंत्र २ के देवे, मटके का शांतिकजल पूर्वोक्त शांति मंत्र पार्श्वनाथ मंत्र से मंत्र कलश में डाल संघ के घरों में छींटे दिवालों पर देवै जहां पग न पडे, उससे देश नगर में सर्वत्र शांति होय, ऋद्धि वृद्धि सिद्धिसंपदा होय, आधिव्याधिरोग शोक क्षुद्र उपद्रव दूर जावे। इति शांतिक पूजा विधि।

कोइयक विधि कर्ता ओं ह्रीं नमः ओं ह्रीं अर्हंनमः १ नवकार उवसग्ग२ संतिकरं ३ तिजयपहुत्त ४ नमिऊण ५ बडी शांति ६ अजियशांत ७ भक्तामर ८ छोटी शांति गिणते हैं, इसको ९ स्मरण कहकर शांति कलश डालते समय पढते हैं।

केइयक अजियशांता १ उल्लासिक्कम २ नमिऊण ३ तंजयउ ४ मयर हिय ५ सिग्घमवहरउ ६ उवसग्ग ७ इसको सप्त स्मरण कहते हैं।

अथ गुरु वर्णनम् ।

सर्व प्रकार जीव हिंसा, सर्व प्रकार झूंठ, सर्व प्रकार अदत्त वस्तु, सर्व प्रकार मैथुन, सर्व प्रकार धनादि परिग्रह इन पांचों को त्रिविध की आज्ञानुसार त्यागने वाले, क्रोधादि ४ कषाय के त्यागने वाले, त्रिगुप्ति शुद्ध कल्पादि के भोजी, नवकल्प से विहारकर्ता, १२ अनित्यादि धर्म के भावनायें रखने वाले, क्षेत्र, काल, देश, भावानुसार प्रवर्तने वाले, शुद्ध जैन शास्त्रानुसार उपदेश कर्ता, प्रवचन पढ़ावें वे गुरु कहाते हैं।

ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर के मुख्य ८४ शिष्य गणधर (गणेश) हुवे उन्हों का ८४ गच्छ हुवा इस प्रकार सर्व तीर्थंकर के गणधारी शिष्य १४५२ सर्व हुवे पूर्व के हाथ ऊपर जिनधर्मी गृहस्थ इन गणेशों की मूर्ति करके प्रवाह से चले आये सर्व मांगल्य कार्य में भी इन्हीं की स्थापना कर पूजा करते चले आये इस समय जिन धर्मी मिथ्यात्व धर्मियों के संग से ये विधि भूल गये हैं भगवान् महावीर के निर्वाण के ६०९ वर्ष पीछे दिगम्बर मत जुदा हो गया उनके लेखानुसार नग्नमुनि तथा साध्वी नहीं कलियुग में होवे इसलिये श्रावक श्राविका २ संघ ही हैं उन्हों के पुराणों में चतुर्विध संघ पंचम आरे के अंत पर्यन्त जैन धर्म में रहेगा ऐसा लिखा है श्वेताम्बरी में ४ संघ हैं, इनमें मुख्य श्री जिनदत्तादि आचार्यों ने लाखों राजन्यवंशी आदि उत्तम वर्ण को महाजन धर्म जैनी करा है, लाखों जैन शास्त्र रचे हैं जिनके अनुसार राजा महाराजा तथा यवन बादशाहों के सन्मुख जैनधर्म पर आक्षेप कर्ता वादियों का मद हरा है, जैनधर्म पर आपत्ति गेरनेवालों से जैन शासन की रक्षा करी है. सर्वविद्या में निपुण थे. अस्त उदयकाल का धर्म है. अस्त होता है उसका ही पुनः उदय होता है. पंचम आरे २१ हजार वर्ष में इन्हों में २२ अस्त और २२ उदय होंगे. ऐसा जैन शास्त्र में लेख है. अणुव्रती तथा सम्यक्त्वी को गुरु मानने में शंका करनेवालों के लिए समाधान ॥

ज्ञाता सूत्र में जितशत्रु राजा को सुबुद्धि प्रधान ने दुर्गंधित खाई के जल को सुगंधित कर पान कराके जिनोक्त तत्त्व की पूर्ति श्रद्धावंत श्रावक

करा ऐसा लिखा है जिन शत्रु राजा का धर्म तत्व दायक सुबुद्धि धर्मगुरु न्याय संपन्नसिद्ध है १ फेर इसही सूत्र में स्वर्ण पूतली के से गृहस्थ आप मल्लिराजवरकन्या पूर्व भव के छहों मित्रों को प्रतिबोध जाति स्मरण ज्ञानवंत करके धर्म की श्रद्धा कराई, इसलिए धर्म गुरु छहों राजों की मल्लिराजकन्या गृहस्थणी न्याय संपन्न सिद्ध है २ सूयगडांग सूत्र में आर्द्रक राजधानी यवनदेश अनार्य में श्रेणिक की भेटणा भेज अभयकुमार मंत्री ने आर्द्रकुमार को जाती स्मरण जिनोक्त तत्व की श्रद्धावाला करा. इसलिए अभयकुमार मंत्री आर्द्रकुमार जी का धर्म गुरु न्याय संपन्न सिद्ध है ३ जो कहते हैं अभयकुमार ने रजोहरण, मुखपती भेजी जिससे आर्द्रकुमार को ज्ञान हुआ, ये कथन कपोल कल्पित प्रमाणशून्य है क्योंकि विक्रम संवत् पांचवीं शताब्दी में जैनागम पुस्तकों पर लिखे गये, और विक्रम छठशताब्दी में शीलांगाचार्य ने सूयगडांग की टीका में जिनप्रतिमा का भेजना लिखा है, समुद्र जैसे बुद्धि शाली का लेख मंजूर करें, या विक्रम सतरह सौ में प्रगटे सागर आप के ऐसा जिनों की वाणी मंजूर करें, अलंविस्तरेण।

द्वारिका में श्रीकृष्णचन्द्रनारायण के समय चारुदत्तवणिग्लोभाग्रस्त रत्नद्वीप जाने के कथन में रत्नद्वीप पहुंचाने एक बकरे को प्राणरहित करके भस्त्रा मंत्र श्रवण कराकर आराधना कराई और बकरे को कहा है अब या तो तैंने मुझे पूर्व किसी भव में मारा है, या नया बदला मेरे मस्तक लग पड़ेगा जीवहिंसा तुझ को मारने में अवश्य मुझे दुःखप्रद होगी, लेकिन यदि तुझे न मारूं तो मेरा रत्नद्वीप जीवलब्ध नहीं, तू अरिहन्तादि चार शरण को चित्त में स्मरण कर, ऐसा कह महान्पश्चात्ताप करता स्वहाथ से निष्प्राण हुआ, जब भारंड पक्षी द्वारा चारुदत्त रत्नद्वीप पहुंचा वहां एक कंचन गिरी को विराजित देख उनों को भाव शुद्धि से वंदन कर बैठा, वहां विमानारूढ दो विद्याधर आकर केवली भगवान को वंदन कर बैठे, इतने में दशों दिश में उद्योतकर्ता मुकुट कुंडल हारादि अलंकृत दिव्यरूप गगनांगण में विमानारूढ एक देवता केवल ज्ञानी के समीप आकर

भवावतारी मोक्ष जांयगे सम्यक्ज्ञान १ सम्यक् दर्शन २ ये दोय जिसके है, पूर्ववत् कर्मोदय से अनुव्रत उदय नहीं आता, लेकिन अन्य जैन कों तत्वज्ञान की श्रद्धा करने से वह उसका गुरु पूजा सत्कार के योग्य है कारण सम्यक्ज्ञान १ सम्यक् दर्शनी कों किसी समय भावस्याग चारित्र आना निश्चय संभव है, इसलिए भगवती सूत्र में ज्ञानवंत को देश से विराधक कहा है, केवल द्रव्य के त्यागी क्रियावंत को देशसें आराधक कहा है, ये चउभंगी भगवानवीर ने गौतम सें कथन करी है ज्ञानी जो एक श्वासो श्वास में कर्मों की वर्गनाक्षय करे, वह नारकी का जीव महान् कष्ट सहता हुआ कोडवर्ष में क्षय नहीं कर सके ऐसा लेख भी भगवती सूत्र में है. यदि ज्ञानी भी है ध्यानी भी है लेकिन किसी को उपदेशादि द्वारा लाभ नहीं पहुंचावे ऐसा साधु खुदगरजी होने से संसारी जीवों का लाभप्रद उद्धारक नहीं, द्रव्य परिग्रह के त्यागी पशु मानधानादि पशु भी है लेकिन भाव परिग्रह नहीं त्यागा है, इसलिए त्याग नहीं कहाता जब तक क्रोध, अंहकार, कपट आदि का क्षय नहीं, शरीर की ममत्वता है तबतक भगवती सूत्र में कहे हुए व कुश कुशील निर्ग्रंथीपना कषाय कुशील निर्ग्रंथीपना पंचमकाल के साधुओं में भगवान नें कहा है ऐसे साधुओं द्वारा पंचमकाल में अपना संघ श्रमणत्व कहा है छद्मस्थ साधु वो कहलाता है जिसका लेख थाणांग सूत्र के सातमें ठाणे में ७ प्रकार कहा है [सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणिज्जा] सात स्थानक सें छद्मस्थ साधु जानना [पाणा अइवाइत्ता भवंति] द्रव्य प्राणाति पातका कर्त्ता होय [मुसंवइत्ता भवंति] द्रव्य मृषावाद का बोलनेवाला हो [अदिन्न मादित्ता भवंति] अदत्त वस्तु का ग्रहण करता होय [सद्द-फरिस रस रूव गंधे आसादित्ता भवंति] शब्द स्पर्श रस रूप गंध पांच इंद्रिय के सुख का सेवने वाला होय [पूयासक्कारमणुवूहेत्ता भवंति] पूजा सत्कार की इच्छावाला होय [इमंसावज्जंतिपन्नवेत्ता पडि सेवित्ता भवंति] ये वस्तु सावद्य पाप युक्त है ऐसा जाणे कहे तथापि सेवनेवाला होय (णोजहावादीतहाकारियाविभवंति) जैसा मुख से प्ररूपना करे वैसी क्रिया आप करे नहीं अर्थात् पाले नहीं

इन सात बातों से वर्जित वा केवली भगवान् ही होते हैं द्रव्य प्राणातिपात द्रव्य मृषावाद आलोचन प्रायश्चित में निवृत्त हो जाता है, भाव जीवहिंसा से जीव के बंध पडता है वह उत्कृष्ट शुद्ध भाव द्वारा कदापि निवृत्त हो सक्ता है, लेकिन् भाव मृषावचन बोलने में पाप की निवृत्ति नहीं हो सकती ।

भाव मृषा उस को कहते हैं जो जिन आज्ञा विरुद्ध सूत्र का तथा अर्थ का प्रत्यनीक मनोक्त प्ररूपना करें वह साधुपने की उत्कृष्ट द्रव्य क्रिया पाल करके अंत में चंडाल जाति का किल्विषिया संज्ञक देव होय उहां से च्यव अनंत संसार परिभ्रमण रूप दंड भोगेगा ऐसा भगवती सूत्र के ८ में शतक में लेख है इस प्रकार अपने आचार्य धर्म गुरु का तथा उपाध्याय आगम पाठक का प्रत्यनीक को पूर्वोक्त ही दंड इस ही शतकमें कथन करा है जो अल्पज्ञ तीर्थंकर को छद्मस्थपन में छट्ठा गुण स्थानवर्ती छलेश्यावंत कहते हैं वह बहुल संसार उपार्जन करने रूप वाक्य है तीर्थंकरके न तो जिन कल्प है न स्थिवर कल्प दीक्षा लिये पीछे दिनोंदिन वर्धमान चारित्र के भाव होते हैं इसलिये भगवान् कल्पातीत है गुण स्थान में वर्तना छद्मस्थपन में अन्य सामान्य साधुओंके लिये केवलीभगवान महावीरने कल्पवंतों के लिये सूत्रों में कहा है तीर्थंकर सर्व्वदा अप्रमाद में वर्तते हैं उस अप्रमाद की स्थिति उन्हीं के चरम आयु पर्यंत रहती है इसलिये ही भगवान वीर केवली हुये पीछे अपने छद्मस्थपने का स्वरूप सभामें कथन करते फरमाया कि खडे २ दो घडी मात्र प्रमाद है गौतम मुझे शूल पाणी यक्ष के मंदिर में सेवना हुई थाकी १२॥ साढी बारे वर्ष में मैंने प्रमाद नहीं सेवन करा यदि प्रमाद होता तो क्या केवल ज्ञानी छिपाते जो लब्ध्यावधि १४ पूर्वधर १० पूर्वधर बहु श्रुती महावीर स्वामी के पीछे शासन में समुद्र जैसे बुद्धिशाली अनेक आचार्य उपाध्याय साधुवर्ग होगये लेकिन किसी ने भी भगवान महावीर में दोषारोपण नहीं करा भगवान चूक गये ऐसा अनार्य वज्रभाषा अनंत संसार परिभ्रमणकारी किसी ने नहीं निकाली ।

तीर्थंकर वीर को अन्य सामान्य साधु तुल्य छद्मस्थ नहीं समझना उन्हों के आठों ही कर्म निरंतर समय २ क्षय होते जाते थे शुभ लेश्याकी

दिनों दिन वृद्धि होती थी हीन मान कदापि नहीं ऐसा उनका कहा अर्थ गणधर रचित सूत्रों में लिखा है देखो आचारांग तथा कल्प सूत्र जब प्रभु देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्ष में १० में देवलोक का आयु पूर्णकर आनेके तदनन्तर सौधर्मेन्द्र अवधि ज्ञान से गर्भगत प्रभु को निर्मल तीन ज्ञान कर युक्त देखा तत्काल सिंहासन से उठकर सात आठ पद सन्मुख जाकर मस्तक धरती पर नमाय दोनों हाथ जोड़ शक्रस्तव नमोत्थुणं से अरिहंत भगवंत कह स्तुति करी श्रमण भगवान महावीर मुक्ति पहुंचने के कामनावाले, हे भगवंत तुमकों मैं वंदन करता हूं देखो शुक्र सेवक को यह पीछे हरिणेगमेषी देव को बुलाकर कहा नाम गोत्र कर्म अक्षीण होने से नीच कुल में भगवान ब्राह्मणी के कुल में आये इस सूत्र के लेख से सिद्ध होता है नाम गोत्र कर्म बिना अन्य कर्म अत्यन्त क्षीण होगया था गर्भ में ज्ञान हुए तदर्थ नहीं तो इंद्र ऐसा क्यों कहता और प्रगट भी है ज्ञाना वरणी कर्म का क्षयोपशम हुए बिना गर्भगत में निर्मल ३ ज्ञान दीक्षा लेते ही मन पर्यवज्ञान चौथा उत्पन्न हुआ मोहनी कर्म की अनंतानुबंधी चौकड़ी क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४ सम्यक्त मोहनी ५ मिश्र मोहनी ६ मिथ्यात्व मोहनी ७ ये सातों क्षय होकर वीर के क्षायक सम्यक्त गर्भ में ही प्राप्त था, वेदनी कर्म अवशेष तो क्षीण होगया था कुछ निकाचित रह गया था वह भोगावली आदि सातावेदनी उदय सह न रूप असातावेदनी वेद कर क्षीण करा ज्ञानवंत क्षायक सम्यक्ती पूर्व सदाविरत चित्त को भोग क्षय करते हैं, नया कर्म भोग भोगते भी बंध नहीं करते यथा समयसार में कहा है ज्ञानी को भोग सो तो निर्जरा का हेतु है, अज्ञानी का भोग सो तो बंधफल हेतु है, ये अचरज की बात छिपे नहीं यांते पूछें कोई शिष्य गुरु समझावे १ इसलिए तीर्थंकर को अन्य छद्मस्थ साधुवत् मानना, अज्ञान का हेतु है, यदि हठ से कोई मानाने साधु तुल्य माने तो उसको विचारना चाहिए गर्भगत ३ ज्ञान, इंद्रादिक गर्भगत में ही अरिहंत भगवंत तुल्य वंदन नमन स्तुति का करना जन्म समय ६४ इंद्रादि जन्म महोत्सव का करना [काव्य] श्वासोऽब्ज गंधो रुधिरा मिषंतु गोक्षीरधारा धवलंह्यविस्रं, आहार विहार विधिस्त्वदृश्य

चत्वारश्चैते निरोम्या सद्दोल्या १ अर्थ, श्वास में कमल पुष्प जैसी सुगंधि रुधिर और मांस गऊ के दूध जैसा श्वेत मैलरहित शरीर, आहार नीहार कोई देख नहीं सके चार ये अतिशय जन्म से ही तीर्थंकर के होते हैं १ गर्भ में आने पीछे १२ महीने पर्यंत निरंतर तीर्थंकर के घर में साढे तीन कोटि रत्नों की वर्षा इंद्र की आज्ञा से धनद करता रहे, दीक्षा लिए पीछे अन्य साधु मिले नहीं, जहां पारणा करे उन दातार के घर देव १२॥ कोटि सोनइयों की वर्षा करना नख केशादि बधे नहीं, प्रस्वेद आवे नहीं इत्यादि अनेक अतिशय तीर्थंकरों के गृहस्थ पन में तथा छद्मस्थ भाव दीक्षितपन में होता है, ये अतिशय भी अन्य सामान्य साधु के छद्मस्थपन तथा गृहस्थपन में होना मानना चाहिये सो तो सर्वथा नहीं हो सकता तो फेर सामान्य छद्मस्थ साधु तुल्य प्रमादी गुणस्थानक छलेश्या आठ कर्म बताकर वीर गोसाले को शीतल लेश्या से बचाया, जिस समय चूक गये इत्यादि १० दूषण या अन्य ने छ दूषण वीर में निकाले यदि कहे लब्धि फिराने से केवल ज्ञानीपने महावीर स्वामी आप ही दंड कहा, यह भी कथन सरर लब्धि के फिराने में नहीं कहा है जिस लब्धि फिराने से प्राणपंचेंद्रियादि का घात हो वैसी लब्धि चैत्य संघादिक के अर्थ मुनि फेरे तदनंतर आलोचना कर के साधु निष्पाप होय आराधक होय तद्भव मुक्ति भी जावे ऐसा लेख जैन सत्आगमों में केई है अवधिज्ञान भी लब्धि केवल ज्ञान भी लब्धि एकपद पढते क्रोडों पद का ज्ञान हो वह पदानुसारणी लब्धि गणधरपद लब्धि जिसमे द्वादशांग सूत्र रचना त्रिपदी तीर्थंकर के मुख से श्रवण कर पीछे रचे उलटे सुलटे २ घडी मात्र में स्मरण द्वादशांग कर लेवे चवदे पूर्वके ज्ञातापणे की लब्धि तीर्थंकर पदवी की लब्धि मिश्री घृत चीर मिलो जैसी वाणी की लब्धि पढा नहीं भूले वह कुष्टक बुद्धि लब्धि एक अर्थ से अनेक अर्थ उत्पन्न होय वह बीज बुद्धि लब्धि आहारक लब्धि जिसमे चौदे पूर्व धर केवल ज्ञानी को पूछ कर संदेह निवृत्ति करे इन लब्धियों का कथन प्रज्ञापना में आहारक का कल्पसूत्र में गणधर लब्धि का तेजू, शीत, पुलाक एवंतीन का कथन भगवती में अन्य पूर्वोक्त सर्व लब्धियों का

प्रभावना करते भवसागर को तिरते हैं वा तीर्थंकर गोत्र का पुण्य उपार्जन जीव करता है ज्ञाता सूत्र में २० स्थानक पद में उगणीसमा पद तीर्थ प्रभावकका लिखा है वर्तमान यतीयों को मारवाड़ी गुसांइ १ गुजराती गोरजी २, कच्छ पंजाब वाले पूज्य ३, पूर्व में गुरुजी, दिल्ली लखन ऊ आदि में बाबा साहब कह गौरव से बतलाते हैं मुसलमान बादशाह सेवड़ा कहते थे जैनागम में राम चरित्र में सीताजी नारदजी के सन्मुख लवकुश अपने दो पुत्रों को जैनवर्णी के पास नहीं विद्या अध्ययन कराने मनोरथ प्रकाशित कर चिंता करने लगी इतने में नारदजी आकाशतल में गमन करते विद्या बल से सिद्धार्थ नाम सिद्धपुत्र को देखा नारदजी सहर्ष कहने लगे हे जानकी तेरे मनोरथ अभी सिद्ध होता है ये देख अनुव्रती विद्यासिद्ध महा विद्वान्, सर्व शास्त्र विशारद जगत्पूज्य सिद्धार्थ सिद्ध पुत्र आकाश मार्ग से गमन करते मुझे यहां देख सीधे इधर ही पधार रहे हैं इतने में तो आ पहुंचे नारद उठकर विधिपूर्वक वंदन नमन स्तुति कर सिंहासन पर बैठाये तब सीताजी ने पूर्वोक्त रीति से वंदन स्वागत कर नारदजी सीताजी उन्हों के सन्मुख दोनों हाथ जोड़ कर बैठे नारदजी साता पूछ कर अवसर पाकर लव कुश को पढ़ाने विज्ञप्ति करी तब उहां रहकर दोनों को सर्व विद्याध्ययन कराया इत्यादि लेख हैं बुद्धिमान समझ गये होंगे ये सिद्ध पुत्र कौन थे अर्थात् यती वेषधर गुरु थे उस रामचन्द्रजी के समय में भी अनुव्रत धर विद्या सम्पन्न सिद्ध पुत्रों यतियों का होना सिद्ध है श्राद्ध विधि आदि श्रावकाचार ग्रंथों में सिद्ध पुत्रों का स्वरूप लिखा है नंदी सूत्र की टीका हरिभद्र सूरिः तथा मलयगिरि कृत में उत्पात की बुद्धि पर तत्काल प्रत्युत्तर देने वाले क्षुल्लक लिखा है ये क्षुल्लक अर्थात् छोटे साधु वह क्षुल्लक नाम भी यति गुरु का है नरं ब्रा[illegible] क्षुल्लक [illegible] इस प्रकार [illegible] व्यवहार सूत्र देखने प्रथम ही लिखा है साधुको आलोयण प्रायश्चित्त जिनके लेना, वहां प्रथम संभोगी साधु से लेना कहा संभोगी वे कहाते हैं जिनों का एक व्यवहार तथा आहार पानी का संभाग हो वह संभोगी वह नहीं मिले तो असंभोगी साधु से लेना कहा वह नहीं मिले तो तथा रूप से आलोयण प्रायश्चित लेना कहा, तथा रूप अर्थात् साधु के सदृश रूप वेष पट्ट ६ हाथ २४

अंगुल के हाथ से पांगरणी ६ हाथ की, चद्दर १२ हाथ, की मुजब निजमाप से एक गिट चार अंगुल की हाथ में रक्खे, खासते; छींकते, जंभाई लेते,जोर से श्वास लेते, डकार लेते, वस्त्रयुक्त हाथ मुख से २ अंगुल दूर रखे, संपातिम छोटे जंतुओं के यत्ना के लिये रजोहरण २४ अंगुल प्रमाण जिसपर सूती वा ऊर्नी वस्त्र लपेटा हुआ दंडयादि जिसपर जिन मंदिर का शिखर हो, काष्ठादिपात्र रखे, सूत्र सिद्धांतों का वेत्ता तथा उपदेशक आलोयण प्रायश्चित विधि का ज्ञाता ऐसे को तथा रूप कहा. ये तथा रूप कहने से यती गुरु पास आलोयण लेना सूत्र में कहा. इस लेख से भी यही सिद्ध हुआ यती तथा रूप सर्व तीर्थंकरों के शासन में होते चले आये, क्षमा कल्याणजी उपाध्याय ने ज्ञान पंचमी के स्तवन में कहा है जिनेश्वर देव कथित आगमों में ३ आश्रमों से संसार का तिरणा कहा है, यथा-जिहां साधु श्रावक मारग लहिये, संवेग पखी पखि सरदहिये, ये त्रणविन भवमारग कहिये, श्रुत अतहिभलो संघ सकल आधारनमूंजि भुवनतिलो १ जिस आगमों में साधु पंच महा व्रतधर का मार्ग कहा, श्रावक गृहस्थ देश व्रती का मार्ग कहा, संवेग धर्म का पक्ष है जिनों के यह संवेग पखी सम्यक्त की ५ भावना जिसमें शम, संवेग, निर्वेद ३ आस्ता ४ (अनुकंपा) इनको सत्यपने धारे यह संवेग पखी इन तीनों विना अन्य सब भव समुद्र का मार्ग कहा, संवेग पखी नाम इहां यती गुरु का कहा है ज्ञाता के दूसरे श्रुत स्कन्ध में पार्श्वनाथ स्वामी की केई शिष्यनीया संजम यथार्थ नहीं पाल कर मरकर देवलोक गई भगवान महावीर के सम व शरण में आकर देव ऋद्धि से नाटकादि भक्ती स्तवना करके पीछी देवलोक गई, तदनंतर गौतम स्वामी के पूछने से भगवान ने कहा उनोंका पूर्व वृत्तांत सभी को एकभव से मुक्तिका गमन करना फरमाया, तैसें उव वाई सूत्र में तथा रूपवेषधर यतियों का मरकर देवता होना फरमाया है, जिनागम कथनस्या द्वाद है, यथा सर्वव्रती गुरु भी है और पूर्वोक्त तथा रूप सम्यक्त धर तथा अनुव्रती भी गुरु है ओसन्ना पासत्था उस कूं जैनागममें कहा है जो प्रथम अपने वैराग्यभाव से संवेग होने से पंच महाव्रत उच्चर तदनंतर कालातिक्रम से भावभ्रष्ट होने से वह रूप बना रखे मन में भी

साधुपने का अभिमान धरावे प्रगट या अप्रगट मूल गुणों की विराधना करे उनको ओसन्नापासत्था जानना, लेकिन् जो प्रथम से ही तथा रूप पंचदर्शन संवेग पक्षी गद्दर्शन सद्ज्ञान देश चारित्र धर हो ऐसा पूर्वोक्त लिखे नाम गुण वाला जैन पंडित दूसरी पंक्ति का गुरु अनागम सम्मत है ये ओसन्नापासत्था नहीं कहाता आत्मारामजी तपगच्छी साधु भी जैनतत्त्वादर्श हिन्दी भाषा ग्रंथ में लिखा है साधु का वेषधारी यथार्थ महाव्रत नहीं पालता है तथापि अंतरंग में मोक्ष प्राप्त करने की इच्छावाला है वह साधु है दीक्षा समय गुरु दश भेद को सर्वदा रखे, रात्रि भोजन कंद मूल का त्यागी जिन दर्शन नित्य करे नवकारसी प्रमुख पच्चक्खाण करे व्रत नियम यथा शक्ति आचरे द्रव्यादिक का प्रमाण करे, राज विरुद्ध, कुल विरुद्ध, लोक विरुद्ध का त्यागी, विद्याभ्यासी ये सर्व कृत्य यती गुरु के करणे योग्य हैं नित्य नवकार मंत्र का जाप, शास्त्र स्मरण का पाठ, उभय काल प्रतिक्रमण, जाति उत्तम कुलवंत विद्यावंत को आचार्य सूरि मंत्र दे के आचार्य पद देते हैं वह नित्य सूरि मंत्र जपता है आचार्य है सो योग्यको उपाध्याय पद देते हैं वह नित्य वर्द्धमान विद्या जपता है वाचक-पद गणि-पद ▓▓ पद देते हैं वज्र स्वामी १० पूर्वधर रचित प्रतिष्ठा कल्प से ये पूर्वोक्त पद धर चैत्य प्रतिष्ठा कराते हैं बिंब प्रतिष्ठा अंजनशाला का आचार्य कराता है खरतरगच्छ में विक्रम संवत् ≍७५ शताब्दी से जिनपद आचार्य के नाम के प्रथम लगाते हैं नाम एकार्थ वाचक धरते हैं अंत में सूरिपद लगाते हैं तपगच्छ में विक्रम शताब्दी १५८७ पीछे विजय ऐसी उपाधि आचार्य के नाम के प्रथम लगाना प्रारंभ हुआ है खरतर गच्छ में चौथे पट्ट पर आचार्य का नाम जिनचंद्र सूरि होता है पार्श्वनाथ स्वामी का आचार्य ८७ पट्ट पीछे ग्रंथ रचयिता के सन्मुख विच्छेद हो गया पूर्वोक्त आचार्यों को बादशाह अकबर ने चमर, छत्र, (आफताप). मोरछल, पालखी आदि गुरु भाव से भेट करा विक्रम शताब्दी सोलहवीं के आदि में तद पीछे पद शास्त्र वेत्ता तथा मंत्र शास्त्री दृष्टि पात हस्त पातादि आत्म जल से विष भूत बाधा रोगादि निवृत्ती यंत्र तंत्र गायन वीणादिनाद, कविता, वैद्यक, ज्योतिषादि निमित्त लिखत

गेह इकेलो दिखात है। ऐसे अन्य भाव मन आनिये तो राज कवि ज्ञान के उद्योत होत अज्ञान विलात है ॥ २२ ॥

अथ षष्टम अशुचि भावना कथन ।

दोहा—अशुचि मिले यह उपजे, अशुचिहि बंध्यो पिंड।
जैसी माटी होई है, वैसो ही व्है भंड ॥ २३ ॥

पुनः सवैया ।

मांस हाड चाम नस मेद गुद रक्त वस मज्जा, केस शुक्र रेत यहै पिंड रच्यो है। शुचि कौन अंग परसंग याको करे कोन चाम कोला मेला देखा मैल ही सूं मच्यो है ॥ महा रूठो झूंठो दृठ छिन में अपूठ होत लंठ निरठ लोभी लालच में लच्यो है। ऐसो राज देह याहि कीजिये कहा सनेह याही नेह कर नर कहो कौन बच्यो है ॥ २४ ॥

अंबर अनूप मृग नाभि घन सार घन कुंकम चंदन घोर खोल आर्द्धा कीजिये। चोवा मेदा जवादिमृ चरचित चारु चित्र अरगजा संग चंग नाम सुरु दीजिये॥ चंपेली चंपेल तेल मोगरेल केवरेल तिलोछी अंगोछि आछे नोंछि गात्र भीजिये। छिनक सुगंध गंध फिर होत है दुर्गंध पिंड या अपावन यूं कैसे पू पतीजिये ॥ २५ ॥

मनन आहार सार कीने चार परकार षट् रस सुखकार पीठकर पोखी है। आछे २ अंबर अनूप आच्छादन कीजे तोपञो न गालिये नरनीक में [illegible] है॥ [illegible] नवद्वार नाली के इग्यारह सु वहति अशुचि जैसे मंदिर की मोरी है। [illegible] ही सु [illegible] काम कोथी कुंदी कि पूं भांड की [illegible] काम पर [illegible] है ॥ २६ ॥

अथ सप्तम आस्रव भावना कथन ।

दोहा—कारण जो है पाप को, जाकर आवत आप ।
तासो आस्रव कहतु है दे आतम कूं ताप ॥ २७ ॥

पुनः सवैया

[illegible] को संहार तथा [illegible] को प्रकार पर द्रव्य को [illegible]
[illegible] कर्मनी के काज सुख दुख हेतु जीके होत छिन

मांझि धोखे बिनु धरिये॥ सचित्त अचित्त पुन बाहिर अंतरंग निबंध हेतु परिग्रह दुहन तें डरिये। पाप नीर पूर के प्रवाह मग आश्रव इनहीं प्राणीन के पिंड सर भरिये॥ २८॥

घड़े २ शास्त्र दृगवश मेरावण के फरस के वश धारकमत है फंद में। डमकि करत दौर श्रवणि अनि चहुं ओर हिरण श्रवण वश पडत पुलिंद में॥ लीन जे अगाध जल ऐसे मीन महा मल रसना के रस भरे गिरे दुग धंद में। भ्रमत पतंग दृग रंग दीप ज्योति संग दध मरे नासा स्वाद अलि अरविंद में॥ २९॥

विषम विपाक कटु विरस विरूप अति विष तरु कैसे फल विषय विलास है। क्रोध मान माया लोभ करत चढ़न शोभ पैशुन कषाय चार दोष के निवास है॥ राज देश भोजन त्रिया की वार्ता कथाए अतिगति किन योग मिथ्या को रंग है। आश्रव की भावना तें सादु [illegible] ताके निवारन ही ज्ञान का प्रकाश है॥ ३०॥

अथ अष्टम संवर भावना कथन।

दोहा—ज्युं कूप आगम रादु निग, करे पाल के बन्ध।
त्युंही आश्रव रोकिये, संवर सार सुं संध॥ ३१॥

पुनः सवैया।

चरण धरण धरे जीव को यतन करे बोलन वचन ऐसे गाग रोष ना चढ़े। भोजन विशुद्धि शुद्ध होय तो न रत ताके पुस्तक धारत वस्तु मन दया में मढ़े कफ मल मूत्र बिंद श्लेषम को डारिवो जु ऐसी भांति डारे जैसे जंतु नाश ना गढ़े। मनवचकाय तीनुं गुप्त करत जिन ढग ही नि श्रेणी साधु मोक्ष धाम जे चढ़े॥ ३२॥

प्राणिवध मृषावच अदत्त मैथुन रुचि परिग्रह लोभ मूल पातिक को पोष है। इनको निरोध सोउ संवर यथानियत ढढ गुण हेतु जातु संवर संतोष है। संवर सुं प्रीति जाके सोउ उपदेश योग श्रवन हुं उपदेश दया हंदमोर है। मोक्ष द्रुम गोनवित्त मंत्रल सो संवर के सेवन हो प्राणीगण शीघ्र ही मोक्ष है॥ ३३॥

पुनः सवैया।

दान शील तप भाव चारों ही विराजें पाउ विमल विज्ञान दग दया मूल दाखी है। शोभा को समूह जाको विपद विवेक पूंछ निश्चय व्यवहार सार उभय शृंग साखी है॥ संपदा को हेतु दुहूं लोकन में सुख देत अमृत श्रवत धार संत वच्छ चाखी है। ऐसी काम धेनु गऊ चरत विपत तृण राज तेरे चोर निते नीकी भांति राखी है॥ ४०॥

धरम अरथ काम तीनूं वर्ग हित काम उत्तम उदार सुविचार मन ठानिये। चारूं गति मांझि सार मानव को अवतार साधन त्रिवर्ग को चतुर चित्त आनिये॥ तीनों में प्रधान बुद्ध कहत धरम शुद्ध अर्थ काम को जु धर्म कारण पिछानिए। राजनर भव पाय धर्म्म जो करत नांहि पशु ज्यूं विफलता को छिप तब जानिये॥ ४१॥

मांनी जिन वानी जिन नीकी जाण पहचानी ज्ञानी धर्म्म ध्यानी जिन्हें तृमना कूं तोरी है। जिनों की अमूढता न गूढा है न बांढा जैसें समिति आरूढ प्रौढा जैसी प्रौढा गोरी है। लेत न अदत्ता अभेदान सुंदरत्ता मत्ता कबहूं न होत तत्ता माया कू मरोरी है। धर्म्म भाव धारी ऐसे धन २ नर नारी इला पुत्र भरत से धर्म्म रथ धोरी है॥ ४२॥

अथ इग्यार्म्मी लोक स्वरूप भावना कथन।

दोहा—ना यह काहू ने धर्यो, काहू धर्यो न याहि।
स्वयं सिद्ध यह लोक है, देखे ज्ञानी ताहि॥ ४३॥

सात राज ऊरध पाताल सात राज पुन चौदराज लोकगती आगती है जीव की। चौद राज लोक की सुथिति भांति ऐसी है उभय हाथ टेके कटि प्रति जैसे तिय की॥ यामें ऐसी ठौर पुन रही कहूं नांहीं जहां आतम को नहीं भईजरा मृत्यु मीय की। जाति जाति कुल थान फर में अनन्त बेर दिव्य दृष्टि देखें ज्यूं विलोक दृष्टि हिय की॥ ४४॥

देवर भतीजो भ्रात काका सुत नाती पुन एक बाल संग पट संबंध सहाते है। भ्रात तात सुत भरतार दादा सुसर सु षट ही पुरुष माय तात

के सुतांते हैं । बंधव वधू सौति सास वधू दादी जननी इते तो संबंध निज मात ही के भति हैं । वेश्या सुता सुत जायो कर्म्मवस सोऊ व्याहो मात सुत सुता राज अठारह नाते हैं ॥ ४५ ॥

ये अठारह नाते की कथा जंबू चरित्र में है माता, बेटी और बेटा ३ कर्म्म योग बेटा बेटी से कितने कालांति क्रम सें विवाह हो गया माता कर्म्म योग से विदेश में वेश्या हो गई वह पुत्र अज्ञातपने उस माता वेश्या से संगम करा उसके पुत्र हो गया, उससे १८ नाते दिखाये हैं इस लोक का ये स्वरूप है ।

अथ सवैया ।

स्वारथ हीं भाई बिन स्वारथ वहै शत्रु नाई माता बिन स्वारथ अशाताकी जो दाता है । आपस में राज काज भिडे गजराज जैसें भरत रु बाहु बल काहू को न आता है ॥ चुलनी जलायो लाख मंदिर में ब्रह्मदत्त विरतंत ऐसो जो सिद्धांत में दिखाता है । लोक को स्वरूप ऐसो ज्ञाता विष मांहि भाई दुनियां कूं छार यार कहायामें राता है ॥ ४६ ॥

अथ द्वादशमी बोध दुर्लभ भावना ।

दोहा—नाथ माणिक सुत मानिनी, भोग संयोग अनेक ।
ये दुर्लभ नहिं जीव को, दुर्लभ सम्यक एक ॥

पुनः सवैया ।

थल भयो जल भयो अनिल अगनि भयो तरु पशु पंखी भयो फलन भुजंग रे । देव भयो दानव भयो नारकी निगोद भयो जल थल नारी भयो भौपद दुरंगरे ॥ नर भव धर्म अवश्य जिन वच रुचि ज्ञान पावे कूं धीर मकोति सभंगरे । एक चार सुविचार दुरलभ राजसार शिव सुख साधन को उपन है संगरे ॥ ४८ ॥

अरे नर नभव पायको न बेर न पायो है तो प्रीति कर बोधि दुर्लंभ ही । देव गुरु धर्म है परख नीके सांहित देखिमत दर्शन ताचि रहे देव हैं ॥ निरंजन देव देव गुरु तुष लघु लेव दया धर्म भर्म सदा देख

निरारंभ सूं ॥ ज्ञान की जंजीर जरं जकर पकर कर नंदकंज कानराज नद किम थंम सूं॥ ४६ ॥

देव गुरु धर्म्म को संयोग अंग चंग अति पायो तो प्रमाद एक पल हि न कीजिये। चउद पुव्वधारी ताहू की जो होत हारी बहुत संसारी को निगोद मांझ दीजिये॥ कोडी काज हारिये न कनक कोडि कहुं ऐव के मतंग तुंग कहा खर लीजिये। मिथ्या मत विष पान कीजिये न गज कवि बोधि सुधारस श्रुति संपुट के पीजिये॥ ५० ॥

दोहा—द्वीप पुगज मुनिराशि चरन, जादिन जन्में पास।
तादिन की नोराजकवि, यह भावना विलास॥ ५१ ॥
यह नीके कर जानिये, पढ़िये भाषा शुद्ध।
सुख संतोष अति संपजे, सुधि न होय विरुध॥५२॥

पंडित राजसिंह मुनिकृत भावना १२ स्वरूपम्।

यह उच्च धर्म्म का स्वरूप है, दान वह गृहस्थ के ५ प्रकार का है सुपात्र दान १ उसमें रत्न पात्र साधु मे ५ महाव्रत सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन युक्त पाले मलय उपदेशदाता पंचांगी युक्त उनों को १४ प्रकार का दान वह सुपात्र दान तिमें सम्यक युक्त अनुव्रती वह दूसरा पात्र ९ तरह ज्ञानी सम्यक्ती अर्जुन स्वर्ण पात्र ३ सम्यक धर चांदी पात्र, अन्य सर्व अन्य धातुपात्रों मुजब पात्र जाणना इति प्रथम दानधर्म १ दूसरा अभयदान सर्व जीवों को मरण भयादिक में रक्षा करना, इति द्वितीय दान २ तीसरा अनुकंपा दान ३ दया चित्त में लाकर दीन हीन अंग दुःखी दुर्बल को अन्न वस्त्र औषधी आदि देना वह अनुकंपा दया दान कहाता है. दया शब्द निरवद्य है इसलिये प्रश्न व्याकरण सूत्र में संवर द्वार मे ६० नामों से अनुकंपा भगवान ने कथन करी है, यदि सावद्य भी अनुकंपा होती तो आश्रव द्वार में भी कथन करते सूत्र सिद्धांत प्रकरणादि में किसी भी स्थान अनुकंपा दान का निषेध नहीं करा है, तीर्थंकर सरे दीक्षा लेते १ वर्ष पर्यंत अनुकंपा में रत्न स्वर्ण रौप्य वस्त्र मुख से जो याचे वह वस्तु देते हैं, वीर चरित्र में लिखा है चारित्रधारी हुए पीछे ब्राह्मण दुःखी की प्रार्थना देख इंद्र ने

दीक्षा समय कंधे पर जो देव दुष्य वस्त्र डाला था वह आधा फाड़कर उस ब्राह्मण को दिया, आधा वायु से उड़कर कंटों में गिरा वह उस ब्राह्मण ने पुनः लेलिया, कोडि दीनार में बेचा सूनारे का और ब्राह्मण का दरिद्र गया। पुनः गोसाले को गर लब्धि तेजलेश्या से अग्नि वेश्यायन ऋषि जलाता था तब भगवान अनुकंपा से शीतलब्धि से उसको जीवित दान दिया, नव प्रकार के दान से पुण्य तत्व बंध सूत्रों में कहा है अन्न १, जल २, गृह ३, शय्या ४, वस्त्र ५, मन से दान की भावना ६ वचन से दान दिलाना ७ काया से दान देना ८, नमस्कार करना ९, ये नव प्रकार से पुण्य जीव बांधता है । ४२ प्रकार से पुण्य का सुख भोगता है यदि कहे जिसको नमस्कार करे पुण्य हो उसको ही पूर्वोक्त ८ आठ दान देना; अन्य को नहीं, गृहस्थ तो नमस्कार माता, पिता, कुलवृद्ध, श्वशुर पक्ष, विद्यागुरु, कला गुरु, कुल गुरु, राजा, राजमान्य इत्यादि अनेकों को नमस्कार करता है, कहोगे यह तो संसार का उचित आचरणार्थ है, धर्म समझ के जिसको नमस्कार करे उसको ही पूर्वोक्त ८ आठ दान देवे इस कारण से तो पुण्य है सो धर्म है ऐसा तुमने मान लिया तुम्हारे मत में तो पुण्य है सो बंध है इसलिये त्यागने योग्य है तुमतो साधु को ही नमस्कार और उनको पूर्वोक्त दान देने में धर्म मानते हो अन्य सब जीवों को दान देने में पाप कहते हो, साधु को दान देने में कर्मों का चय होना (निर्जरा) कहते हो पुण्यरूप स्वाक स्वाखतः बंधता है ऐसा मानते हो ।

हे पक्षपाती ! तुम जैसा मानते हो ऐसा तो किसी भी सूत्र में लेख नहीं है यदि ऐसा होता तो पुण्य तत्व जुदा, और निर्जरा तत्त्व जुदा, दो प्रकार का तत्व भिन्न क्यों कहते निर्जरा तत्व के आवांतर भेद ही पुण्य को कहते तत्व तत्व शब्द का अर्थ तो ऐसा है (तनोतीति तत्वं) जो आप रूप से विस्तारवंत हो एक स्वरूप में अन्य रूप न होवे उसको तत्व संज्ञा है जैन शास्त्र में तो ऐसा लेख है सुपात्रों के दान से पुण्यानुबंधी पुण्य जो आगे निर्जरा का कारण भी होता है अन्य के दान से पुण्य मात्र होता है उपासक दशा सूत्र में आनंद गाथापति प्रमुख श्रमणोपा

मिथ्यात्वी कुलिंगी को गुरु तरण तारण मानता था जब वीर भगवान के उपदेश से सम्यक्त्व युक्त द्वादश व्रत लिया तब उसने अन्य मिथ्यात्वी को गुरु बुद्धि से धर्म के अर्थ दान देने का त्याग करा था लेकिन अनुकंपा दान का त्याग नहीं करा था ऐसा ही भगवती के पाठ का अर्थ समझना उहां श्रमण तथा माहण को शुद्ध दान से एकांत निर्जरा कही श्रमण माहण को शुद्ध वा अशुद्ध दान से अल्प पाप बहुत निर्जरा होय तथा असंजती अव्रती को शुद्ध दान से वा अशुद्ध दान से एकांत पाप नहीं निर्जरा ऐसा कहा इहां निर्जरा शब्द से निर्जरा का कारण ही कहा है यदि कहोगे निर्जरा का कारण नहीं साधु के दान से निर्जरा ही होती है तो कहो पुण्य तो ६ प्रकार के दान से बंधना कहा और निर्जरा तो उपवास १ उनोदरी २, वृत्ति संक्षेप ३, रस का त्याग ४, कायक्लेश ५, संलीनता ६, ये ६ बाह्य तप में जैसे प्रायश्चित १, विनय २, वैयावृत्य ३, स्वाध्याय ४, ध्यान ५ और उत्सर्ग (त्याग) ६ ये छव अभ्यंतर तब इन १२ कारणों से निर्जरा होती है इन १२ में साधु को दान देना नहीं है कैसे निर्जरा कहते हो वैयावच टहल बंदगी का नाम है गृहस्थ से साधु वैयावच करावे नहीं ऐसा भी तुम मानते हो तो फेर १२ प्रकार के तप में साधु को दान कहा नहीं तो फेर तुम साधु के दान को निर्जरा क्या समझ के कहते हो निर्जरा का कारण साधु का दान है ऐसा कहो और गुरु बुद्धि से मुक्ति के अर्थ असंजती अव्रती को दान देने में पाप कहा निर्जरा का कारण नहीं कहा टीकाकार ने इन तीनों पाठ के अर्थ निर्युक्तिकार भद्र बाहु स्वामी की रची गाथा कही है उसमें अनुकंपा दान तीर्थंकर ने कहीं भी मना नहीं करा ऐसा परमार्थ है उस गाथा का तुम भी तो नव प्रकार के परिग्रह पर ममता उतारने वाले को धर्म मानते हो अब तक धन वा धान्य वा वस्त्रादिक पर मूर्छा है ममता है उहां तक तो किसी को दान नहीं देता है जो वस्तु का दान करेगा अवश्य ही उस दानकर्त्ता ने मोह लोभ सर्वथा उस द्रव्य सम्बन्धी त्याग दिया तभी तो बिना स्वार्थ दान करा इसलिये अनुकंपा दानकर्त्ता को लोभ मोह के त्यागने रूप श्रेष्ठ फल की प्राप्ति अवश्य न्याय से सिद्ध है यदि तुम कहो कि साधु बिना अन्य को देने में एकांत पाप है, तो तुम

इस का जवाब देना, एक गृहस्थ ने एक महाव्रतधर तुमारी श्रद्धावाले साधू को प्रभात समै अन्न वस्त्रादि दान दिया, वह साधु तुमारा वह अन्नादि खाकर बुद्धि के विपर्यास से साधुपने को त्याग गृहस्थ के दिये, वस्त्रादिक को बेच वेश्या गमन करा उसके कहने से मद्यपान करा इत्यादि नाना कुकर्म सेवन करा, तुम कहो उस अन्न वस्त्रादि दातार को धर्म हुआ वा पाप इस पर तुमको मौन करना ही उत्तर है इसलिये जिनेश्वर देव ने सर्व धर्मस्याद्वाद अनेकांत निरूपण करा है, नहीं एकांत कहा एकांत पक्ष ग्रहण करना ही मिथ्यात्व है, इति अनुकंपा दानं, ३ उचित दान ४ भाई बेटी दोहित्र भाणजी प्रमुख को जो दान देना वह उचित दान कहाता है ४ कीर्तिदान ५ भोजक, भट्ट भाटचारणादिक को जो दान देना वह कीर्ति-दान कहाता है, ५ सुपात्रदान १ अभयदान २ इन दो दानों को भावशुद्ध से करता जीव शुभगति क्रम से पाता है अर शेष तीन दानों से भोगफल की प्राप्ति जीव को होती है, यथा श्रेणिक राजा का पुत्र नंदिषेण इति संक्षेप से दान धर्म स्वरूप कहा, शील ब्रह्मचर्य पालन वह गृहस्थ से सर्व प्रकार से पले नहीं स्वदारा विवाहिता से संतोष करै, पर्व तिथि में वह भी नहीं सेवन करै, पर स्त्री, विधवा, वेश्या, दासी, कन्याकुमारी, पशु, पंडग, हस्तकर्म इन सर्व प्रकार से मैथुन धर्मी गृहस्थ नहीं सेवन करै, अनंगवर्द्धक वचन, अश्लील वचन, हास्य, कौतुहल, कुचेष्टा, अनंगक्रीड़ा, इत्यादि से अब्रह्म के कारण रूप चेष्टा भी ते नहीं करै, ब्रह्मचर्य की महिमा सर्व महाऋषियों ने गाई है, उभय लोक सुखप्रदाता है, नव नारद इस ब्रह्मचर्य से कलहप्रियता और हिंसक थे, अठारह हजार शीलांग रथ के जो धारी समान मुनिराज होगए, होवेंगे १४ कर्म भूमी में जो विद्यमान हैं उनों को त्रिकाल वंदन है, विवाहिता स्त्री को वर्जे के जो अन्य पूर्वोक्त स्त्रियां आदि का नियम लेते हैं, वह भी [illegible] की तरह [illegible] प्राप्त करते [illegible] हैं, इति शीलधर्म निरूपण ॥ ३ ॥

अब धर्म पहले अनुकंपा दान के प्रकरण में [illegible]
[illegible]

होय नहीं पर्व तिथि में यथा शक्ति मन निग्रह न होवे. ऐसा तप आदर करे, इंद्रियों को दमन कर्त्ता का पूरा साधन उपवासादि तप ही है, वस्तु के विद्यमान रहते इच्छा को भोग उपभोग में निरोधन करना, मुख्यतप वोही तप है उपवासादि तप को सर्व प्राचीन बुद्धिमानों ने श्रेष्ठ कहा है, लेकिन आधुनिक समाजी तथा रामदास के चेले रामसनेही ये दोय मत में उपवासादि तप का करना बदन तरस दिया है वर्तमान में नई शोध करने वाले अमेरिका के बड़े २ बुद्धिमान डाक्टरों ने अनेक रोगों का मूल कारण अजीर्ण तथा हवा से तथा खान पान के संग उदर में जाने वाले रक्तादि में उत्पन्न होने वाले तथा प्रवेश करने वाले जंतुओं से मात्र प्राण घातक रोगों का प्रगट होना उन सबों के निवारणार्थ उपवासादि तप है ऐसा निश्चय प्रकाश में सामान्य द्वारा लाये हैं इसलिये जैन धर्म में तो सर्वज्ञ ने निश्चय मर्यादि तप की उभय लोक सुख प्रद कथन करी है इस ही कारण से आयुर्वेद में रोगों के निवारणार्थ पथ्य की मर्याद धन्वन्तरी ने प्रथम निरूपण करी थी तदनुसार ही अभी भी प्रवृत्ति है यह भी तपका ही भेदांतर है फल की वांछा वर्जित तप है सो कर्मों को तपावे उसका नाम तप है। इति तप धर्म स्वरूपम्॥

इन ३ में शुद्ध भाव की आवश्यकता है भाव बिना तीनों सामान्य फल देता है भाव जिस जिस का से सा भावना वैसी सिद्धि है शुभ कृत्य करते अशुभ भाव होय तो अशुभ बंध होता है अशुभ कृत्य करते शुभ अध्यवसाय प्रगट होजावे तो निसन्देह शुभ बंध मिलेगा।

जैन धर्म में सर्व धर्म का मूल कारण अहिंसा है १, सत्य वचन बोलना भी अहिंसा है २, अदत्त वस्तु का त्यागना भी अहिंसा है, ३ मैथुन का त्याग भी अहिंसा है ४, धन धान्यादि परिग्रह का त्यागना भी अहिंसा है ५ ये पांच मूल गुण हैं इन सबों का मन वचन काया से करना १, कराणा २, अनुमोदना ३ का त्यागने वाला सर्व व्रती साधु होता है १ और इन पांचों के स्थूल का त्यागने वाला देश धर्मी गृहस्थ होता है जीव का स्वरूप जाने बिना अहिंसा में जीव की प्रतीति नहीं हो सकी इस लिए जीव का किंचित् स्वरूप लिखता हूं।

जीव दो प्रकार के कर्मों से रहित जीव शुभ क्रिया भाव से होगये वह मुक्ति प्राप्त जीव परमात्मा कहाते हैं १. दूसरे संसारवासी ८ कर्म युक्त जीव एवं २ प्रकार के और संसारगामी जीव २ प्रकार के थावर १ त्रस २ थिर रहे सो स्थावर १ फिरे दुरे त्रस २ यह थावर जीव ५ प्रकार के पृथ्वी १, जल २ अग्नि ३, वायु ४, और वनस्पती ५ अब पृथ्वी काय का स्वरूप कहते हैं स्फटिक रत्न १, मणि रत्न २, मूंगे प्रवाला ३, हिंगुल ४, हरताल ५, मैनसिल ६, पारा ७, स्वर्ण ८, रूपा ९, तांबा १०, सीसा ११, जसद १२, कलई १३, लोह इत्यादि धातु खड़ी श्वेत वर्णादि मृत्तिका, रक्त मृतिका गेरु आदि क्रमरपत्थर पारस, पलेवादि पषाण की ८४ जाती प्रसिद्ध है अभ्रक, सिंहकड़ी, चारोली, तुरी इत्यादि मट्टी, पाषाण की अनेक जाति श्वेत, काला सुरमा, लवण इत्यादि पृथ्वी काया के एक स्पर्शन इंद्रिय वाले जीवों के अनेक भेद ७ लाख योनि से जानना ।

अथ जल काया की जाति स्वरूप कहते हैं ।

पृथ्वी का जल १, आकाश का गिरा जल २, ओस ३, बरफ ४, ओले का जल ५, हरे तृण उपर का जल ६, धूंवर का जल ७, घनोदधि का जल ८ जिसके आधार पर पृथ्वी है इत्यादि अनेक भेद पाणी के ७ लाख योनि से जानना ।

अथ अग्निकाया जीवों का स्वरूप लिखते हैं ।

अंगार की अग्नि १, ज्वाल की अग्नि २, मोमर की अग्नि ३, उल्कापात की अग्नि ४, वज्र की अग्नि ५, चमत्कार की अग्नि ६, बिजली की अग्नि ७, चकमक की अग्नि अरणी की लकड़ी और अरणी काठ परस्पर मर्दन से उत्पन्न अग्नि ८, सुक्ष्म अग्नि पदार्थों में व्यापक है इत्यादि अनेक अग्नि काया के जीव जानना ।

अथ वायु काया के जीवों का स्वरूप लिखते हैं ।

उद्भ्रामक वायु १, उत्कलिक वायु २, मंडल (गोल) वायु ३, मुख की शुद्ध वायु ४, गुंजती हुई वायु ५, घनवात वायु जो घनोदधि नाम जल से मिश्रित हुई

में ४, मूल में ५, पत्र में ६, बीज में ७, एक एक जीव होय वह प्रत्येक वनस्पति कहाती है. इस प्रकार से एक प्रत्येक वनस्पति १० लाख योनि में जाणनी। ये पांच स्थावर स्थूल के भेद कहे, इस प्रकार प्रत्येक वनस्पति को वर्ज के ये पांच स्थावर पृथ्वी आदिक सूक्ष्मपने अंगुल के असंख्यात में शरीरवाले एक श्वासो श्वास मनुष्य लेवें इतने काल प्रमाण में १७॥ भव अर्थात् मरे पुनः उहां ही उत्पन्न हो, ऐसे जीव निगोद राशि नाम सें १४ राज लोक में कज्जल की कुप्पी की परे ठसे हुये जीव सर्वत्र भरे हैं लोका काश में वह किसी के मारने से, जलाने से, काटने से, न मरते न जलते न कटते हैं, स्वयं जन्म मरण करते हैं, सर्व जीवों का आदि स्थान ये निगोद है, ये राशि अनंतानंत है, इन जीवों का अंत कदापि काल में आवेगा नहीं, मुक्त हुये भी जीव अनंत हैं और अनंत काल में अनंत जीव कर्म क्षय कर मुक्त होयंगे वह फेर कदापि काल जन्म लेंगे नहीं न मरेंगे, इसलिये मुक्ति कहाती है, जो मुक्त हुये जीवों को पुनः संसार में आकर जन्म मरण होना कहते हैं, वे यथार्थ मुक्ति स्वरूप के अज्ञानी हैं. काल का भी अंत नहीं, तैसे जीवों का भी अंत कदापि नहीं, इसलिए अनंत शब्द इनको सर्वज्ञने कथन करा है. न अंत. अनंत इस शब्दार्थ से बुद्धिमान समझ सकते हैं।

अथ बे इंद्रिय दो इंद्रिय वाले जीवों का भेद कहते हैं।

इनोंके स्पर्शन शरीर और रसना जिह्वा ये दो इंद्रिय होती हैं. जैसे शंख के जीव १. कौडी २. गिंडोले ३ जोंक ४. चंदनिये ५. अलसक ६. लघुगाम्री ७ मेहरि. ८ कृमि ९. गंडोले पेट के जन्तु १०. इनमें जल में उत्पन्न होय [illegible] कहते हैं इत्यादि २ लाख योनि इनके जाणना।

अथ ते इंद्रिय तीन इंद्रिय वाले जीवों का स्वरूप लिखते हैं।

इनो के स्पर्शन रसन घ्राण नाक इस प्रकार तीन इंद्री होती है, कानखजूरा १ मांकड [illegible] जूं ३. चमजूं ४. कीडिका लाल काला अनेक जाति ५ उदेही (दिमक) ६. मकोडों की अनेक जाति ७, [illegible] इनो के [illegible]

उत्पन्न स्वतः होते हैं, और नारकी के जीव बिना गर्भ नरकावालों के भिलों में उत्पन्न होते हैं. ३ प्रकार के पंचेंद्री तिर्यंच ४ लाख योनि वाले बिना माता पिता के संयोग बिना जो उत्पन्न होते हैं वे संमुर्च्छिम तिर्यंच कहाते हैं, और माता पिता के वीर्य रज से उत्पन्न होने वाले गर्भज तिर्यंच कहाते हैं, इसही प्रकार १४ लाख योनि वाले पंचेंद्री मनुष्य होते हैं. १५ कर्म भूमी, ५ भरत, ५ ऐरवत, ५ महाविदेह, और ५६ अंतर द्वीप के. ३० अकर्मा भूमी के. जो युगलपनें उत्पन्न होते हैं, उनों के असि १ मसी २ कृषि ३ ये तीन कर्म नहीं होता इसलिये अकर्मा भूमी के कहाते हैं. इस प्रकार माता पिता के रज वीर्य से उत्पन्न होने वाले गर्भज कहाते हैं, और मनुष्य के मल १ मूत्र २ वीर्यादि ३ चौदे स्थानक में उत्पन्न होने वाले अंगुल के असंख्यात में भाग के शरीर ऐसे सुक्ष्म चर्म चक्षु वाले के दृष्टि में नहीं आते ऐसे और मुहूर्त के आयु वाले वे समुर्च्छिम मनुष्य कहाते हैं, पंचेंद्री गर्भज तिर्यंचो के मल मूत्र व वीर्य रक्त मांसादि १४ स्थानक में उत्पन्न होने वाले समुर्च्छिम पंचेंद्रिय कहाते हैं इन सर्व समुर्च्छिम तिर्यंच मनुष्यों के मन नहीं होता है, मन गर्भज तिर्यंच तथा मनुष्यों के होता है नारकी देवता गर्भ से उत्पन्न नहीं होते हैं, तथापि मन होता है।

अथ देवजाति चार प्रकार के कहते हैं।

दस जाति के भुवन पती देव हैं, असुरकुमार १, नागकुमार २, सुवर्णकुमार ३, विद्युत्कुमार ४ अग्निकुमार ५ द्वीपकुमार ६, उदधिकुमार ७, दिशाकुमार ८, वायुकुमार ९, स्तनितकुमार १०, इनों का निवासस्थान इस रत्नप्रभा प्रथम पृथ्वी के १३ नरकावास १ लाख अस्सी हजार योजन के पिंड में १ हजार योजन अधः ऊपर वर्ज के है, उसके [illegible] प्रस्तर के बीच १० [illegible] १० [illegible]

[illegible]

[illegible]

निवासस्थान ऊपर के हजार योजन पृथ्वी रत्नप्रभा के सौ योजन ऊपर सौ योजन नीचे छोड़ के आठ से योजन में है, भूत १, पिशाच २, यक्ष ३, राक्षस ४, किंनर ५, किंपुरुष ६, महोरग ७, गंधर्व ८, इन देवतों के नाम जानना, अनपर्णी १, पनपर्णी २, इसिपाती ३, भूपाती ४, कंदी ५, महाकंदी ६, कोहंड ७, पयंग ८, ये वन में निवास करने से वाणव्यंतर कहाते हैं, इस प्रकार नाम के वाण व्यंतर देव है, इन दोनों के दक्षण श्रेणी १ उत्तर श्रेणी के ३२ इंद्र हैं।

जोतषी देव ५ प्रकार के हैं, चंद्र १सूर्य २ ग्रह ३ नक्षत्र ४ तारा ५ इनों के २ इंद्र हैं चंद्र १ सूर्य २

दो प्रकार के वे मानिकदेव है, सौ धर्म १, ईशान २, सनत्कुमार ३, माहिंद ४, ब्रह्म ५, लांतक ६, शुक्र ७, सहस्रार ८, आणत ९, प्राण १०, आरण ११, अच्युत १२, ये कल्प [आचार] वाले कहाते हैं राज्यनीति मर्यादा तथा तीर्थंकर के कल्याण आदिक का महोत्सव करना, सेवा में आज्ञा, धर्म से डिगते को उपदेश दे थिर करना इत्यादि आचारवंत होने से कल्पोपपन्न कहाते हैं, इनों का निवास उर्धलोक में है, समभूतल पृथ्वी इस जंबूद्वीप के मध्यभाग में मेरुनाम पर्वत लक्षयोजन प्रमाण ऊंचा उस के समीप पृथ्वी को समभूतल कहते हैं, बाकी पृथ्वी ऊंची नीची है, इसलिये समभूतल से एक सौ दश योजन ऊपर आकाश में तारा मंडल का प्रारंभ हुआ है सो मार्तंड नवै योजन ऊपर पर्यंत में जोतषी देवगण संपूर्ण का विमान है, सूर्य से ८० योजन ऊपर चन्द्र का विमान है, सर्व के ऊपर सनिश्चर का विमान है, ऐसा जंबूद्वीप पन्नती सूत्र में लिखा है, इहां से ऊपर असंख्यात योजन उर्द्धलोक जाने से प्रथम देवलोक तथा ईशान देवलोक दाये मुजब स्थित है, दक्षिण श्रेणी के ३२ लक्ष विमान सौधर्मेंद्र के स्वायत्त है, असंख्यात द्वीप समुद्र अंत स्वयंभू रमण समुद्र पर्यंत इसके परे अलोक है, उत्तर श्रेणी के २८ लक्ष विमानों का अधिपती दूसरे देवलोक का स्वामी ईशानेन्द्र स्वयंभु रमण समुद्र पर्यंत है इस प्रकार आगे ऊपर १० देवलोक हैं, इनों के आगे ऊपर नवग्रेवेयक देवलोक है, उनके आगे पंच अनुत्तर विमान विजय १, वैजयंत २, जयंत ३, अपराजित ४,

चारों दिशा में चार मध्य में सर्वार्थ सिद्ध विमान है, ५ ये ग्रेवयकनव पांच अनुत्तर देव कल्पातीत कहाते हैं, ये स्वयं अहमिंद्र है, जाते आते कहीं भी नहीं, इन सर्व देवतों को चार लक्षयोनि है सर्व संख्या पूर्वोक्त जीवों की योनि ८४ लक्ष है, वर्ण १, गंध २, रस ३, स्पर्श ४, भिन्नता से योनि कहाती है, ३ मिले १ न मिले वह योनि अलग, दोय परस्पर मिले दोय न मिले तो योनि अलग, इस प्रकार योनि संज्ञा है, सौधर्मादि १२ देवलोक के १० इंद्र है, नव में दश में दोनों देवलोक का एक इंद्र है, ११ में १२ में देवलोक का एक इंद्र है इस प्रकार सर्व देवतों के ६४ इंद्र है।

सिद्ध जो कर्म रहित परमात्मा अनन्त जीवों की एक ज्योतिमय ईश्वरता है वे सिद्ध १५ भेद से हुए होवे हैं, होंयगे।

अथ पूर्वोक्त जीवों का संक्षेपतया शरीरमान कहते हैं।

सर्व एकेन्द्रीय पृथ्वी आदि ५ स्थावर जीवों का शरीर अंगुल के असंख्यात में भाग जितना होता है लेकिन इतना विशेष है कालांतर क्षेत्रांतर की अपेक्षा में प्रत्येक वनस्पती का शरीर मान एक हजार योजन कुछ अधिक विशेष में विशेष होता है, इस प्रकार बे इंद्रीय जीवों का कालांतर क्षेत्रांतर की अपेक्षा में विशेष में विशेष १२ योजन पर्यंत का होता है, ते इंद्रीय जीवों का पूर्वोक्त अपेक्षा में तीन गाउ का शरीर मान होता है चौरिंद्रीय का कालांतर क्षेत्रांतर की अपेक्षा में एक योजन प्रमाण शरीर विशेष में विशेष होता है, सातमी नर्क ७ राज प्रमाण विस्तारवाली उहां के नारकी के जीवों का शरीर मान पांच से धनुष का है उससे अर्ध प्रमाण [illegible] धनुष का, छट्ठा नर्क के नारकी के जीवों का, पांचमी में [illegible] धनुष का, चौथी में [illegible] धनुष का, तीसरी का [illegible] धनुष का, दूसरी में [illegible] धनुष का प्रथम नर्क में [illegible] धनुष का शरीर का उच्च पणा जानना हजार योजन प्रमाण शरीर जल में उत्पन्न कालांतर क्षेत्रांतर की अपेक्षा से मच्छ जलचर का तथा उरपरि सर्प का उत्कृष्ट होता है भुजपरि सर्प का पूर्वोक्त अपेक्षा से दोगाउ से नवगाउ पर्यंत का उत्कृष्ट होता है शरीर का मान आकाश में उड़ने वाले पक्षी का पूर्वोक्त अपेक्षा में दो धनुष से लेकर [illegible] धनुष पर्यंत होता है, दो गाउ से लेकर नव

के ४२, संवर के ५७, निर्जरा के १२, बंध के ४, मोक्ष के ९ भेद हैं।

चेतनत्व से जीव एक तरह का है, त्रस और स्थावर रूप से दो तरह का है, स्त्रीवेद १, पुरुषवेद २, और नपुंसकवेद ३, रूप से तीन तरह का है। एवं चार गति नरकगति १, तिर्यञ्चगति २, मनुष्य गति ३, देवगति ४, रूप से चार तरह का है ४, एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रूप से ५ तरह का है। पृथ्वी काय १, जलकाय २, तेजःकाय ३, वायुकाय ४, वनस्पतिकाय ५, और त्रसकाय ६ रूप से छै तरह का जीव होता है।

सूर्य बादलों से चाहे जितना घिर जाय तौ भी उसका प्रकाश कुछ न कुछ जरूर बना रहता है, इसी तरह कर्मों के गाढ आवरण से ढके हुए जीव के ज्ञान का अनन्त वा भाग खुला रहता है, मतलब यह है कि पूर्ण कर्म बद्ध दशा में भी जीव में कुछ न कुछ ज्ञान जरूर बना रहता है, यदि ऐसा न हो तो जीव और जड में कोई फर्क ही न रहेगा।

सर्दी और गर्मी से बचने के लिये जो जीव चल फिर सके वे त्रस कहलाते हैं, जैसे द्विन्द्रीय, त्रीन्द्रीय आदि जो जीव शीत उष्ण से अपना बचाव करने के लिये चल फिर न सके वे स्थावर कहलाते हैं, जैसे एकेन्द्रिय जीव वृक्ष, लता, पृथ्वी काय, जल काय आदि।

जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ सम्भोग करने की इच्छा हो वह स्त्री वेद कहाता है, इसकी कामाग्नि तृण पूलक जलाने जैसी है। जिस कर्म के उदय से स्त्री के साथ सम्भोग करने की इच्छा होती है उसको पुरुष कहते हैं, इसको कामाग्नि तृण १ जले जैसी होती है। २ जिस कर्म के उदय से स्त्री पुरुष दोनों के साथ सम्भोग करने की इच्छा होती है उसको नपुंसक वेद कहते हैं, नगर जले इतनी कामाग्नि होती है। ३ ये जन्म नपुंसक का स्वरूप जानना, कर्त्रिम नपुंसक का नहीं।

देव १, मनुष्य २, तिर्यञ्च ३, नरक ४, ये चार गति में जीव घूमता है अनादि काल से जब तक मुक्ति न होगी तबतक घूमता रहेगा।

जीव के १४ भेद कहते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों के २ भेद, सूक्ष्म और बादर, द्विन्द्रिय का १ भेद,

त्रीन्द्रिय का १ भेद, चतुरिन्द्रिय का १ भेद, पंचेन्द्रिय के २ भेद संज्ञी और असंज्ञी, एवं सात हुये, ये सात पर्याप्त और अपर्याप्त रूप से दो प्रकार के हैं, इस प्रकार १४ भेद हैं।

सूक्ष्म जीव वे हैं, जिनको हम आंख से नहीं देख सकते न उन्हें अन्य पशु पक्षी मनुष्य आदि उनों को उपयोग कार्य में ले सकते, कोई भी चीज उनकी गति में रुकावट नहीं पहुंचा सकती, सर्व लोक में ये भरे हुए हैं।

बादर जीव वे हैं जिन्हें हम देख सकते हैं सूक्ष्म से विपरीत धर्म वाले हैं, उनके रहने की जगह नियत है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय को ५ इंद्री और मन होता है असंज्ञी पंचेंद्रियों के मन नहीं होता जैसे मछली मेंढक तथा रक्त वीर्य, श्लेष्म आदि १४ जगे उत्पन्न होनेवाले जीव।

शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते हैं, जीव सम्बन्ध पुद्गल में एक ऐसी शक्ति है जो आहार को ग्रहण कर उसका रस बनाती है, उस शक्ति का नाम है आहार पर्याप्ति॥ १॥

रस रूप परिणाम का रक्त मांस मेद (चर्बी) अस्थि (हड्डी) मज्जा (हड्डी के अन्दर का कोमल पदार्थ और वीर्य बनाकर शरीर रचना करने वाली शक्ति को शरीर पर्याप्ति कहते हैं॥ २॥

सात धातुओं में रक्त मांस आदि में परिणत रस से इंद्रियों के बनाने वाली शक्ति को इंद्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

श्वासोच्छ्वास बनने योग्य पुद्गल द्रव्य को ग्रहण कर उसको श्वासोच्छ्वास रूप में परिणत करने वाली शक्ति को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

मन बनने योग्य पुद्गल-द्रव्य को ग्रहण कर मनो-रूप परिणत करनेवाली शक्ति को मनः पर्याप्ति कहते हैं।

भाषा योग्य पुद्गल-द्रव्य को ग्रहण कर भाषा रूप से परिणत करने वाली शक्ति को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

पदार्थ के स्वरूप का बदलना परिणाम कहलाता है जैसे दूध का परिणाम दही।

आहार १, शरीर २, इंद्रिय ३, श्वासोच्छ्वास ४, भाषा ५, और मन ६, ये छः पर्याप्ति हैं, इनमें से प्रथम की चार पर्याप्तियां एकेन्द्रिय जीव ५ स्थावर सूक्ष्म बादरों के होती हैं, मन पर्याप्ति को वर्ज के बाकी की ५ पर्याप्ति ३ विकलेंद्रिय, तथा समुर्च्छिम असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के होती हैं।

ये छओं पर्याप्तियां गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को होती हैं, प्रथम की ३ पर्याप्तियां पूरी किये बिना कोई भी जीव मरता नहीं, जिन जीवों की जितनी पर्याप्तियां कही गई हैं उन पर्याप्तियों को यदि वे पूरी कर चुके हों तो पर्याप्त कहलाते हैं, जिन जीवों ने उतनी पर्याप्ति पूरी नहीं की और मर गये वे अपर्याप्त कहलाते हैं। इति जीव तत्व विवरणम् ॥

अथ अजीव तत्व के चौदह भेद लिखते हैं।

स्कंध, देश और प्रदेश रूप से धर्मास्तिकाय इस प्रकार अधर्मास्तिकाय भी ३ रूप से, इस ही प्रकार आकाशास्तिकाय भी ३ रूप से, एवं ९ भेद हुये, काल का १ भेद, एवं १० भेद, और पुद्गल के ४ भेद, स्कंध १, देश २, प्रदेश ३, और परमाणु ४, सब मिलाने से अजीव तत्व के १४ भेद हुवे।

स्कंध का स्वरूप चउदह रज्वात्मक लोक में पूर्ण जो धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ये प्रत्येक स्कंध कहलाते हैं मिले हुवे अनन्त-अनन्त-परमाणुओं के छोटे समूह को भी स्कंध कहते हैं

देश [illegible] बुद्धि कल्पित भाग को देश कहते हैं।

प्रदेश का स्वरूप स्कंध से अथवा देश से लगा हुआ, अति सूक्ष्म भाग (जिसका फिर विभाग न हो सके) वह प्रदेश कहलाता है।

परमाणु का स्वरूप स्कंध अथवा देश से पृथक् (अलग) प्रदेश के समान अति सूक्ष्म स्वतन्त्र भाग परमाणु कहलाता है।

पुद्गल [illegible] परमाणु [illegible] गन्ध [illegible] धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के परमाणु [illegible]

अस्ति का अर्थ है प्रदेश, और काय का अर्थ है समूह, प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं, काल द्रव्य का वर्त्तमान समय रूप एक ही प्रदेश है प्रदेशों का समूह न होने से काल को आकाशास्तिकाय की तरह कालास्तिकाय नहीं कह सकते।

धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, पुद्गलास्तिकाय ४, और काल ५ ये अजीव द्रव्य हैं।

धर्मास्तिकाय चलन स्वभाव वाला है, अर्थात् जैसे मछली के चलने फिरने में जल सहायक है, उसी तरह जीव और पुद्गल के सञ्चार में हिलने डुलने में धर्मास्तिकाय सहायक है।

अधर्मास्तिकाय स्थिर स्वभाव वाला है, अर्थात् जैसे वृक्षादि की छाया पथिकों को विश्रांति लेने में ठहरने में कारण है, उसी तरह जीव और पुद्गल को स्थिर रखने में अधर्मास्तिकाय कारण है।

अवकाश देना आकाशास्तिकाय का स्वभाव है, दूध शक्कर को अवकाश देता है, उसी तरह आकाशास्तिकाय जीव पुद्गलादि को अवकाश देता है। आकाश के दो भेद हैं, लोकाकाश १ और अलोकाकाश २ जितने आकाश देश में जीव पुद्गल धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय और काल व्याप्त है वह लोकाकाश कहलाता है जिसमें ये पांचों नहीं वह अलोकाकाश कहलाता है।

रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द ये लक्षण पुद्गलास्तिकाय में हैं धर्मास्तिकायादि में नहीं।

अथ काल द्रव्य का वर्णन करते हैं

एक करोड़ सड़सठ लाख सतहत्तर हजार दो सौ सोलह (१६७७७२१६) आवलिकाओं का एक मुहूर्त होता है।

असंख्य समयों की एक आवलिका होती है।

जिसका विभाग न हो वह [illegible]
[illegible]
[illegible]

असङ्ख्य वर्षों का एक पल्योपम, दस क्रोडाक्रोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी, दूसरे दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की एक अवसर्पिणी होती है।

उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी मिलकर एक काल चक्र होता है, ऐसे अनंत काल चक्र बीतने पर एक पुद्गल परावर्त्त होता है।

अथ पुण्य तत्व के ४२ भेद कहते हैं।

सातावेदनीय, उच्चैर्गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, देवगति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, वैक्रियशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रथम के तीन शरीरों के अंग, उपाङ्ग और अङ्गोपाङ्ग आदि संघयण, और आदि संस्थान।

१. जिस कर्म से जीव सुख का अनुभव करे, उसे शाता वेदनीय कहते हैं।

२. जिस कर्म से जीव उच्चकुल में पैदा हो, उसे उच्चैर्गोत्र कहते हैं।

३. जिस कर्म से जीव को मनुष्य गति मिले उसे मनुष्य गति कहते हैं।

४. जिस कर्म से मनुष्य की आनुपूर्वी मिले उसे मनुष्यानुपूर्वी कहते हैं। आनुपूर्वी का मतलब यह है कि जब जीव शरीर छोड़ कर समश्रेणी से जाने लगता है तब आनुपूर्वी कर्म उस जीव को जबरदस्ती से जहां पैदा होना हो वहां पहूंचा देता है, मनुष्य गति कर्म और मनुष्यानुपूर्वी कर्म दोनों की मनुष्यद्विक संज्ञा है।

५. जिस कर्म से जीव को देवगति मिले उसे देवगति कहते हैं।

६. जिस कर्म से जीव को देवता की आनुपूर्वी मिले उसे देवानुपूर्वी कहते हैं।

७. जिस कर्म से जीव को पांचों इन्द्रियां मिले उसे पंचेंद्रिय जाति कर्म कहते हैं।

८. जिस कर्म से जीव को औदारिक शरीर मिले उसे औदारिक कर्म कहते हैं।

उदार तीर्थंकरादि उत्तम पुरुष बड़े २ की अपेक्षा से प्रधान पुद्गलों से जो शरीर बनता है उसे औदारिक कहते हैं. उसमें मनुष्य, पशु, पक्षी सर्पादि का शरीर औदारिक कहलाता है।

९. जिस कर्म से वैक्रिय शरीर मिले उसे वैक्रिय कर्म कहते हैं, अनेक प्रकार की क्रियाओं से बना हुआ शरीर वैक्रिय कहलाता है. उसके दो भेद हैं, औपपातिक और लब्धि जन्य, देवता और नरक निवासी जीवों का शरीर औपपातिक कहलाता है।

लब्धि अर्थात् सामर्थ्य विशेष प्राप्त होने पर तिर्यञ्च और मनुष्य भी कभी २ वैक्रिय शरीर धारण करते हैं, चक्रवर्ती राजा तथा मुनिराज और कई रचन शक्ति को लब्धिजन्य वैक्रिय शरीर कहते हैं. तिर्यञ्च जाति में किरडा अनेक रूप बदलता है. इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाण है।

१०. जिस कर्म से आहारक शरीर की प्राप्ति हो उसे आहारक कर्म कहते हैं, मन्यंतर मे विद्यमान तीर्थंकर से अपना संदेह दूर करने के लिये या उनका ऐश्वर्य देखने के लिये चौदह पूर्वधारी मुनि राज चाहते हैं, तब निज शक्ति से एक हाथ प्रमाण चर्म चक्षु को नहीं दीखे, ऐसा अति सुन्दर शरीर बनाते हैं, उसको आहारक शरीर कहते हैं।

११. जिस कर्म से तैजस शरीर की प्राप्ति हो उसे तैजस कर्म कहते हैं। किये हुए आहार को पचाकर रस रक्त आदि बनानेवाला तथा तपोबल से तेजोलेश्या निकालनेवाला शरीर तैजस कहलाता है. तैजस शरीर और कार्मण शरीर का अनादि काल से जीव के साथ संबन्ध है, मोक्ष पाये बिना उनों के साथ वियोग नहीं होता. स्थूल शरीर त्यागकर परभव जाते जीव के संग रहते हैं।

१२. जीवों के साथ लगे हुये आठ प्रकार के कर्मों का विकाररूप तथा सब पांचों शरीरों का कारण रूप कार्मण शरीर कहलाता है. १३ अंग १३, उपांग १४, और अंगोपांग १५ जिन कर्मों से मिले उसको अंग कर्म, उपांग कर्म, अंगोपांग कर्म कहते हैं।

जानु, भुजा, मस्तक, पीठ आदि अंग हैं, अंगुली वगैरह उपांग और अंगुली के पर्वरेखा आदि अंगोपांग कहलाते हैं, औदारिक, वैक्रिय आहारक शरीर को अंगादि होते हैं, तैजस कार्मण शरीर के अंगादि नहीं होते, शक्ति रूप शरीर हैं, इसलिये

१६. प्रथम संहनन-वज्रऋषभनाराच जिस कर्म से मिले उसे वज्रऋषभनाराच नाम कर्म कहते हैं।

हड्डियों की रचना को संहनन कहते हैं।

दो हाड़ों का मर्कट बन्ध होने पर एक पट्टा (वेष्टन) दोनों पर लपेट दिया जाय फिर तीनों पर खीला ठोका जाय इस तरह की दृढ़ हड्डियों की रचना को वज्रऋषभनाराच कहते हैं।

१७. प्रथम संस्थान-सम चतुरस्र जिस कर्म से मिले उसे समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

पालथी मार कर बैठने से दोनों जानु और दोनों कंधों का इसी तरह बायें जानु और दहिने कंधे का तथा दक्षिण जानु और बायें स्कंध का अंतर समान हो तो उस संस्थान को समचतुरस्र संस्थान कहते हैं, जिनवर देव तथा शलाका पुरुषों का देवताओं का यही संस्थान वाला शरीर होता है।

वर्णादिचार (वर्ण, गंध, रस और स्पर्श) अगुरु लघु, पराघात, श्वासोच्छ्वास, आतप, उद्योत, शुभ विहायोगति, निर्माण, त्रसदशक, सुरायुष्य, और मनुष्यायुष्य, तिर्यंचायुष्य तीर्थंकर नाम कर्म।

२१. जिन कर्मों से जीव का शरीर शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभरस, शुभस्पर्श वाला हो उन कर्मों को शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभरस और शुभ स्पर्श नाम कर्म कहते हैं।

लाल, पीला श्वेतरंग शुभवर्ण कहलाता है, सुगंध को शुभ गन्ध कहते हैं, खट्टा, मीठा और कसैला रस शुभ रस कहलाता है, लघु, कोमल उष्ण, चिकना स्पर्श शुभ कहलाता है।

२२. जिस कर्म से जीव का शरीर न लोहे जैसा भारी हो न आक के समान जैसा हलका हो किन्तु मध्यम हो, उसे अगुरु लघु नाम कर्म कहते हैं।

२३. जिस कर्म से जीव का शरीर बलवान से भी जीता न जाय उसे पराघात नाम कर्म कहते हैं।

जिस कर्म से जीव का शरीर श्वासोच्छ्वास ले सके उसे श्वासोच्छ्वास नाम कर्म कहते हैं।

२५. जिस कर्म से जीव का शरीर उष्ण न होकर भी उष्ण प्रकाश करे उसे आतप नाम कर्म कहते हैं, सूर्य मंडल में रहने वाले पृथ्वीकाय जीवों का शरीर ऐसा ही है।

२६. जिस कर्म से जीव का शरीर शीतल प्रकाश करने वाला हो उसे उद्योत नाम कर्म कहते हैं, ऐसे पृथ्वीकाय के जीव चन्द्र मंडल तारा मंडलों के विमानों में है, वैक्रिय लब्धि से जो जैन साधु वैक्रिय शरीर धारण करते हैं उस शरीर का प्रकाश शीतल होता है, वह इस उद्योत नाम कर्म से समझना चाहिये।

२७. जिस कर्म से जीव हस्ती, हंस बैल जैसी चाल चले उसे शुभ विहायोगति नाम कर्म कहते हैं।

२८. जिस कर्म से जीव के शरीर के अवयव नियत स्थान में व्यवस्थित (शोभन स्थानों में जैसा चाहिये ऐसा हो) उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं। जैसे कारीगर पुतलि में यथा योग्य स्थानों में अवयवों को बनाता है, वैसे ही निर्माण नाम कर्म भी अवयवों को व्यवस्थित करता है।

जिस कर्म से जीव को त्रस शरीर मिले वह त्रस नाम कर्म कहलाता है, त्रस जीव वे हैं जो धूप से व्याकुल होने पर छाया में जाय और शीत से दुःखी होने पर धूप में जा सके, द्वीन्द्रियादि जीव त्रस कहलाते हैं।

३०. जिस कर्म से जीव का शरीर या शरीर समुदाय देखने में आ सके इतना स्थूल (मोटा) हो उसे बादर नाम कर्म कहते हैं।

३१. जिस कर्म के उदय से जीव अपनी पर्याप्तियों से युक्त हो, उसे पर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं।

३२. जिस कर्म से एक शरीर में एकही जीव स्वामी रहे उसे प्रत्येक नाम कर्म कहते हैं।

३३. जिस कर्म से जीव के दांत, हड्डी आदि अवयव दृढ हो उसे स्थिर नाम कर्म कहते हैं।

३४. जिस कर्म से जीव की नाभि के ऊपर का भाग शुभ हो उसे शुभ नाम कर्म कहते हैं।

जिस कर्म से जीव सबका प्रिय पात्र हो उसे सौभाग्य नाम कर्म कहते हैं।

३६. जिस कर्म से जीव का स्वर (आवाज) कोयल की तरह मधुर हो उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं।

३७. जिस कर्म से जीव का वचन लोकों में आदरणीय होय उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं।

३८. जिस कर्म से लोगों में यश और कीर्ति फैले उसे यश कीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

४१ देवायु मनुष्यायु. तिर्यंचायु जिस कर्म से जीव मनुष्य तिर्यंच की योनि में जीता है वह देव मनुष्य तिर्यंचायु नाम कर्म कहलाता है।

४२ जिस कर्म से जीव ३४ अतिशयों से युक्त होकर त्रिभुवन का पूजनीय होता है उसे तीर्थंकर नाम कर्म कहते हैं।

इति पुण्य तत्व विवरणम्॥

अथ पाप तत्व लिख्यते ।

१. मन और पांच इंद्रियों के सम्बन्ध से जीव को ज्ञान हो उसे मति ज्ञान कहते हैं. उस ज्ञान का आवरण (आच्छादन) वह मति ज्ञानावरणीय पाप कर्म कहलाता है।

२. शास्त्र को द्रव्य श्रुत कहते हैं. और उसके सुनने या पढ़ने से जो ज्ञान होता है उसे भाव श्रुत कहते हैं. उसका आवरण श्रुतज्ञानावरणीय पाप कर्म कहलाता है।

३ अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों के बिना आत्मा को रूपी द्रव्य का ज्ञान हो उसे अवधि ज्ञान कहते हैं उसका आवरण अवधि ज्ञानावरणीय पाप कर्म कहलाता है

४. संज्ञी पंचेन्द्रिय के मन की बात जिस ज्ञान से आत्मा को मालूम होती है उसे मन पर्यव ज्ञान कहते हैं उसका आवरण मन पर्यव ज्ञानावरणीय पाप कर्म कहलाता है।

५ केवल अर्थात् सकल के सब पदार्थों का पूर्ण ज्ञान जिससे आत्मा में प्रगट होता है उसे केवल ज्ञान कहते हैं उसका आवरण केवल ज्ञानावरणीय पाप कर्म कहलाता है

६. दान से जो लाभ होता है उसे जानता हो, पास में धन हो सुपात्र भी मिल जावे लेकिन दान नहीं कर सके इसका कारण दानांतराय पाप कर्म है।

७. दान देनेवाला उदार है उसके पास दान की वस्तु भी हाज़र है लेने वाला भी हुशियार है, तो भी मांगी हुई चीज़ न मिले इसका कारण लाभान्तराय पाप कर्म है।

८. भोग्य वस्तु विद्यमान है, भोगने की शक्ति भी है लेकिन भोग नहीं सकता उसका कारण भोगान्तराय पाप कर्म है।

९. उपभोग्य वस्तु विद्यमान है उपभोग करने की शक्ति भी है लेकिन उपभोग नहीं ले सके, इसका कारण उपभोगान्तराय पाप कर्म है

जो चीज़ एक बार भोगने में आवे वह भोग, जैसे पुष्प, फल, भोजन आदि जो वही पदार्थ बार बार भोगने में आवे उसे उपभोग्य कहते हैं, जैसे स्त्री, वस्त्र, आभरण, गृह इत्यादि

१०. रोग रहित युवा अवस्था रहते और सामर्थ्य रहने भी अपनी शक्ति का विकाश न कर सके उसका कारण वीर्यान्तराय पाप कर्म है।

११. आंख से पदार्थों का जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं, उसका आवरण चक्षुर्दर्शना वरणीय पाप कर्म कहलाता है।

१२. कान, नाक, जीभ त्वचा तथा मन के सम्बन्ध से शब्द, गन्ध रस और स्पर्श का जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं, उसका आवरण अचक्षुर्दर्शना वरणीय पाप कर्म कहलाता है।

१३. इंद्रियों के बिना रूपी द्रव्य का जो सामान्य बोध होता है उसे अवधि दर्शन कहते हैं, उसका आवरण अवधि दर्शना वरणीय पाप कर्म कहलाता है।

१४ संसार के रूपी अरूपी संपूर्ण पदार्थों का जो सामान्य अवबोध होता है, उसे केवल दर्शन कहते हैं, उसका आवरण केवल दर्शना वरणीय पाप कर्म कहलाता है।

जो सोया हुआ मनुष्य ज़रा भी खटखटाहट से या ज़रा शब्द सुनने से जाग जाता है उसको निद्रा कहते हैं, जिस कर्म से ऐसी निद्रा आवे

समझ में तल्लीन रहे वह भी मिथ्यात्व है, पंचांगी वाणी युक्त जिन वचन के वर्तमान सर्व सूत्रों में संशय लाकर न माने, वह भी मिथ्यात्व है। इत्यादि

२३. जिस कर्म से स्थावर शरीर की प्राप्ति हो उसे स्थावर नाम पाप कर्म कहते हैं, स्थावर शरीर वाले ५ प्रकार के एकेन्द्रिय जीव गर्मी, सर्दी से दुखित हो, लेकिन चल फिर न सकने के कारण अपना बचाव नहीं कर सके।

२४. जिस कर्म से आंख से नहीं दीखने योग्य शरीर मिले उसे सूक्ष्म नाम पाप कर्म कहते हैं।

२५. जिस कर्म से अपनी पर्याप्ति पूरी किये बिना ही मर जावे उसे अपर्याप्त नाम पाप कर्म कहते हैं।

२६. जिस कर्म से अनंत जीवों को एक शरीर मिले उसे साधारण नाम पाप कर्म कहते हैं, पूर्वोक्त लसण, प्याज आदि के जीव।

२७. जिस कर्म से कान, भौंह, जीभ आदि अवयव अस्थिर (चपल) होते हैं, उसे अस्थिर नाम पाप कर्म कहते हैं।

२८. जिस कर्म से नाभि के नीचे का भाग अशुभ हो उसे अशुभ नाम पाप कर्म कहते हैं।

२९. जिस कर्म से जीव किसी का प्रीतिपात्र न हो उसे दुर्भग नाम पाप कर्म कहते हैं।

३०. जिस कर्म से जीव का स्वर सुनने में बुरा लगे उसे दुस्वर नाम पाप कर्म कहते हैं।

३१. जिस कर्म से जीव का वचन लोगों में माननीय न हो उसे अनादेय नाम पाप कर्म कहते हैं।

३२. जिस कर्म से लोकों में अपयश और अपकीर्त्ति हो उसे अपयशः अपकीर्त्ति नाम पाप कर्म कहते हैं।

३३. जिस कर्म से जीव नरक गमन करता है उसे नरक गति पाप कर्म कहते हैं।

३४. जिस कर्म से नरक में जीता है, उसे नरकायु पाप कर्म कहते हैं।

२५. जिन कर्म से जीव को बलात्कार नरक में जाना पड़े, उसे नरकानुपूर्वी पाप कर्म कहते हैं ।

३९. जिन कर्म से जीव को अनन्तकाल तक संसार में जन्म मरण करना पड़ता है उसे अनन्तानुबंधी मोह पाप कर्म कहते हैं, इसके ४ भेद हैं, अनन्तानुबंधी क्रोध ३६, अनन्तानुबंधी मान ३७, अनन्तानुबंधी माया ३८, अनन्तानुबंधी लोभ ३९ ।

४३. जिन कर्म से जीव को श्रावकपना, देश विरती रूप, प्रत्याख्यान (त्याग) की प्राप्ति न हो उसे अप्रत्याख्यान मोह पाप कर्म कहते हैं, इसके भी ४ भेद हैं. अप्रत्याख्यान क्रोध ४०, अप्रत्याख्यान मान ४१, अप्रत्याख्यान माया ४२ और अप्रत्याख्यान लोभ ४३ इनकी स्थिति १ वर्ष की है, इनके उदय में गृहस्थ के धारण करने योग्य अणुव्रत धारण करने की इच्छा नहीं होती, मरने पर प्रायः तिर्यंच होता है ।

४७. जिस कर्म के उदय से सर्व व्रती रूप साधु धर्म प्रत्याख्यान की प्राप्ति न हो उसे प्रत्याख्यान मोह पाप कर्म कहते हैं. इसके भी ४ भेद हैं प्रत्याख्यान क्रोध ४४ प्रत्याख्यान मान ४५, प्रत्याख्यान माया ४६ और प्रत्याख्यान लोभ ४७ इनकी स्थिति चार मास की है. ये मोह-नीय पाप कर्म [illegible] चारित्र का प्रति बन्धक है. मरने पर प्रायः मनुष्य गति मिलती है

५१. जिस कर्म से यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति न हो उसे संज्वलन मोह पाप कर्म कहते हैं इसके भी ४ भेद हैं संज्वलन क्रोध ४८ सं. मान ४९ सं. माया ५० और सं. लोभ ५१ इनकी स्थिति १५ दिन की है [illegible] हो जाते हैं मुक्ति नहीं ।

५२. जिस कर्म से बिना कारण या कारणवश हंसी आवे उसे हास्य मोहनीय पाप कर्म कहते हैं

५३. जिस कर्म से अच्छे पदार्थों में अनुराग हो उसे रतिमोहनीय पाप कर्म कहते हैं

५४. जिस कर्म से बुरी चीजों से नफरत हो उसे अरतिमोहनीय पाप कर्म कहते हैं .

५५. जिस कर्म से इष्ट वस्तु का वियोग होने पर शोक हो उसे शोक मोहनीय पाप कर्म कहते हैं।

५६. जिस कर्म के वश बिना कारण वा कारण से दिल में भय हो उसे भय मोहनीय पाप कर्म कहते हैं।

५७. जिस कर्म से दुर्गंधी वा बिभत्स पदार्थों को देखने से घृणा हो उसे जुगुप्सा मोहनीय पाप कर्म कहते हैं।

६०. स्त्रीवेद ५८, पुरुषवेद ५९, नपुंसकवेद ६० का मतलब पहले लिखा जा चुका है, ये २८ प्रकृति मोहनीय कर्म की है

६१. जिस कर्म से तिर्यंच गति मिले उसे तिर्यंच गति पाप कर्म कहते हैं।

६२. जिस कर्म से जीव को जबरदस्ती तिर्यंच गति में जाना पड़े उसे तिर्यंचानुपूर्वी पाप कर्म कहते हैं।

६६. जिस कर्म से जीव को एकेन्द्रिय ६३, द्वीन्द्रिय ६४, त्रीन्द्रिय ६५, और चतुरिन्द्रिय जाति ६६ मिले, इन चारों को पाप कर्म समझना चाहिये।

६७. जिस कर्म से जीव ऊंट, गधे जैसा चले उसे अशुभ विहायो गति पाप कर्म कहते हैं।

६८. जिस कर्म से जीव अपने ही अवयवों से दुःखी हो, उसे उपघात पाप कर्म कहते हैं, जैसे पडि जिव्हा (पड जीभ) कण्ठ माला, चोर दांत, दंतेरु, छठी उंगली आदि हैं।

७२. जिन कर्मों से जीव का शरीर अशुभ वर्ण ६९, अशुभ गंध ७०, अशुभ रस ७१, अशुभ स्पर्श ७२ उसको अप्रशस्त वर्ण, गंध, रस स्पर्श पाप कर्म कहते हैं।

नील, कृष्ण, श्याम अशुभ वर्ण हैं, दुर्गंध अशुभ गंध है, तिक्त और कटुक अशुभ रस है, गुरु (भारी) खर(कठोर) रुक्ष और शीत अशुभस्पर्श है।

७७. जिन कर्मों से अन्तिम ५ संहननों की प्राप्ति हो उसे अप्रथम संहनन पाप कर्म कहते हैं। वे ये हैं, ऋषभनाराच ७३, नाराच ७४, अर्द्धनाराच ७५, कीलिका ७६ और सेवार्त्त ७७।

(१) हड्डियों की संधि में दोनों ओर से मर्कट बन्ध और उनपर

पांच अव्रत: प्राणातिपात (हिंसा), मृषावाद (झूठ बोलना), अदत्ता दान (चोरी), मैथुन (वीर्यपात), और परिग्रह (धन धान्यक्षेत्रादि) तीन योग. मनो योग १, वचन योग २, काय योग ३।

२५ क्रियायें कायकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, परितापनिकी, प्राणातिपातकी, आरम्भिकी, परिग्राहिकी, माया प्रत्ययिकी, मिथ्या दर्शन प्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी, दृष्टिकी, स्पृष्टिकी, प्रातित्यकी, सामंतोपनि पातिकी, नैसृ ष्टि की, स्वहस्ति की, आनयनि की, वैदारणि की, अनाभोगिकी, अनवकांक्ष प्रत्ययिकी, प्रायोगिकी, समुदायिकी, प्रैमिकी, द्वैषिकी और इर्यापथिकी इनों क्रियाओं का अर्थ लिखते हैं।

१. अप्रमादशानी मे शरीर के व्यापार से जो क्रिया से हिंसा हो वह कायिकी।

२. जिस क्रिया से जीव नरक में जाने का अधिकारी होता है, जैसे खड्ग आदि से जीव की हत्या करना, उसे अधिकरणिकी कहते हैं।

३. जीव तथा अजीव पदार्थ से द्वेष करने से प्राद्वेषिकी क्रिया होती है।

४. अपने आप को और दूसरों को तकलीफ पहुंचाने से परितापनि की क्रिया लगती है।

५. दूसरों का प्राण नाश करने से प्राणातिपातकी क्रिया लगती है।

६. खेती आदि आरम्भ करने से आरम्भकी क्रिया लगती है।

७. धान्य वगैरह का संग्रह तथा उसपर ममता करने से परिग्राहिकी।

८. दूसरों को ठगने से माया प्रत्ययि की क्रिया लगती है।

९. जिनेन्द्र वचन से विपरीत श्रद्धा से मिथ्या दर्शन प्रत्ययिकी क्रिया०

१०. संयम के विघातक कषायों के उदय से प्रत्याख्यान की क्रिया०

११. रागादि कलुषित चित्त से पदार्थों को देखने से दृष्टि की क्रिया०

१२. रागादि कलुषित चित्त से स्त्री आदि के अंग स्पर्शन से स्पृष्टि की क्रिया लगती है।

१३. जीवादि पदार्थों को लेकर कर्म बन्धन से जो क्रिया लगती है उसे प्रातित्यकी क्रिया कहते हैं।

१४. अपना वैभव देखने के लिये आये हुये लोगों की वैभव विषयक प्रशंसा सुनकर खुश होने से, तथा घृत, तेल आदि के खुले बर्तन रखने से जो त्रस जीवों के गिरने से हिंसा आदि हो उस क्रिया को सामन्तोपनिपातिकी कहते हैं।

१५. राजा आदि की आज्ञा से यन्त्र, शस्त्र आदि बनाने तथा खींचने आदि से जो क्रिया लगती है उसे नैसृष्टिकी कहते हैं।

१६. हिरन, खरगोश आदि जीवों को शिकारी कुत्तों से मरवाने या खुद मारने से जो क्रिया लगती है उसे स्वहस्तिकी कहते हैं।

१७. जीव तथा जड़ पदार्थों को किसी की आज्ञा से या खुद लाने ले जाने से जो क्रिया लगती है, उसे आनयनिकी कहते हैं।

१८. जीव और जड़ पदार्थों को चीरने फाड़ने से जो क्रिया लगती है उसे वैदारणिकी कहते हैं।

१९. बेपरवाही से चीजों के उठाने रखने तथा चलने फिरने से जो क्रिया लगती है उसे अनाभोगिकी कहते हैं।

२०. इस लोक के तथा परलोक के विरुद्ध आचरण करने से अनवकांक्षा प्रत्ययिकी क्रिया लगती है।

२१. मन, वचन और शरीर के योगों के व्यापार से प्रायोगिकी क्रिया लगती है।

२२. किसी महारम्भ में आठों कर्मों का समुदित रूप से बन्धन हो तो सामुदानिकी क्रिया कहलाती है।

२३. [illegible] क्रिया कहते हैं।

२४. क्रोध और मान के करने से द्वेषिकी क्रिया लगती है।

२५. केवल योग के निमित्त हलन चलन आदि में जो क्रिया लगती है वह ईर्यापथिकी कहलाती है। इति क्रिया स्वरूपम्।

इन २५ को आश्रव तत्त्व के समझना, इन सब की क्रिया अप्रमत्त साधु तथा सयोगी केवलज्ञानी को भी लगती है प्रथम समय में लगे दूसरे समय में [illegible]

पांच अव्रतः प्राणातिपात (हिंसा), मृषावाद (झूठ बोलना), अदत्ता दान (चोरी), मैथुन (वीर्यपात), और परिग्रह (धन धान्यक्षेत्रादि) तीन योग, मनो योग १, वचन योग २, काय योग ३।

२५ क्रियायें कायकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातकी, आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, माया प्रत्ययिकी, मिथ्या दर्शन प्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी, दृष्टिकी, स्पृष्टिकी, प्रातित्यकी, सामंतोपनिपातिकी, नैसृष्टिकी, स्वहस्तिकी, आनयनिकी, वैदारणिकी, अनाभोगिकी, अनवकांक्ष प्रत्ययिकी, प्रायोगिकी, समुदानिकी, प्रेमिकी, द्वैषिकी और ईर्यापथिकी इनों क्रियाओं का अर्थ लिखते हैं।

१. अयतनावानी से शरीर के व्यापार से जो क्रिया से हिंसा हो वह कायिकी।

२. जिस क्रिया से जीव नरक में जाने का अधिकारी होता है, जैसे शस्त्र आदि से जीव की हत्या करना, उसे अधिकरणिकी कहते हैं।

३. जीव तथा अजीव पदार्थ से द्वेष करने से प्राद्वेषिकी क्रिया होती है।

४. अपने आप को और दूसरों को तकलीफ पहुंचाने से पारितापनिकी क्रिया लगती है।

५. दूसरों का प्राण नाश करने से प्राणातिपातकी क्रिया लगती है।

६. खेती आदि आरम्भ करने से आरम्भकी क्रिया लगती है।

७. धान्य वगैरह का संग्रह तथा उसपर ममता करने से पारिग्रहिकी।

८. दूसरों को ठगने से माया प्रत्ययिकी क्रिया लगती है।

९. जिनेन्द्र वचन से विपरीत श्रद्धा से मिथ्या दर्शन प्रत्ययिकी क्रिया०

१०. संयम के विघातक कषायों के उदय से अप्रत्याख्यान की क्रिया०

११. रागादि कलुषित चित्त से पदार्थों को देखने से दृष्टि की क्रिया०

१२. रागादि कलुषित चित्त से स्त्री आदि के अंग स्पर्शन से स्पृष्टि की क्रिया लगती है।

१३. जीवादि पदार्थों को लेकर कर्म बन्धन से जो क्रिया लगती है उस प्रातित्यकी क्रिया कहते हैं।

अथ संवर तत्व के ५७ भेद लिखते हैं।

५ समिति, ३ गुप्ति, २२ परीषह, १० प्रकार यति धर्म, १२ भावना ५ चारित्र ये संवर के ५७ भेद समझना।

संवर के दो भेद हैं, द्रव्य संवर १, भावसंवर २, आते हुये नवीन कर्म को रोकने वाले आत्मा के परिणाम को भाव संवर कहते हैं, कर्म पुद्गल की रुकावट को द्रव्य संवर कहते हैं।

आईत धर्म के अनुसार जो चेष्टा विशेष उसे समिति कहते हैं। ५ समिति—

१. कोई जीव पैर से न दब जाय, इस प्रकार राह में सावधानी से चलना, उसे इर्यासमिति कहते हैं।

२. निर्दोष भाषा बोलने को भाषा समिति कहते हैं।

३. निर्दोष आहार ४२ दोषों से रहित उसको लेना एषणा समिति कहलाती है ये साधु धर्म है, गृहस्थधर्म से भक्ष वस्तु न्यायोपार्जित द्रव्य विवेक से निपजाई वह गृहस्थ के लिये देस संवर है।

४. दृष्टि से देख के, उपयोग से, रजोहरण से, प्रमार्जन करके, चीजों का उठाना, धरना आदाननिक्षेपसमिति कहलाती है, गृहस्थ धर्मी विवेक से यत्ना से चीजों को उठावे, धरे तो देस संवर है। ५. कफ मल, मूत्र आदि को जीव रहित जगह में गेरना, परिष्ठापनि का समिति कहलाती है, गृहस्थों के लिए मर्यादा विवेक और विचार वह देस संवर है।

६. मनो गुप्ति के तीन भेद हैं, असत्कल्पना वियोगिनी १, समता भाविनी २ और आत्मरमणता ३।

आर्त्त तथा रौद्र ध्यान सम्बन्धी कल्पनाओं का त्याग असत्कल्पना वियोगिनी मनो गुप्ति कहलाती है।

सर्व जीवों में समान भाव ममताभाविनी मनोगुप्ति कहलाती है।

केवल ज्ञान होने के बाद सम्पूर्ण योगों के निरोध करने के समय आत्म रमणता मनोगुप्ति कहलाती है।

७. वचन गुप्ति के दो भेद हैं, मौनावलम्बिनी, वाग्नियमिनी किसी अभिप्राय को समझाने के लिये भ्रकुटि आदि से संकेत न करके मौन धारण करना मौनावलम्बिनी वचन गुप्ति कहलाती है। वांचने या पूछने

के समय मुंह के सामने मुख वस्त्रिका का धारण या अश्लील वाक्य, मर्मोद्घाटक वाक्य, असत्य वाक्य, आदि वर्जित भाषा वाक् नियमिनी वचन गुप्ति कहलाती है।

३. काय गुप्ति के दो भेद हैं, चेष्टा निवृत्ति और यथासूत्र चेष्टा नियमिनी।

१. योग निरोध अवस्था में केवली का सर्वथा शरीर चेष्टा का परिहार होता है, जैसे कायोत्सर्ग में अनेक प्रकार के उपसर्ग होते हुये भी शरीर को स्थिर रखना चेष्टा निवृत्ति काय गुप्ति कहलाती है, २ तथा साधु लोग उठने, बैठने, शयन आदि में जैन सिद्धांत के अनुसार शरीर के व्यापार को नियमित रखते हैं, उसे यथा सूत्र चेष्टा नियमिनी काय गुप्ति कहते हैं।

अथ २२ परिषह स्वरूप।

धर्म की रक्षा के लिये तथा कर्मों की निर्जरा के लिये प्राप्त हुये दुःखों को सब तरह से सहन करना परिषह कहलाता है।

१. क्षुधापरिषह—क्षुधा के समान कोई वस्तु कष्टप्रद नहीं है भूख प्यास लगने पर भोजन मिले तो जठराग्नि धातुओं को जलाती है। आंतें जलने लगती हैं, कैसी भी तेज भूख लगे तो भी साधु जन निर्दोष आहार जब तक नहीं मिलता है तब तक भूख की पीड़ा को समता से सहन करते हैं, क्षुधा परिषह सब परिषहों में कठिन है इसलिये इसको प्रथम कहा गया।

२. पिपासा परिषह—जबतक अचित्त प्रासुक जल न मिले तब तक प्यास के वेग को समता से सहना

३. शीत परिषह—चाहे ठंड कितनी ही हो तो भी आग जलाकर तापे नहीं, न दूसरे की जलाई हुई से शीत दूर करे अकल्पनीय वस्त्रों की इच्छा न करे, जो कुछ अपने पास हो उसी में निर्वाह करे।

४. उष्ण परिषह—गरमी पड़ती हो तो भी साधु स्नान करने की इच्छा न करे, न पंखा आदि की हवा न करे उष्णता को सहन करे।

५. दंस-मशक परिषह—चातुर्मास में मच्छर आदि जीवों का बहुत उपद्रव रहता है कायोत्सर्ग आदि में [illegible] उसे सहन करे।

६. अचेल-चेल कहते हैं वस्त्र को, उसका अभाव अचेल कहलाता है यहां अचेल का मतलब सर्वथा वस्त्र का अभाव नहीं समझना चाहिये किन्तु आगम में साधुओं को जितना प्रमाण वस्त्र रखने की आज्ञा है उतने ही रखे, बहु मूल्य वस्त्रों की इच्छा न करे, जो कुछ फटे पुराने वस्त्र हों उसमें संतोष रक्खे।

७. अरति-अपने मन के मुवाफिक उपाश्रय आहारादि न मिलने से दुखी न होवे।

८. स्त्री-स्त्रियों के अंग प्रत्यंगों को न देखे, उनके साथ एकांत में बात चीत करना, हंसना आदि व्यापार न करे, मोक्ष मार्ग में उन्हें अर्गला के समान जान काम दृष्टि से देखे नहीं।

९. चर्या-बहता हुआ जल और विहार कर्ता साधु ये दोनों स्वच्छ रहते हैं, इसलिये साधु को किसी एक जगह अधिक न ठहरना चाहिये, धर्म का उपदेश देते हुये अप्रति बद्ध विहार करे।

१०. नैषधकी-श्मशान, शून्यगृह [illegible] स्थानों में ध्यान करने के समय विविध उपसर्ग [illegible] न करे।

११. शय्या-जहां ऊंची नीची [illegible] बिस्तर दुरुस्त न हो जिससे निद्रा न [illegible] मन में उद्वेग न करे।

१२. आक्रोश कोई गाली [illegible] कटु वचन बोले तो उसे सहन करे।

१३. वध-कोई दुष्ट [illegible] भी साधु क्रोध न करे।

१४. याचना-साधु को [illegible] लाया हुआ आहार न ले, स्वयं जिनाज्ञानुसार [illegible] मांगने में कोई अपमान करे तो क्रोध न करे, न मांगने में लज्जा [illegible]

१५. अलाभ-लाभान्तराय कर्म का जब उदय होता है तब मांगने पर भी वस्तु नहीं मिलती, चाहे वह वस्तु दातार के घर अधिक हो साधु निर्दोष आहार आदि के अप्राप्ति से उद्वेग न करे, [illegible] का [illegible] को विचार मन [illegible] रहे।

१६. रोग—ज्वर, अतिसार आदि भयंकर रोग होने पर जिन कल्पी साधु चिकित्सा कराने की इच्छा भी न करे, किन्तु अपने कृत कर्म का परिपाक समझ कर वेदना को सहन करे, स्थविर कल्पी साधु आगमोक्त विधि से निरवद्य चिकित्सा करावे और मन में ऐसा विचार करे कि कर्म फल मिल रहा है, वेदना अपुक्त आर्त ध्यान न करे।

१७. तृण—रोग पीडित साधु घास आदि के बिस्तर के तृण के गड़ने से दुखी न हो, किन्तु शान्ति चित्त से वेदना सहन करे।

१८. मल—पसीने से शरीर में मल बढ जाय दुर्गंध आने लगे तो भी स्नान करने की इच्छा न करे।

१९. सत्कार—लोक समुदाय वा राजा महराजों की करी स्तुति वंदना वा आदर सत्कार से साधु अपना उत्कर्षता का गर्व्व न करे। आदर सत्कार के न पाने से दुखी भी न हो।

२०. प्रज्ञा—बड़ी विद्वत्ता होने पर भी साधु गर्व्व न करे तथा अल्प ज्ञान होने पर भी शोक न करे।

२१. अज्ञान—ज्ञाना वरणीय कर्म के उदय से पढने में मेहनत करने पर भी विद्या हांसिल नहीं होती है, साधु ऐसा दुर्ध्यान न करे कि मैंने गृहस्थाश्रम छोडा, साधु बना हूं, तप जप करता हूं, पढ़ने में परिश्रम करता हूं तोभी मुझे विद्या प्राप्त नहीं होती, इसलिये मुझे धिक्कार है कि साधु होकर भी मैं मूर्ख हूं, किन्तु अपने पूर्व कृत ज्ञान तथा ज्ञानी की करी हुई अवज्ञा आशातना का कर्म फल सोचकर संतोष करे, परिश्रम करता रहे, रात दिन के अभ्यास से कूये पर मट्टी के घड़े से पत्थर घस जाता है।

२२. सम्यक्त—जैन सिद्धांत देव, गुरु, धर्म आदि जिनोपदेशित पदार्थों में शंका, कांचा आदि न करे।

दश प्रकार का यति धर्म वर्णनम्।

क्षमा १, मार्दव २. आर्जव ३, मुक्ति (संतोष) ४, तप ५, संयम ६, सत्य ७, शौच ८, अकिञ्चनत्व ९ और ब्रह्मचर्य १०: ये दस यतिधर्म हैं।

सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखने से क्रोध नहीं होता, क्रोध का न होना क्षमा कहाती है।

अहङ्कार का त्याग मार्दव कहाता है २ कपट न करना आर्जव कहाता है ३, लोभ न करना मुक्ति कहाती है ४, इच्छा का निरोध तप कहाता है, ५ बाह्य ६ अभ्यंतर६ ऐसे १२ प्रकार तप है।

प्राणातिपात (हिंसा) का त्याग संयम कहाता है, ६ सच बोलना सत्य कहाता है ७, किसी जीव को तकलीफ न हो ऐसा वर्त्ताव करना हाथ,पैर वस्त्रादि को पवित्र रखना, चोरी न करना ये सब कृत्य शौच कहाता है।

८. सब परिग्रहों का त्याग अकिंचनत्व कहाता है।

९. मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है।

अनित्यादि १२ भावना का चिंतन करना इसका विस्तार पहले भावना विलास में लिख चुके हैं वहां से समझना।

अथ ५ चारित्र का वर्णन करते हैं।

सामायक १ छेदोपस्थापनीय २, परिहार विशुद्धि ३, सुक्ष्मसंपराय ४ और यथाख्यात ५ ये [illegible] चारित्र कहाते हैं।

१ सदोष व्यापार [illegible] त्याग [illegible] निर्दोष व्यापार का सेवन अर्थात् जिससे ज्ञान दर्शन चारित्र का लाभ उस चारित्र को सामायक कहते हैं। यह साधु के यावज्जीव नव कोटि से मन, वचन, काया से करना कराना अनुमोदना एवं त्रिविध [illegible] होता है।

२. प्रथम दिये दीक्षा के पर्याय को छेद के ६ मास के अनन्तर प्रधान साधु द्वारा दिये हुये पंच महाव्रतों को छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। ३ नव साधु गच्छ से अलग होकर सिद्धांत में लिखी हुई विधि के अनुसार अठारह मास तक तप करे, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं।

---

१ [illegible]
[illegible]
[illegible]

४. दसवें गुणस्थानक में भाव परिणाम पहुंचे हुवे साधु के चारित्र को सूक्ष्म संपराय चारित्र कहते हैं।

५. क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों के सर्वथा क्षय होने पर साधु का जो चारित्र है उसे यथा ख्यात चारित्र कहते हैं, इस चारित्र की प्राप्ति से जीव मुक्ति पाते हैं।

इस काल पंचम आरे में दो चारित्रधर साधु हैं, शेष ३ चारित्र व्युच्छिन्न हो गये।

इति संवर तत्त्व विवरणम्।

अथ निर्जरा तत्त्व लिख्यते।

अनशन, ऊनोदरता, वृत्ति संक्षेप, रस त्याग कायक्लेश, और संलीनता यह छह प्रकार के बाह्य तप हैं।

१. आहार का त्याग अनशन कहलाता है, इत्वर और यावत्क थिक उपवास, षष्ट, अष्टम आदि तप इत्वर कहलाता है और यावत्कथिक तप जब तक जीवे तब तक आहार का त्याग को कहते हैं।

२. आहार का कम करना, ऊनोदरता तप कहलाता है।

३. वृत्ति (आजीविका का) संक्षेप करना वृत्ति संक्षेप तप है द्रव्यक्षेत्र काल भाव से चार प्रकार का यह तप है।

४. दूध, घी, तेल दही, गुड़ शक्कर आदि का त्याग रसत्याग कहलाता है, जैसे नीवी, आम्बिल आदि तप।

५. साधु लोग लोच करते हैं अर्थात् मस्तक के बाल उखाड़ते हैं योग साधनार्थ ८४ आसन करते हैं और भी अनेक प्रकार से कायोत्सर्ग करते हैं, इत्यादि कारण से शरीर को कष्ट पहुंचाते हैं उसे समभाव से सहते हैं यह सब काय क्लेश तप कहलाता है।

६. इंद्रियों को वश में रखना, क्रोध लोभादि न करना, मन, वचन

[illegible]

काया से किसी जीव को तकलीफ न होने देना, उपाश्रय आदि एकांत स्थान में रहना, बिना प्रमार्जित भूमिका पर अंग प्रत्यंग नहीं पसारना। ये संलीनता तप कहलाता है।

प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और उत्सर्ग ये छह अभ्यंतर तप हैं।

१. जो पाप किये हो उन्हें गुरु के पास कहे, पाप शुद्धि के लिये गुरु जो तप बतलावे उसे करे, यह प्रायश्चित्त तप कहलाता है।

२. देव, गुरु, माता पिता आदि पूज्यों का आदर सत्कार करना, उन्हें अपने शुद्ध आचरण से सन्तुष्ट रखना, इस को विनय तप कहते हैं।

३. आचार्य, उपाध्याय, साधु, तपस्वी, दीन हीन आदि को अन्न जल वस्त्र ठहरने की जगह, औषधि, विश्राम, परिचर्या इत्यादि प्रकार इसे वैयावृत्य तप कहते हैं।

४. पढ़ना, पढ़ाना सन्देह होने से गुरु से पूछना, पढ़े हुये ग्रन्थ को याद रखना, धर्म की कथा कहना, धर्म का उपदेश देना, यह सब स्वाध्याय तप कहलाता है।

५. चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं उसके चार भेद हैं, आर्त्त ध्यान, गृह सम्बन्धी चिन्ता, माता पिता मित्र आदि के मृत्यु होने पर शोक करना, कोढ़ी रोगी आदि को देख घृणा करना. शरीर में कोई [illegible] होने पर विषाद करना, इस जन्म में किये हुये दान, शील, तप [illegible]दि शुभ कृत्य का दूसरे जन्म में अच्छे फल पाने की चिन्ता करना, इत्यादि सब आर्त्त ध्यान कहाते हैं।

रौद्र ध्यान द्वेष से किसी जीव को मारने या उसे कष्ट पहुंचाने चिंता करना, छल कपट करके दूसरे का धन लेने की चिन्ता करना, हिस्सेदार कुटुम्बी मर जांय तो मैं अकेला [illegible] धन का मालिक बन बैठूंगा, ऐसी चिन्ता करना ये सब रौद्र ध्यान कहाता है।

धर्मी जनों को आर्त्त रौद्र ध्यान दुर्गति का कारण समझ के त्यागना चाहिये।

धर्म ध्यान, ज्ञान, दर्शन, चारित्र वैराग्य आदि की भावना करना सर्वज्ञ वीतराग के उपदेशरूप सिद्धांत में सन्देह न करके उस पर पूर्ण श्रद्धा रखना राग, द्वेष, क्रोध काम लोभ, मोह आदि इस लोक तथा परलोक में दुःख देने वाले हैं ऐसा चिन्तन करना सुख दुःख प्राप्त होने पर हर्ष और शोक न कर पूर्व कृतकर्म का फल मिल रहा है, ऐसा चिन्तन करना जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए छह द्रव्यों का विचार करना, यह सब धर्म ध्यान कहलाता है।

शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं पृथक्त्व वितर्क विचार, १ एकत्व वितर्क विचार २, सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति ३ और व्युपरत क्रिया निवृत्ति ४।

१. द्रव्य गुण और पर्याय की जुदाई को पृथक्त्व कहते हैं, अपनी आत्मा के शुद्धस्वरूप का अनुभव रूप भाव श्रुत वितर्क कहलाता है और मन, वचन, काय इन तीन योगों में से एक योग को ग्रहण कर दूसरे में संक्रमण करना, विचार कहलाता है।

२. आत्म द्रव्य में या उसके विकार रहित सुख के अनुभवरूप पर्याय में या निरुपाधि ज्ञान रूप गुण में आत्मा सुखरूप भाव श्रुत के बल से स्थिर होकर द्रव्य गुण पर्यायों का विचार करना।

३. तेरहवें गुण स्थानक के अंत में मनोयोग और वचन योग को रोकने के बाद काय योग के रोकने में प्रवृत्त होना।

४. तीनों योगों का अभाव होने पर फिर च्युत न होनेवाला अनन्त ज्ञान अनन्त सुख का एकरस अनुभव इस तरह शुक्ल ध्यान के ४ भेद कहे, इस ध्यान प्राप्त मनुष्य की तद्भव मुक्ति हो जाती है।

४. उत्सर्ग तप के द्रव्य और भाव रूप से दो भेद है, द्रव्य उत्सर्ग १ भाव उत्सर्ग २, द्रव्य उत्सर्ग गच्छ का त्याग करके जिन कल्प स्वीकार कर वनोवासी अकेला कर पात्री इत्यादि क्रिया यंत होना यह जिन कल्प इस आरे में व्युच्छिन्न हो गया वज्र ऋषभनाराच संहनन बिना नहीं होता, अनशन व्रत लेकर शरीर का त्याग किसी कल्प विशेष में उपाधि त्याग सदोष आहार का त्याग ये सब द्रव्योत्सर्ग कहलाते हैं।

भावोत्सर्ग २ क्रोध, मान, माया, लोभ का त्याग नरक की आयु बांधने में कारण भूत मिथ्या ज्ञान आदि का त्याग आवरण करनेवाले ज्ञाना वरणीय आदि कर्म का त्याग ये सब तप कहलाते हैं।

इस प्रकार जीव के सत्ता में अनादिकाल निरुद्ध कर्मों का क्षय वाला १२ प्रकार का निर्जरा तत्व समाप्तम्।

अथ बंध तत्व का स्वरूप लिखते हैं।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, और प्रदेश ये चार बंध के भेद हैं, का स्वभाव प्रकृति बंध कहाता है कर्म के काल का निश्चय स्थिति बं कहाता है कर्म का रस अनुभाग बंध कहाता है, और कर्म का दल संच प्रदेश बंध कहाता है।

प्रकृति बन्ध १ जिस तरह वात पित्त और कफ के हरण करने वाले चीजों से बने हुये लड्डू का स्वभाव वात आदिक दूर करता है उसी तर कर्मों का स्वभाव है जैसे कर्म ८ हैं ज्ञाना वरणीय १, दर्शना वरणीय २ वेदनीय ३, मोहनीय ४, आयु ५, नाम ६, गोत्र ७, और अन्तराय ८ इनों की उत्तर प्रकृतियां इस तरह हैं, ज्ञाना वरणीय की ५, मति ज्ञान वरणीय १, श्रुति ज्ञाना वरणीय २, अवधि ज्ञाना वरणीय ३, मन पर्यव ज्ञाना वरणीय ४ केवल ज्ञाना वरणीय ५ इस तरह इन प्रकृतियों का वर्णन पुण्य तत्व में और पाप तत्व में लिखा है, दर्शना वरणीय कर्म की ९ प्रकृति चार दर्शना वरण और ५ निद्रा, वेदनी २ सुख और दुःख, मोहनीय की २८ चार कषायों के अनन्तानुबन्धी आदि, १६ हास्यादिक नव नोकषाय, ३ वेद पुरुष वेदादि, ३ मोहनीय मिथ्यात्वादि एवं २८ आयु की ४, नरकादिचार गति का आयु-नाम कर्म की, १०३ गोत्र कर्म उच्च नीचादि दो ✱ अन्तराय कर्म की दानांतरायादि ५ एवं १५८ उत्तर प्रकृति ८ कर्मों की होती है।

अथ आठ कर्मों का स्वभाव।

१. ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव आंख पर बांधी हुई पट्टी सदृश है

जैसे कुम्भार घृत रखने के घड़े बनाता है और मद्य रखने के भी बनाता है, घृत का घड़ा अच्छा समझा जाता है मद्य का बुरा, इसी तरह गोत्र कर्म के उदय से जीव ऊंच नींच कुल में उत्पन्न होता है।

८. अन्तराय कर्म का स्वभाव भंडारी जैसा है, वह कर्म जीव के अनन्त वीर्य गुण को रोकता है तथा दान १ लाभ २ भोग ३ उपभोग ४ आदि लब्धियों को रोकता है, जैसे मालिक की इच्छा होते हुये भी दुष्ट भंडारी के कारण दान आदि नहीं कर सकता, इसी प्रकार अन्तराय के उदय से जीव दान आदि नहीं कर सकता न अपनी शक्ति का विकाश कर सकता।

स्थिति बंध जैसे बना हुआ लड्डू महीना छ महीना या वर्ष तक एकही हालत मे रहता है उसी तरह कोई कर्म थोड़ा कोई विशेष वख्त तक इसको स्थिति बंध कहते हैं।

जैसे ज्ञाना वरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय इन पांच कर्मों की जघन्य (कम से कम) स्थिति अंत मुहुर्त की है, वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारे मुहर्त की है, नाम कर्म और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहुर्त की है।

अथ आठ कर्मों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध।

ज्ञाना वरणीय, दर्शना वरणीय, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मों की उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) स्थिति तीस कोड़ा कोड़ी सागरोपम की है, नाम कर्म, गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ा कोड़ी सागरोपम की है, आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।

३ अनुभाग (रस) बन्ध जिस तरह कोई लड्डू मीठा कोई कडुवा और कोई तीक्ष्ण उसी तरह ग्रहण किये हुये कर्म दलों में किसी का मधुर रस किसी का कडुवा और किसी का तीक्ष्ण इत्यादि अनेक प्रकार रस होता है, उसे अनुभाग (रस) बन्ध कहते हैं।

४. प्रदेश बन्ध जैसे कोई लड्डू पाव भर कोई आधसेर परिमाण का

होता है उसी तरह कोई कर्म दल परिमाण में कम होता है और कोई ज्यादा. अनेक प्रकार के परिमाण होते हैं. इन परिमाणों को प्रदेश बन्ध कहते हैं।

अथ मोक्ष तत्व के नव भेद।

सत्पदप्ररूपणा द्वार. द्रव्य प्रमाण द्वार. क्षेत्रद्वार, स्पर्शना द्वार, काल द्वार, अन्तरद्वार, भाग द्वार भाव द्वार और अल्प बहुत्व द्वार ये मोक्ष के नव द्वार हैं अर्थात् मोक्ष का स्वरूप समझने के नव भेद हैं।

१. सत्पदप्ररूपणा द्वार मोक्ष सत् अर्थात् विद्यमान है, क्योंकि उसका वाचक एक पद है, आकाश कुसुम की तरह वह अविद्यमान नहीं है मार्गणा द्वारा मोक्ष की प्ररूपणा (विचार) की जाती है।

एक पद का वाच्य अर्थ अवश्य होता है घट, पट आदि शब्द एक पदवाले हैं उनका वाच्य अर्थ भी विद्यमान है, दो पद वाले शब्दों के वाच्य अर्थ होते भी हैं और नहीं भी होते, जैसेगो शृङ्ग, महिष शृङ्ग ये शब्द दो दो पदों से बने हैं इन का वाच्य अर्थ गाय का सींग, भैंस का सींग प्रसिद्ध है, लेकिन खर शृङ्ग, और अश्व शृङ्ग ये दो शब्द भी दो दो पदों से बने हुये हैं लेकिन इनके वाच्य अर्थ गधे का सींग, घोड़े का सींग अविद्यमान है, मोक्ष शब्द एक पद वाला होने से उसका वाच्य अर्थ भी घट, पट आदि पदार्थों की तरह विद्यमान है इस प्रकार अनुमान प्रमाण से मोक्ष है।

अब मार्गणा कहते हैं उसके मूल भेद चौदह हैं, उत्तर भेद बासठ।

१ गति मार्गणा. २ इन्द्रिय मार्गणा. ३ काय मार्गणा, ४ योग मार्गणा, ५ वेद मार्गणा, ६ कषाय मार्गणा, ७ ज्ञान मार्गणा, ८ संयम मार्गणा, ९ दर्शन मार्गणा. १० लेश्या मार्गणा, ११ भव्य मार्गणा, १२ सम्यक्त्व मार्गणा, १३ संज्ञी मार्गणा, १४ और आहार मार्गणा।

---

१. इसी तरह देव नरक शब्द भी एक पदवाला होने से मोक्ष की तरह वह भी अनुमान प्रमाण से देव और नर्क भी है, यदि मोक्ष जीव को होवें तो वह कदापि जन्म मरण नहीं कर सकता, स्वामजी भी मोक्ष के जीवों की पुनरावृत्ति लिखी है, मुक्त जीवों की विडंबना पुनर्जन्म परम विद्वान स्वामी दयानन्दजी ने अच्छी तरह सत्यार्थ प्रकाश में की है।

और सम्पूर्ण जीव द्रव्य का जिसके जरिये विचार किया जाय उसे मार्गणा कहते हैं।

इनमें से १० मार्गणा से मोक्ष होता है सो लिखते हैं।

१ नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार गतियों में से केवल मनुष्य गति से मोक्ष मिलता है तीन गति अवशेष से नहीं।

२. इन्द्रिय मार्गणा के ५ भेद हैं, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इनमें से पंचेन्द्रिय द्वार में मोक्ष होती है शेष चार में नहीं।

३. काय मार्गणा के छह भेद हैं, पृथ्वी काय, अप्काय, (जल) तेज (अग्नि) काय, वायु काय वनस्पति काय और त्रस काय इनमें से त्रस काय के जीव मोक्ष जा सकते हैं, ५ काय के नहीं।

४. भवसिद्धिक मार्गणा के दो भेद हैं, भवसिद्धक और अभवसिद्धक इनमें से भवसिद्धक अर्थात् भव्य जीव मोक्ष जा सकते हैं, अभव्य जीवों की मुक्ति कदापि भी होगी नहीं।

५. संज्ञी मार्गणा के दो भेद हैं, संज्ञी मार्गणा, और असंज्ञी मार्गणा इनमें से संज्ञी (गर्भज मनवाले) जीव मोक्ष जा सकते हैं, असंज्ञी (सम्मूर्च्छिम) मुक्ति नहीं जा सकते।

६. चारित्र मार्गणा के ५ भेद हैं, संवर द्वार में पांचों के नाम कह हैं, उनमें से यथाख्यात चारित्र का लाभ होने पर जीव मोक्ष जाता है अन्य चारित्र से नहीं।

—१. अभव्य कुलक में लिखा है, अभव्य के कदापि चित्त में ऐसा भाव नहीं होता कि मैं भव्य हूं अथवा नहीं, उसको जिनराज के वचनों पर कदापि श्रद्धान नहीं आता, उसको [illegible] अनन्तकाल तक [illegible] है, [illegible] भी [illegible] उसके उपदेशसे भी मोक्ष होती है, [illegible] तीसरे नरक तक नारकियों को भी [illegible] की आज्ञा से [illegible] धर्म का [illegible] अनानुत्तरिक देवत्वपना अभव्य जीव कदापि नहीं पाता, उसके चित्त में [illegible] अनन्त है [illegible] [illegible] नहीं, [illegible] फिर [illegible] अभव्य [illegible] है

किसी कर्म के क्षय होने वाले भाव को क्षायक भाव कहते हैं।

पारिणामिक भाव ये हैं भव्यत्व अभव्यत्व, और जीवितव्य,।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य, रूप, भाव प्राण सिद्ध जीवों के है, लेकिन पांच इन्द्रियां मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वास उश्वास और आयु ये दस प्राण सिद्धों के नहीं होते, उपशम, क्षय, और क्षायोपशम की अपेक्षा न रखनेवाले जीव के स्वभाव को पारिणामिक भाव कहते हैं।

सिद्ध १५ भेद से होते हैं।

(१) तीर्थंकर सिद्ध, (२) अतीर्थंकर सिद्ध, (३) तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध, (५) गृहस्थ लिङ्ग, सिद्ध, (६) अन्य लिङ्ग सिद्ध, (७) स्वलिङ्ग सिद्ध, (८) स्त्री सिद्ध, (९) पुरुष सिद्ध, (१०) नपुंसक सिद्ध, (११) प्रत्येक बुद्ध सिद्ध, (१२) स्वयं बुद्ध सिद्ध, (१३) बुद्ध बोधित सिद्ध, (१४) एक सिद्ध, (१५) अनेक सिद्ध, ये १५ सिद्ध के भेद हैं।

१. तीर्थंकर होकर जिन्होंने मुक्ति पाई वे जिन तीर्थंकर सिद्ध ऋषभ महावीर आदि।

२. सामान्य केवली अतीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं पुंडरीकादि।

३. चतुर्विध संघ की स्थापना करने के बाद जिन्होंने मुक्ति पाई वे तीर्थ सिद्ध जैसे गौतम आदि गणधर।

४. चतुर्विध संघ की स्थापना करने के पहिले जिन्होंने मुक्ति पाई वे अतीर्थ सिद्ध जैसे मरु देवी आदि।

५. गृहस्थ लिङ्ग सिद्ध गृहस्थ के भेष में जिन्होंने मुक्ति पाई जैसे मरु देवी आदि वे गृहस्थ०

६. अन्यलिङ्ग सिद्ध सन्यासी आदि अन्य वेषधारी साधु आदिकों ने मुक्ति पाई वे वल्कल चीरी आदिक।

७. स्वलिङ्ग सिद्ध श्वेताम्बर, रजोहरण अपने जैन भेष में जिन्होंने मुक्ति पाई सुधर्मा जंबू स्वामी आदि।

८. स्त्री लिङ्ग सिद्ध राजमती चन्दन बाला आदि।

९. पुरुष लिंग सिद्ध गौतम आदि।

१०. नपुंसकलिंग सिद्ध जैसे भीष्म आदि।

जन्म नपुंसक मोक्ष नहीं पाता कृत्रिम नपुंसक मोक्ष पाता है।

११. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध जैसे करकंडु आदि।

किसी अनित्य पदार्थ को देखकर जिन्हों को बोध हुआ तदनन्तर केवल ज्ञान पाकर सिद्ध हुये वे प्रत्येक बुद्ध कहाते हैं।

१२. स्वयं बुद्ध सिद्ध बिना किसी के उपदेश के पूर्व जन्म के संस्कार उद्बुद्ध होने से जिन्हें ज्ञान हुआ और सिद्ध हुये वे जैसे कपिल ब्राह्मण पुत्र आदि।

१३. गुरु के उपदेश से ज्ञानी होकर जो सिद्ध हुये वे बुद्ध बोधित सिद्ध।

१४. एक समय में एकही मोक्ष जाने वाले एक सिद्ध जैसे महावीर स्वामी आदि।

१५. एक समय में अनेक मुक्त होने वाले अनेक सिद्ध कहलाते हैं, जैसे ऋषभदेव तथा ऋषभदेव के पुत्र आठ भरत के पुत्र १०८ कैलाश (अष्टापद) पहाड़ पर एक समय मुक्ति गये।

स्त्री एक समय में २० तक मोक्ष जाती हैं [illegible] एक समय में १० तक जाते हैं, पुरुष एक समय में १०८ तक मोक्ष जाते हैं।

इति मोक्ष तत्व निरूपण इति नव तत्व व्याख्या।

अथ जीव तत्व की पहिचान।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण हैं।

१. पांच प्रकार का ज्ञान प्रथम लिखा है ३ अज्ञान ये दोनों ज्ञान शब्द में लिये जाते हैं, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग अज्ञान इनको कुमति कुश्रुत, कुअवधि भी कहते हैं।

जिस जीव में ज्ञान हो वह तो सम्यग् दृष्टि और जिसे अज्ञान हो उसे मिथ्या दृष्टी समझना।

दर्शन ४ प्रकार लिखा है, चारित्र के ५ भेद सामायकादि प्रथम लिखा है इच्छा [illegible] के निरोध को कहते हैं।

तप के दो भेद हैं इनके तप के १२ भेद प्रथम कह चुके हैं।

भाव तप यह है जो कि इच्छा का रोकना।

सामर्थ्य बल या पराक्रम को वीर्य कहते हैं।

साकार उपयोग को ज्ञान कहते हैं, निराकार उपयोग को दर्शन द्रव्य प्राण जीव के १० प्रथम लिखा है।

जीव के ज्ञान दर्शन चारित्र आदि गुणों को भाव प्राण कहते हैं।

पुद्गल का लक्षण।

शब्द, अन्धकार, रत्नादिका उद्योत, चन्द्रादिक की प्रभा छाया सूर्यादि का आतप ये पुद्गल है, अथवा जिसमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हो उसे पुद्गल समझना।

पूरण गलन जिसका स्वभाव हो उसे पुद्गल कहते हैं, अर्थात् जो इकठे होकर मिल जाते हैं फिर जुदे २ हो जाते हैं वे पुद्गल कहलाते हैं।

जीव, पुद्गल, धर्मास्[illegible] [illegible]स्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ये छह द्रव्य हैं, इनमें से जीव और पुद्गल दो परिणामी हैं, जीव चेतन द्रव्य है, पुद्गल मूर्त्त हैं, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पांच द्रव्य प्रदेश सहित हैं, धर्म, अधर्म, आकाश [illegible] तीन एक २ हैं आकाश क्षेत्र है, जीव और पुद्गल सक्रिय हैं, धर्म, [illegible] आकाश और का[illegible] नित्य हैं, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और [illegible] [illegible] हैं, जीव कर्ता हैं, आकाश सर्वगत अर्थात् लोक अलोक [illegible] और छहों द्रव्य प्रवेश रहित हैं, अ[illegible] एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्वरूप नहीं धारण करता।

[illegible] [illegible] [illegible] हैं, स्वभाव परिणाम और विभाव परिणाम अन्य [illegible] होने वाला [illegible] परिणाम, विभाव परिणाम कहते [illegible] निमित्त से पुद्गल कर्म के स्वरूप में बदल जाते हैं और पुद्गल के निमित्त से जीव का ज्ञान अज्ञान के रूप में बदल जाता है, विभाव परिणाम की अपेक्षा से जीव और पुद्गल परिणामी हैं, अन्य द्रव्य नहीं क्योंकि उनमें स्वभाव परिणाम ही होते हैं, विभाव परिणाम नहीं होते

द्रव्य प्राण और भाव प्राणों को जीव द्रव्य ही धारण करता है, अतएव अन्य पांच द्रव्य निर्जीव हैं इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाने की योग्यता जिस द्रव्य में हो उसे मूर्त समझना चाहिये, अथवा जिसमें रूप रस, गन्ध और स्पर्श हो, उसे मूर्त कहते हैं, पुद्गल द्रव्य को छोड़ अन्य पांच द्रव्य अमूर्त हैं।

काल द्रव्य को छोड़ अन्य पांच द्रव्य प्रदेशवाले हैं।

जीव धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के प्रत्येक के असंख्य प्रदेश हैं सामान्य रूप से आकाश के अनन्त प्रदेश हैं, परन्तु लोकाकाश के असंख्य प्रदेश हैं पुद्गल द्रव्य संख्यात प्रदेशों वाला, असंख्यात प्रदेशों वाला और अनन्त प्रदेशों वाला होता है।

आकाश द्रव्य अन्य द्रव्यों को अवकाश देता है इसलिये वही एक क्षेत्र कहलाता है।

एक जगह से दूसरी जगह जाना यह क्रिया है, जीव और पुद्गल को छोड़ अन्य द्रव्यों में क्रिया नहीं है इसलिये जीव और पुद्गल सक्रिय हैं और अन्य द्रव्य निष्क्रिय कहलाते हैं।

धर्म अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यों में विभाव परिणाम नहीं होता इसलिये ये नित्य और जीव तथा पुद्गल में विभाव परिणाम होता है [illegible] की अपेक्षा से अनित्य है, अन्यथा जैन सिद्धान्त सब द्रव्यों को नित्यानित्य कहता है।

जीव के शरीर इन्द्रिय आदि के बनने में कारण पुद्गल है, जीव के गमन में कारण धर्मास्तिकाय है, जीव की स्थिति में कारण अधर्मास्तिकाय है, जीव के अवगाहन में कारण, आकाशास्तिकाय है, जीव की वर्तना में कारण काल है, इसलिये ये पांचों द्रव्य कारण हैं, और जीव द्रव्य अकारण है क्योंकि जीव से इन पांचों द्रव्यों का कोई उपकार नहीं होता।

सम्यक् चारित्र में कही गई पांच समिति व तीन गुप्ति सम्यक् चेष्टा को समिति कहते हैं, मन, वचन और काया के अशुभ व्यापारों का रोकना गुप्ति कहलाती है; ये आठ प्रवचन माता कहलाती हैं क्योंकि ये आत्मा के चारित्र गुणों का [illegible] करती हैं।

मय, और रिक्त, उभगपद मिल के चारित्र शुद्ध बना है, कर्मों के संचय को खाली कर दे, वह चारित्र कहलाता है, कर्मों के तपाने से तप कहलाता है, जैसे लोह को तपाने से कीट अलग गिरता है, तैसे कर्म रूप कीट को आत्म द्रव्य को गिरा देता है।

इति संवरतत्व षट् द्रव्य विवरणं सम्पूर्णम्।

इन नव तत्त्व को जाणे और सर दहे उसका फल।

जो जीवा जीवादि नव तत्वों को जानता है, उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है, जीवादि पदार्थों को नहीं जानने वाले भी यदि अन्तः करण से ऐसी श्रद्धा रक्खे कि सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वर भगवान के कहे हुए नव तत्व सच है, अशङ्कनीय है, तो जानना चाहिए कि ऐसे जीव को भी सम्यक्त्व है।

जिनेन्द्र भगवान के वचन अन्यथा (झूठ) नहीं हैं, ऐसी जिसकी बुद्धि हो उसे निश्चल सम्यक्त्व हुआ है, ऐसा समझना चाहिए क्योंकि काम, क्रोध, अहङ्कार, मोह, रागादि सर्वथा जिनों के क्षय हो जाय ऐसा पुरुष आप्त कहलाता है, और आप्त के वाक्य यथार्थ सत्य होते हैं, ऐसी दृढ़ श्रद्धा को (आत्मा के परिणाम विशेष को) सम्यक्त्व कहते हैं।

जिसको एक अंतर्मुहूर्त मात्र भी सम्यक्त्व का स्पर्श हुआ हो, उनका अर्ध पुद्गल परावर्त्त संसार बाकी रहा है, अर्थात् संसार में भ्रमण करना बाद मोक्ष मिलेगा।

यह काल परिणाम उस जीव के लिये कहा गया है जिसने बहुत आशातना की हो, या करने वाला हो शुद्ध सम्यक्त्व का आराधना करने वाला जीव हो उसी जन्म में कोई जीव तीसरे जन्म में, कोई सातमें जन्म कोई आठमें जन्म में इस तरह शीघ्र मुक्ति पाता है।

अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी बीत जाने पर एक पुद्गल परावर्त्तन होता है, इस तरह के अनन्त पुद्गल पहले हो चुके और अनन्त पुद्गल आगे होंगे ॥ इति नव तत्त्व विचारः ॥

---

१ [illegible]

अथ २४ दंडक संक्षेप स्वरूपम्।

जिन स्थानों में जीव पुण्य और पाप के फल से दंड पाता है उसे दंडक कहते हैं ये जीव अनादिकाल से मिथ्यात्व गुण के वशवर्ती हुआ, इन २४ स्थान में दंड पा रहा है उनका नाम सात नरक का एक दंडक दश भुवनपति देवों के १० दंडक, पृथ्वी कायादिक पांच स्थावर एकेन्द्रियों का ५ दंडक, दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चतुरेन्द्रिय इनों का ३ दंडक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच का १ दंडक, मनुष्य का १ दंडक, व्यंतर देवों का १ दंडक, ज्योतिषी देवों का १ दंडक, वैमानिक देवों का १ दंडक २४।

प्रथम देवों की गति और आगति कहते हैं।

[illegible] तिर्यंच और मनुष्य पूर्ण पर्याप्ति करके ये दोनों मर के चारोंनि काय के देवगति में जाते हैं।

और असंख्यात आयु वाले युगलिये मनुष्य और तिर्यंच इहां मनुष्य लोक में पूर्ण आयु भोग के निश्चय से देवगति में ही जाते हैं जितनी आयु इहां हो वा तो उतनी आयु वाले देव होते हैं, वा उससे कम आयु [illegible] लेकिन अधिक आयु वाले नहीं होते।

[illegible] पंचेन्द्रिय, तिर्यंच मर के भुवन पती वा व्यंतर देव होते हैं।

और गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच अधिक से अधिक आठमें देवलोक तक देव होते हैं यह तो गति कही।

अब आगति देवों की कहते हैं।

[illegible] देव अपनी आयु पूर्ण कर संख्यात आयु के मनुष्य और तिर्यंच होते हैं पूर्व कोटि वर्ष की आयु से ले कर अंतर्मुहूर्त तक संख्यात आयु [illegible] है।

[illegible] तिर्यंचों में देव उत्पन्न होता है, लेकिन युगलियों में देव उत्पन्न नहीं होता, [illegible] पृथ्वी के तथा बादर जल के, तथा प्रत्येक

बनस्पती में देवता इन पांचों में उत्पन्न होता है. ये पांच जो अपनी २ गति की पूर्ण पर्याप्ति करने वाले हों उनों में देव च्यवकर आता है, अपर्याप्तों में नहीं आता । इन्हों में फिर ये विशेषता है, तीजे देवलोक से ऊपर के देव आयु अपनी पूर्ण कर एकेन्द्रिय जोनि में कदापि उत्पन्न नहीं होते. और आठमें देवलोक से ऊपर के सर्वदेव का जीव मनुष्य पुण्यवंतों में ही जन्म लेते हैं अन्यत्र नहीं उत्पन्न होते ।

अथ नरक की गति आगति कहते हैं ।

संख्यात वर्षों की आयु वाले मनुष्य और तिर्यंच गर्भज ये दोय जीव ही नर के पाप प्रपंच से जो पर्याप्ती पूर्ण करने वाले हैं ये जाते हैं और इनहीं उक्त लक्षण युक्त नर वा तिर्यंचों में नरक की आयु पूर्ण कर जीव आके उत्पन्न होते हैं ।

इनमें विशेषता है सो कहते हैं ।

असंज्ञी मनुष्य तिर्यंच समुर्च्छिम मन वर्जित है सो प्रथम नरक घम्मा नाम रत्नप्रभा जाति तक जाता है ।

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त दूसरी वंसानाम शार्कर प्रभा जाति नरक पृथ्वी तक गोह नकुल (नोलिया) आदि जीव जाकर उत्पन्न होते हैं।

गृद्ध प्रमुख हिंसा कारक मांस भक्षी पक्षी शेला नाम वालुक प्रभा जाति तीसरी नरक पृथ्वी तक जाते हैं।

सिंह प्रमुख हिंसक पशु जाति अंजणानाम पंक प्रभा जाति चौथी नरक पृथ्वी तक जाते हैं।

सांप प्रमुख हिंसक जीव रिट्ठा नाम धूम प्रभा जाति पांचवीं नरक पृथ्वी तक जाते हैं।

स्त्री पाप कर्म कारिणी मघानाम तम प्रभा जाति छट्ठी नरक पृथ्वी तक जाती हैं ।

मनुष्य तथा तंदुल नाम मच्छ पाप अघोर कर्म करता माघवती नाम तमतम प्रभा जाति सातवीं नरक पृथ्वी तक जाते हैं. तंदुली नाम का मच्छ परम समुद्र स्वयंभु रमण जो अर्द्ध राज के विस्तार वाला है असंख्यात

होता है. वैक्रिय लब्धि से इतने ही रूप रचकर सर्व राणियों के समीप रहता है उस औदारिक मिश्र वैक्रिय शरीर से अन्य राणियों के संतान होता है, शंखावर्त्त योनि स्त्री रत्न उसके समीप निजरूप से व्यवहार करता है वह सर्व काल १६ वर्ष की श्यामा सुन्दर यौवन शालिनी तरुण रहती है, संतान नहीं होता जिव्हाइन्द्रिय चक्रवर्त्ति की ऐसी होती है, एक सहस्र ८ औषधी मिश्रित घीर चक्रवर्त्ति सर्वदा आहार करता है, उसकी १ बूंद जीभ पर धरने से सर्व औषधी का नाम कह देता है, १२ योजन की नगरी में थोड़ा भी शब्द हो तो श्रवण गोचर होता है, ३२ हजार राजाओं की सर्व चतुरंगिणी सैन्या चक्रवर्त्ति की गणना में होती है ८४ लाख गज, ८४ लाख अश्व, ८४ लाख अश्व रथ, ९६ कोटि प्यादे सवार मिल के ६ खंड तीन खंड हिमालय पहाड़ के दक्षिण समुद्र तक ३ खंडहिमालय पहाड़ के उत्तर तरफ इतना बड़ा राज्य होता है दास दासी आदि और जो कोडि संख्या से चक्रवर्त्ति की वैभव शास्त्रांतरों में कथन करी है, वह कोडि सौलाख की नहीं समझना. यह कोडि कोई संख्या स्थापित शब्द है, मारवाड़ में २० की कोडि कहते हैं, गुजरात में प्रथम एक रुपये की ३ कोड़ी चलती थी विद्यमान समय में चार हो गई हैं, इस प्रकार यह अन्य रूपांतर से कोडि संख्या जानना, ऐसा नरेंद्र चक्रवर्त्ति आगे अनंत हो गये इस अव-सर्पिणी काल में १२ हो गये हैं, जिनों का नाम प्रथम लिखा है, इतिहास में और आगे उत्सर्पिणी काल में पुनः १२ होवेंगे, एवं अनंत होवेंगे, ८ चक्री मोक्ष गये मघवा ३, सनत्कुमार ४ स्वर्ग गये हैं. सुभूम ८ मा ब्रह्मदत्त १२ मा ये दोनों सप्तमी नरक में गये. आगामी काल मनुष्य जन्म प्राप्त कर तप, जप संयम, आदरण कर मोक्ष जावेंगे ।

प्रायः ६३ सलाका पुरुष स्वर्ग से आकर होते हैं, कोई जीव नरक से निकल कर भी होते हैं. इसलिये प्रथम नरक से च्यव के चक्रवर्त्ति कोई जीव हो सकता है. प्रसंग वस चक्रवर्त्ति का स्वरूप कहा ।

दूसरी नरक का आयु पूर्ण कर पूर्व संचित पुण्य के उदय आने पर वासुदेव और बलदेव कोई एक जीव अवतार ले सकता है ।

कर हो सकता है।

तीर्थंकर का स्वरूप प्रथम लिखा है।

चौथी नरक से निकला जीव कोई केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जा सकता है।

पांचमी नरक से निकला कोई जीव साधुपन में सर्व विरती धर्म प्राप्त कर सकता है, तद्भव मोक्ष नहीं जा सकता।

छठी नरक से निकला कोई जीव गृहस्थ (श्रावक धर्म) पाय सकता है तद्भव मोक्ष नहीं जा सकता।

सातमी नरक से निकला कोई जीव सम्यक्त्व प्राप्त (जिन वचन पर श्रद्धा) कर सकता है तद्भव मोक्ष नहीं।

अथ मनुष्य की गति आगति कहते हैं।

मनुष्य गति बिन मुक्ति नहीं होती, संख्या वर्षों की आयु वाले मनुष्य पूर्वोक्त चौवीसही दंडकों में मरकर उत्पन्न होते हैं।

तथा तेज (अग्नि) के जीव और वायु (हवा) के जीव इन दोनों को वर्जे के दुसरे बावीसही दंडक से मरकर जीव मनुष्य होता है, सुख दुख स्वकृत कर्मानुसार पाता है।

असंख्यात आयुं वाले अर्थात् युगलिक मनुष्य और तिर्यंच तैसे सातमीं नरक का निकला जीव मरकर मनुष्य जन्म नहीं ले सकता।

वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्त्ति और तीर्थंकर ये स्वर्ग नर्क के पूर्वोक्त लेखानुसार, आये हुये ही होते हैं, मनुष्य और तिर्यंच मर कर नहीं होते।

चार निकाय के देवता च्यव कर चक्रवर्त्ति और बलदेव पदवी धर हो सकते हैं, वासुदेव और तीर्थंकर पदधर तो वैमानिक देव हो सकते हैं, अन्य देवका जीवच्यव कर नहीं हो सकता।

अथ तिर्यंच गति आगति कहते हैं।

संख्यात आयु वाले मनुष्य और तिर्यंच स्वकृत कर्मानुसार तिर्यंच में जन्म ले सकते हैं।

और जिन २ तिर्यचों में नरक से और देवपन से च्यव कर जन्म लेते हैं उनों का स्वरूप पहले कह दिया है, इसलिये पुनरुक्ति के कारण नहीं कहते।

संख्यात आयु वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच मरकर चारों गति में जाते हैं, लेकिन कोई तिर्यंच गर्भज मच्छ समुद्र में जिन प्रतिमा के आकार मच्छ को देख जाति स्मरण (इहा पोह) करता है, मैंने पूर्व ऐसा पदार्थ देखा था, उएय के उदय मतिज्ञान का भेद जाति स्मरण नाम ज्ञान के उत्पन्न होने से कम देखे तो पिछले ३ जन्म विशेष देखे तो पिछले नव जन्म उस ज्ञान द्वारा सम्यक्त्व युक्त स्व आत्मा गुण से हिंसा त्याग आदि अनुव्रत धारी होकर आयु के समाप्त होने पर आठमें देवलोक सहस्रार तक जा सकता है, एवं अन्य प्रत्यय द्वारा तीर्थंकरादि अतिशय ज्ञानी के उपदेश द्वारा धर्मी तिर्यंच आठमें देवलोक से आगे देव नहीं हो सकता, फिर मनुष्य जन्म पाकर तप संजम धार कर मोक्ष जाता है। समुद्र में संसार के सर्व आकार के मच्छ होते हैं, चूड़ी की शिकल तथा खपरेल (नलिया) ये दोय आकृति के मच्छ नहीं होते हैं।

पांच तो थावर तीन विकलेन्द्रिय ये आठों मरकरसंख्यात आयु वाले मनुष्य तिर्यंचों में उत्पन्न हो सकते हैं, तीन विकलेन्द्रिय के जीव मरकर मनुष्य हो साधु का सर्व विरति धर्म पाय सकता है, लेकिन यहां से तद्भव मुक्ति नहीं जा सकता।

तेउ वायु से मरकर जो कभी गर्भज तिर्यंच का जन्म पावे तो उस तिर्यंच जन्म में सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, नरक से निकला जीव अग्नि, जल और वनस्पति में उत्पन्न नहीं होता, अन्य सर्व जीव इन तीनों में उत्पन्न हो सकते हैं।

और अग्नि, जल और वनस्पति के जीव मरकर पांच थावर तीन विकलेन्द्रिय मनुष्य और तिर्यंच इन १० दंडक में उत्पन्न हो सकता है।

और अग्नि तथा वायु के जीव १ मनुष्य को वर्ज के अवशेष नव दंडक में आकर उत्पन्न होते हैं, विकलेन्द्रिय तीनों इन दश दंडकों में

यथार्थ साधु अतिथि कहाते हैं, क्योंकि उनों के तो सर्वदा संयम है, गृहस्थ कितना ही यत्न करेगा तथापि बीस विस्वा दया में से कोई एक धर्मी गृहस्थ पूर्णतया सवा विश्वा दया पाल सकता है।

जगत्में जीव दो प्रकार के हैं, एक स्थावर-१, दूसरा त्रस उसमें थावर जीव के दो भेद, सुक्ष्म और बादर, उसमें सुक्ष्म स्थावरों की हिंसा तो होती नहीं; बादर दीखने वाले पृथव्यादिक ५ स्थावर जीव और स्थूल जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इन दो भेदों में सर्व जीव आ गये, साधु तो इनों की सर्व प्रकार रक्षा करता है, श्रावक से पाँच थावरों की दया पलनी नहीं, शरीर के भरण पोषणादि करने से पृथ्वी, जल' अग्नि, वायु वनस्पती की अवश्य हिंसा होती है, इसलिये दृश्यमान सुक्ष्म जीवों की दस विश्वा दया दूर हो गई शेष दस विश्वा दया में फिरते दुरते जीव रहे, उसके भी दो भेद हैं एक तो संकल्प (विचार) के हनना दूसरा आरंभ से हनना, उसमें धर्मी गृहस्थ को आरंभ हिंसा का त्याग नहीं है, संकल्प हिंसा का त्याग है, आरम्भ हिंसा में तो केवल यत्न करता है, रसोई, पाणी, रसादिक में त्रस जीव आरंभ में मरते ही हैं, तब दस विश्वा में से पांच विश्वा दया और दूर हो गई, अवशेष संकल्प करके त्रस जीव की हिंसा का त्याग ऐसे पांच विश्वा दया रही. इस संकल्प त्रस जीवों की हिंसा के भी दो भेद हैं, एक तो सापराधी, दूसरे निरापराधी, जीव उसमें गृहस्थ धर्मी निरापराधी को नहीं हनना, सापराधी जीव के हनने की यत्ना है, जैसे स्वधन चोर चोरी कर ले जाता है, वह बिना मार कूट छोड़ना नहीं, वा अपनी भार्या से कोई कुकर्म सेवता है, उसको मारना पड़े, यदि धर्मी राजा है वह युद्ध करने जाते हैं, जैसे सम्यक्त्व युक्त द्वादश व्रत धारी विशाला का चेटक राजा महावीर तीर्थंकर का मातुल और राजगृही का महाराजा अशोक चन्द्र अपने नानी से १२ वर्ष संग्राम करा एक कोटि अस्सी लाख मनुष्यों का संहार हुआ, तथा राजा का नौकर धर्मी गृहस्थ राजा की आज्ञा से युद्ध करने जावे, जब शत्रु मारने को शस्त्र चलावे उसको मारना पड़े, सिंहादि जीव

अपने को खाने आवे उसको मारना. पड़े इत्यादि हेतु से संकल्प से भी हिंसा का त्याग धर्मी गृहस्थ से नहीं निभ सकता, तब पांच विश्वा दया में से आधी दया फिर दूर हो गई, तब निरापराधी त्रस जीव जो नजर में आवे उसे न मारूं, इस तरह अढ़ाई विश्वा दया रही. इसके भी दो भेद है, एक सापेक्ष और दूसरी निरपेक्ष इसमें भी सापेक्ष निरापराधी जीव की धर्मी गृहस्थ से दया नहीं पलती, क्योंकि जब घोड़ा, ऊंट, रथ, बैली चढ़ता है, तब इन जानवरों के चाबुकादि का प्रहार देता है. इन जीवों ने कुछ गृहस्थ का अपराध तो नहीं करा है. उसपर ही चढ़ा है, बोझा लदा है. यह नहीं जानता है इस विचारे की चलने की शक्ति है या नहीं तब उनको त्रास, गाली प्रमुख अज्ञान वश देता है, मारता है, तथा अपने शरीर में कुरंनादिक के शरीर में कीड़े द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पड़ते हैं. और उनों के दूर करने में औषधी लगानी पड़ती है, इनों ने गृहस्थ का कुछ अपराध नहीं करा है. बुरा करने के इरादे से नहीं उत्पन्न हुये. वे विचारे अपने कर्मों के आधीन उस योनि में उत्पन्न हुये. उनकी भी हिंसा श्रावक से त्यागी नहीं जाती है इसलिये अढ़ाई विश्वा में से आधी दया और जाती रही [illegible] ये सवा विश्वा इस तरह से दया [illegible] में बिना कारण [illegible] तक पाले. निध्वंस पना नहीं करे. [illegible] जीव न मर जाय।

घर में [illegible] न लेवे [illegible] समय [illegible] कुल वध कर [illegible] धर्म करने [illegible] अन्न [illegible]

असंख्य जीव मरना संभव है, अनंतकाय जमीकंद कांदे. लसनादि ३२ बेंगण आदि बहु बीज फल, तुच्छफलबेरआदि सडाफल, छेद पडाफल बजारू आटा, मिठाई निरविवेक से बनी हुई जीव संयुक्त फल, गूलर आदि के न खावे, खटिया में मांकण आदि जीव गिर जावे तो धूप में नहीं रक्खे, दूसरी बदले, जीव युक्त अन्न धूप में न गेरे, अन्नादि संसर्गित जल मोरी में न गेरे, जीव उत्पन्न होते हैं, मोरी के सड़ने से नाना रोग उत्पन्न हो जाते हैं, पत्तों का साग चैत्र से ८ महीने न खावे, पत्तों के पीछे छोटे २ जीव लगे रहते हैं, उन जीवों की हिंसा उनके खाने पर अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है शीतकाल में १ मास उष्ण काल में बीस दिन, वर्षाऋतु में पंद्रह दिन उपरांत की बनी मिठाई न खावे, चलित रस फूलण कांई आने पर कोई वस्तु न खावे, रोटी, वड़े, मालपुवे, लपसी, सीरा प्रमुख वासी अन्न न खावे, जीव हिंसा होकर रोगोत्पत्ति और बुद्धि मंद हो जाती है, झाडू सणसे या फूल झाड़ से घर साफ करवावे तो जीव न गेरे, स्नान शुद्ध जल से रेती की भूमि में करे तो जल सूख जावे, जीव न उत्पन्न हो मोरी का स्नान भी जीवोत्पत्ति का कारण है, जहां पर्यंत थोड़े पाप का व्यापार मिले वहां तक पापकारी व्यापार में हाथ न गेरे, जवाहरात, सोना, चांदी, सराफी, ब्याज, सूत, कपड़ा, छूटा, अल्पारंभी मणियारी इत्यादि व्यापार अल्प पाप वाले हैं, पापकारी नोकरी भी बने वहां तक त्यागे, किसी का हक तोड़े नहीं, घर में झूठे अन्न का पाणी मूत्रादि दो घड़ी उपरांत न रक्खे, उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं घर में गिलेरी चूआ आदि मर जावे तो शीघ्र उठवा एकांत में डला देवे, जगह को धो साफ कर पीछे खान पान करे, मृतक होनेवाले के घर सुक्ष्म जीव मनुष्य के कलेवर से उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये १२ दिन ऐसे घर का अन्न पान न खावे, निज घर में हो तो साधु जन को तथा जिन मंदिर में अन्न पान न देवे, तथा १२ दिन द्रव्य पूजा नहीं करे, पुत्र जन्म से १० दिन कन्या जन्म से ११ दिन पर्यंत उस घर में सुक्ष्म जीव रहते हैं, इसलिये खान पान इस अवधि में पूर्वोक्त क्रम से त्याग करे, गऊ, अथवा बड़ी का १५ दिन दूध न पीवे, भैंस का १० दिन, यदि खावे तो कफादि रोग

का संभव है, तथा वस्तु उठाते धरते उस जगह को नेत्रों से देख लेवे, प्रमार्जन कर धरे, रोशनी करते फानसादि यत्न से जीव रक्षा करे, जिस पात्र से जल पीवे उसको जल पात्र में फिर न डाले क्योंकि मुख की लाल लगने से जीव उत्पन्न होते हैं, बहुतों की झूंठ खाने पीने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है केइयक रोग गरमी, फिरंग (सुजाक) कोढ़, नेत्र दुखना कंठमाला, क्षय, खेपकादि ऐसे हैं सो रोगी का झूंठन खाने पीने से लग जाते हैं, इसलिये वस्तु को झूंठा नहीं करना, इस प्रकार प्रवर्ते तो सवा विश्वा दया पल सके।

प्रथम लिखा है आयु का बंध पड़ने के जन्म का तीसरे भागादि में गिरता है इसलिये पक्ष के तीसरे दो भाग में तिथि रक्खी है, बीज चौथ फिर पंचमी ज्ञान तिथि, छठ, सप्तमी. फिर अष्टमी चारित्र तिथि, नवमी दशमी फिर इग्यारस ज्ञान तिथि बारस तेरस फिर चतुर्दशी चारित्र तिथि पूनम एकम फिर दूज ज्ञानाराधना तिथी इन दिनों में अर्थात् पूनम अमावस मिला महीने के १२ तिथियों में सर्व पापारंभ त्यागने की आज्ञा और आयु के बंध पड़ने के कारण धर्म करने की [illegible] आज्ञा दी है. धर्म करने [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

या सीआ हुआ न हो, वह बिछा शत्रु और मित्र दोनों पर समभाव धारकर उस आसन पर बैठ मन से, वचन से, काया से, पाप व्यापार सर्व करना कराना, दो घड़ी मात्र त्याग करे, इसको सम आयक कहते हैं, समता आय कहिये ज्ञानादि गुण का लाभ जिसमें वह दोनों पद मिलकर सामायक कहलाती है, ये आत्मा का निज गुण है, ४८ मिन्ट पूर्ण कर पीछे ऐसा विचार करे मेरे को संसार से निस्तारक कौन देव है, धर्म उपदेश दाता निस्तारक कौन मेरे गुरु है कौन मेरा धर्म संसार से निस्तारक है, मेरा कुल कर्म क्या है, क्या मेरा व्यापार है, ऐसा विचारे, पीछे रात्रि में करे पापों को विचार के उसकी गर्हा निंदा प्रति क्रमण करे, फिर भगवद् स्तुति रूप स्तवन स्वाध्याय करे, वा माला गुणे, विशेष शक्ति हो तो १४ नियम, भोग उपभोग वस्तु का विचार करे, प्रत्याख्यान (त्याग) योग्य वस्तु का त्याग करे, वह पोसाख खोल अन्य वस्त्र पहन कर चाक्स सुपारी बिदाम आदि उत्तम वस्तु लेकर यत्न से जिन मंदिर जावे, मूल द्वार में प्रवेश कर निस्स ही कहे, गृह, व्यापार त्याग के लिये जिन प्रतिमा को देख कर, प्रणाम करे, स्तुति करे, ३ प्रदक्षिणा दे तदनंतर दूसरी निस्सही जिन मंदिर की मरम्मत कराने रूप जो अवशेष उसके त्यागने के अर्थ कहे, फेर जीव जंतु रहित स्थान में छाना हुआ निर्मल जल से अंग प्रक्षालन करे, पवित्र वस्त्र पूजा योग्य धारण कर, महानिशीथ सूत्र के लेखा नुसार जल १, चंदन २, पुष्प ३, धूप ४, दीप ५, अक्षत ६, नैवेद्य ७, फलादि ८ उत्तम द्रव्य विधि युक्त मन एकाग्र कर वस्त्र का मुखकोश मुख के बांध द्रव्य पूजा करे उस समय ऐसी भावना करे, प्रभु आप के जन्म समय कोटा न कोटि ६४ इंद्रादिक देव देवांगना जो सम्यक्त्व धर थे, उन्होंने भक्ति युक्त मुक्ति प्राप्ति के अर्थ जिस प्रकार द्रव्य भाव से आत्मा का उद्धार करा तैसे हे प्रभु मैं अनुसरता हूं मुकुट कुंडल, हार, बाजूबंद, कड़े, तिलक आरोपण करे, राज्य तिलक प्राप्त भावना करना, पीछे पुष्प माला आरोपण करे, वस्त्र चढ़ाते दीक्षा [illegible] का स्वरूप भावना करे, जैसे इंद्र ने देव दुष्य वस्त्र राज्यादिक [illegible] आप के त्यागे पीछे आप को आरोपण करा, तैसे मैं अनुसरता [illegible]

चमर, भामंडल, सिंहासनादि प्रातिहार्य सहाते, केवल ज्ञान कल्याणक समवशरण प्राप्त भावना करे, चार घन घाती कर्म जब अपने ध्यान द्वारा क्षय कर दिये तब लोकालोक दर्शी केवल ज्ञान, केवल दर्शन, आत्म गुण प्रगटा तब अष्ट प्राति हार्य योग की अष्ट सिद्धि बाह्य और अभ्यंतर प्रगट हुई, यथा इंद्रादिक सम्यक्त्वधर देव देवांगनाओंने गीत, नृत्य, वादित्र निनाद पूर्वक स्तुति स्तवना कर सम्यक्त्व अपना निर्मल करा तदनु मैं अनुसरता हूं।

जीताभिगमइन्द्र राय प्रसेणी, ज्ञाता सूत्र में यथा विधि वंदन, नमन, स्तुति १७ प्रकार पूजा की विधि लिखी है, तैसी स्वशक्ति के अनुसार करे, द्रव्य स्तव त्याग रूप, तीसरी निस्सही कह केवल भावस्तव में चैत्यवंदन, नमोत्थुणं यावत् सर्व भावस्तव करे।

वस्त्र बदल उपाश्रय गुरु समीप आकर ३ बेर पचांग नमस्कार गुरु पृच्छा करे, गुरु मुख से यथा शक्ति तप का प्रत्याख्यान कर धर्म कथा श्रवण करे, गृहस्थ धर्म के २१ गुण धारना करे, फिर गुरु को आहार पानी वस्त्रादि वस्तु ग्रहण करने निमंत्रण कर घर आवे, यथा शक्ति याचक को दान देवे, दीन दुखी पर विशेषतया अनुकंपादान करे, अपने स्वायत्त गाय आदि पशु गण के चारे पानी की सार संभाल रोगादि निवृत्ती साधन कर अपने नोकर चाकरों की सर्व प्रकार सार संभाल कर अतिथि तथा कुल गुरु आदि को भोजन आदि देकर रसना का लंपट न होकर कुलाचार मुजब ऋतु पथ्य, प्रकृति पथ्य, देश पथ्य शुद्ध आहार करे, दो भाग अन्नादिक १ भाग जल नष्ट ने पीवे, एक भाग पेट खाली वायु संचार के अर्थ रक्खे सदा धर्मोन्नति की वान्छना करे, घर के अनुसार दानशाला करे, बड़े धनवंत की इर्षा से सदनता न करे, विद्यादान में सहायता करे, रोगादि निवारक उपचार से लोग का उपकार करे. धर्मी नुपात्र की विशेष भक्ती सहायता करे, सर्व से प्रिय बोले, राजा की आज्ञा शिरो धार्य करे, जिनकी समझदार सौ मनुष्य प्रशंसा करे, उनको गुणवान समझ के भक्ति सत्कार तथा योग्य को कुल के बड़ेरों का विनय बहु मानना करना रहे, माता

पिता की भक्ति विशेषपना जानके आज्ञा भंग करे नहीं, घृत की तरह जल को काम में लेवे जल के नाचार आदि में घुस कर स्नान करने से नारू आदि रोग तथा कदापि प्राण भी चला जाना संभव है, दास दासी करना नहीं, अनर्थ दंड का पाप लगता है, रुजगार देकर नौकर रखना, गुमाश्ते प्रतीतिवंत रखना, गृहकार्य परवस करना नहीं, नित्र संभाल करना, पांच पोशाक रखनी, मलीन वस्त्र, मलीन मकान, मलीन मन तन रखना, जीवों की हिंसा और रोगादि होने का कारण है, संथार डाल ऊपर रेती डाल देनी अन्यथा मक्खी आदि मरने का पाप लगता है, १५ कर्मादान खेती वन कटाणा कोयले बणा कर वेचना, गाड़ी, घोड़े, ऊंट देकर किराया कमाणा, मज्जी, साबुन, लोह नील, महुए, धावड़ी पुष्प इत्यादि व्यापार महा पापकारी त्यागने योग्य है, ज्यादह तोल माप से लेना नहीं, कम तोल देना नहीं, सरकारी महसूल चुराणा नहीं, धरोहर किसी की दबानी नहीं, पंच प्रतीति के साथ शुद्ध व्यापार करना, लोभ, प्रमाद और विश्वास करने से धोखा न हो ऐसा करना, झूठी गवाह देनी नहीं, जूआ, किमियागिरी यक्षणी का मंत्र साधन, वेश्या से प्रीति वशीकरण इतने कामों की वृद्धि देव का कोप [illegible] तब उत्पन्न होती है, विश्वास देकर ठगना नहीं बिना कारण झूठी सौगन खाणी नहीं, एक वेर किसी ने उपकार करा है तो जिंदगी भूलना नहीं, धन की आमद में धर्म का हिस्सा निकाल कर धर्म में लगाना, सद्ज्ञान लिखवाना, सत्संगत करणी, किसी का कष्ट चमत्कार देख वीतराग कथित यथार्थ धर्म त्यागना नहीं, किसी का मर्म उघाड़ने रूप वचन कहना नहीं, जिस कारणों द्वारा बिना कारण पाप लगे उस उपकार को अनर्थ दंड पाप समझना, जैसे हल, ऊखल, मूसल, शस्त्र, अग्नि आदि तय्यार रख कर अन्य को धर्म समझ कर देना, इनों से जीव हिंसा होकर अनर्थ दंड पाप लगता है पराया विवाह जोड़ना अनर्थ दंड है, निज वा निज कुटुम्ब के अर्थ करा पाप अर्थ दंड कहाता है, राज कथा, देश कथा, भोजन कथा, स्त्री कथा ये चार विकथा धर्मी जन नहीं करते, २२ अभक्ष का खाना वर्ज, इस सब में रोग उत्पत्ति और जीव हिंसा होकर पाप लगता है मद्य मांस तो औषधि निमित्त भी

अनंत धर्म (स्वभाव) है उनों को भिन्न जब संक्षेप से करें, तब तो दोय ही होते हैं, सामान्य रूप १ और विशेषरूप २, बहुत जगे व्यापने वाला सामान्य रूप १ अल्प व्यापक विशेष रूप २ जैसे वस्तुपना, प्रमेयपणेकूं आदि लेकर सामान्य रूप धर्म, जीव १ अजीव २, दोनों द्रव्य में मिलता है, इसको सामान्यरूप कहते हैं, परन्तु जीव में चेतन धर्म विशेष है, इस धर्म अजीव में नहीं, नैगमनय पदार्थ को कहते समय सामान्य और विशेष धर्म का दोनों काल में समान करता है, इस वास्ते सामान्य और विशेष दोनों से नैगमनय की पहिचान है, तद् भिन्नार्थ दृष्टान्त जैसे किसी ने किसी को पूछा, तुम कहां रहते हो वह बोला लोक में, उसमें भी तिरछे लोक में, उसमें भी मनुष्य लोक में उसमें भी जंबुद्वीप में, उसमें भी भरत क्षेत्र में, उसमें भी दक्षणार्द्ध भरत में, उसमें भी मध्य खंड में उसमें भी अमुक देश में, उसमें भी अमुक नगर में, अमुक पाटक में, अमुक गृह में, अमुक शाला में, अमुक विभाग में, आखर निज शरीर में वसता हूं, इस स्थान क्षेत्र पदार्थ को आश्रय कर लोक में वसता हूं, इस तो सामान्य पने कहा, अंत में निज शरीर में, इस वास्ते विशेष पणे कही, इसके मध्यवर्त्ती जितने विकल्प हैं, वह सामान्य विशेषरूप सभी विकल्प नैगमनय अपणे निवास को नास्तिक पणे प्रति २ कहा, अब तीनों काल में भी कोई पदार्थ की प्ररूपना में नैगमनय को समस्त पणे दिखलाते हैं जैसे कोई पुरुष वन में काष्ट खंड लेकर आ रहा है तब किसी ने पूछा क्या लाया है, वह ने कहा प्रस्थ (सेर का माप) लाया हूं इस स्थान प्रस्थ अनागत काल भावी को अपने मन परिणाम से काष्ट खंड का प्रस्थ पापनी स्थापन करी, जैसे अमुक ने गृह से प्रस्थान करा, पीछे किसी ने घर वालों से पूछा अमुक कहां गया तो कहते हैं कलकत्ते, वह दरवाजे तक तो पहुंचा ही नहीं परन्तु नैगमनय आश्री ये वाक्य आगामी काल भावीद्योतक है, फिर जैसे लोकोक्ति है आज कृष्ण जन्म है, जन्म अष्टमी है, ये भूत कालीन नैगमनय वाक्य है. ये नैगमनयोंके लक्षण हैं, इस नैगमनय को आलंबन कर नैयायिक और वैशेषिक ये दोय मत प्रवर्त्तन हुये।

अथ २ संग्रहनय का स्वरूप लिखते हैं।

संग्रह करने में आवे सर्व अर्थ उसका नाम संग्रहनय इस कारण इसमें सामान्य ही तत्व है, जैसे चेतनता करके सब ही जीव एक स्वरूप हैं, तैसे सर्व पदार्थों में सत्ता एकही है. इस वास्ते सत्ता ही तत्व है, सत्ता का अभाव मानने से गधे के सींग की तरह कोई वस्तु ही नहीं, अवस्तु का प्रसंग हो जावे, इस हेतु जो सत् वह ब्रह्म इस संग्रह नय को आलंबन कर अद्वैत मत उत्पन्न भया, २॥ इति संग्रहनय उपलक्षणं ॥

अर्थ का लक्षण अर्थ की क्रिया करणी, और अर्थ क्रिया करे बगैर अवस्तुत्वपणा हो जाता है. गधे के सींग की तरह और अर्थ क्रिया करना तो विशेषपने के आश्रय ही होता है, सामान्य के आश्रित नहीं हो सकता जैसे गऊ दूहते हैं. परन्तु गऊत्व तो नहीं दूहते हैं, इस हेतु विशेष ही तत्व है, इस व्यवहार प्रवृत्ति में सर्व जगत्प्रवर्त्तता है, इस व्यवहार नय को आलम्बन कर वेद मत का भेद मीमांसक मत उत्पन्न भया, जैनागम में भी दो प्रकार के जीव कहे हैं. मुक्त के और संसार के. वह जीव भी दो प्रकार के त्रस (चलने फिरने) और स्थावर (स्थिर, पृथ्वी आदिक पांच इस प्रकार जीवों की प्रज्ञापना व्यवहार नय से है।

इति व्यवहारनय लक्षणं ॥

अथ ऋजु सूत्र नय ४।

अतीत अनागत वस्तु में अवस्तुपना है और अनागत को भी वस्तु के अभाव से अवस्तुपणा है, गधे के सींग की तरह बाकी रहा वर्तमान काल उसमें ही सत्तापना है. और वह वर्तमान काल क्षण स्वरूप ही है. इस हेतु जो सत वह क्षणिक है. इस ऋजु नय सूत्र का आलम्बन कर बौद्ध मत उत्पन्न भया; इस तरह जैनागम में भी जिस उपयोग करके वर्तमान जीव है उस ही [illegible] को उस [illegible] है. जैसे उत्तराध्ययन सूत्र के विनय अध्ययन में [illegible] चांडाल [illegible] साधु चांडालकर्म [illegible] वर्तमान साधु को चांडाल कहा है, [illegible]

यतः काल सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः, कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालोहि दुरति क्रमः १।

अर्थः-काल भूतों को उत्पन्न करता है, काल ही प्रजा का संहार करता है, काल से ही सूते जागते हैं, काल का उल्लंघन दुःसाध्य है १ काल से वृक्ष फल देते हैं, वर्षाकाल में मेघ वृष्टि होती है, ग्रीष्म काल में उष्णता, शीतकाल में शीत गिरता है, ऐसे सब कालायत्त है, ये १ भेद २ इनों में दूसरा ईश्वरवादी कहता है, हे जीव स्वतो नित्यः परंतु ईश्वर से;

यतः ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वाश्वभ्रमेववा, अन्यो जंतु रनीशोय मात्मनः सुख दुःखयोः १।

अर्थः-ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग या नर्क को जीव जाता है और तो जीव असमर्थ है अपने सुख और दुख भोगने को ? और ईश्वर का स्वरूप ऐसा कहते हे।

यतः ज्ञानम प्रतिघंगस्य वैराग्यं च जगत्पते, ऐश्वर्यं चापि धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयं २।

जिस जगत्पति के अविनाशीपणा, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य धर्म ये चार वस्तु साथ ही स्वभाव सिद्ध है २ वह ईश्वर ४ स्वरूप वाला अपनी इच्छा से सब करता है २ ईश्वर की आ[illegible] से प्राणि सुखी दुःखी होता है, ये द्वितीय भेद, तीसरा क्रियावादी का पुरुषाकारवादी भेद है, वह कहता है हे जीव स्वतो नित्य परन्तु पर पुरुषाकार से निश्चय ये सब जीव लोक पुरुषाकार रूप ही है [illegible] इदं जगत इहा ईश्वर का कुछ कार्य नहीं ये तीसरा भेद ३ चोथा क्रियावादी का भेद नियति (भवितव्यता) वादी कहता है हे जीव स्वतो नित्यः परंतु नियति से, जिसकी जिस आकार से भावी है उसका नाम नियती है जैसे स्त्री पुरुष के संयोग से मनुष्याकार [illegible] ही घटना होती है, परन्तु गो आदि रूप की नहीं ऐसे नियति नाम पदार्थान्तर जगत है उसमें दो सब जगत [illegible] [illegible] है ये चोथा भेद [illegible] क्रिया[illegible] [illegible] [illegible]

वादी कहता है, है जीव स्वतो नित्यः स्वभाव से, स्वभाव नाम वस्तु का आप से ही परिणमन् जब बेर के वृक्ष में स्वभाव सेती एक कांटा तो सीधा, दूसरा टेढ़ा, ऐसे सर्व भावों की स्थिति स्वभाव से ही ही है ये पांचवां भेद ५ ऐसे ये पांचों ही अपने २ अभिप्रायों करके नित्यत्व करके जीव के ५ भेद तैसे अनित्यत्व करके भी ५ भेद संभावन करते हैं। वह पर्याय की अपेक्षा से जीव वस्तु अनित्य मानते हैं, ऐसे १० भये इस जैसे स्वतः (आप से) है तैसे पर द्रव्य से भी केइयक क्रियावादी मानते हैं, उनों के मत में वस्तु का अस्तित्वपणा पर अपेक्षा ही निश्चित है जैसे घट बिना और पदार्थ के अपेक्षा बिना घट सिद्ध नहीं होता ऐसे ही सर्व भावों का पर अपेक्षा से अस्तित्वपना सिद्ध होता है तब जैसे स्वतः से जीव के १० भेद हैं तैसे पर वस्तु से भी जीव के १० भेद होते हैं तब जीव के २० भेद हुवे ऐसे अजीव पदार्थ के अस्तित्वपने २० भेद, ऐसे पुण्य के अस्तित्वपने २० भेद, ऐसे पाप के अस्तित्वपणे २० भेद. ऐसे आश्रव के अस्तित्वपणे २० भेद ऐसे संवर के अस्तित्वपणे २० भेद ऐसे निर्जरा के अस्तित्वपणे २० भेद ऐसे बंध के अस्तित्वपणे २० भेद ऐसे मोक्ष के अस्तित्वपणे २० भेद, बीस को नव तत्वों से गुणा करने से १८० भेद क्रियावादी आस्तिक मत के होते हैं।

अथ अक्रिया वादी नास्तिक मत के ८४ भेद दर्शाते हैं।

जीव १ अजीव २ आश्रव ३ संवर ४ निर्जरा ५ बंध ६ मोक्ष ७ ये सात पदार्थ नास्तित्वपणे अंगीकार करते हैं. और कहते हैं पुण्य पाप का विचार ही नहीं करना, है इनहीं. इन्हों के ८४ भेद इस तरह है नहीं जीव स्वत काल से स्वरूप करके तीनों ही काल में क्योंके अनित्य बुद्धि (चेतन विनाशी पणे से इस हेतु जीव नास्ति लक्षण स्वभाव से नास्ति जीव किसी भी काल से, ऐसा ये एक भेद १. ऐसे नास्ति जीव स्वतः ईश्वर से इस स्वरूप कथन से जीव का नास्तित्व पना मानने से ईश्वर का भी नास्तित्वपणा सिद्ध भया. ये दूसरा भेद २ ऐसे नास्ति जीव स्वतो पुरुषाकार से ये तीसरा भेद ३ नास्ति जीव स्वतो नियती से चौथा भेद ४

नास्ति स्वतो जीव स्वभाव से ४ मां भेद तैसे नास्ति जीव स्वतः यदृच्छा से (अविचारित पदार्थ की संभूति) नहीं इहां कार्य कारण भाव कारण बिना भी कार्य होता दिखता है जैसे मरी मेंडक की सूखी खाल से मेंडक की उत्पत्ति होती है, तैसे गोबर में भी मेंडक की उत्पत्ति होती है इस तरह की यदृच्छा है इस हेतु नहीं है स्वतो जीव ६ ऐसे ६ भेद जैसे स्वतो नहीं हैं, तैसे पर जो अजीवादि पदार्थ की अपेक्षा भी जीव नहीं है इन से भी ६ भेद हुये मिलाने से १२ हुये ऐसे पूर्वोक्त ७ पदार्थों में नास्तित्वपणे के भेद गुण करने से १२ को सातगुण करने से अक्रियावादी नास्तिक मत के ८४ भेद होते हैं।

॥ इति अक्रियावादी ॥

इस मत के मुख्य बौद्ध दूसरा बृहस्पति है।

अथ अज्ञान वादी के ६७ भेद दर्शाते हैं।

अज्ञानवादी कहते नवतत्व जो जीव अजीवादिक है, उनों के ज्ञानार्थ ७ भंग है फेर सत्वेया पदार्थोत्पत्ति १ असतोया अर्थोत्पत्ति २ सत् असत् मेया अर्थोत्पत्ति ३ अवाच्यार्थ की वा उत्पत्ति ४ ऐसे ६७ भेद ज्ञान से होते हैं परन्तु इनों का जानना वृथा है इस हेतु अज्ञान ही श्रेय है वह ६७ ऐसे है।

सर्व वस्तुओं का समस्त पणे ज्ञान ७ भंग करके होता है सत्व करके १ असत्व करके २ सत्व असत्व दोनों करके ३ अवाच्यपणे करके ४ सत् अवाच्यपणे करके ५ असत् अवाच्यपणे करके ६ सत् और असत् दोनों अवाच्य करके ७ इन भंगों से जीव पदार्थ प्रगट होता है, यथा जीव चैतन्यरूप करके है इस हेतु जीव में सत्वपना है १ जीव जड़त्व रूप करके नहीं है इस हेतु जीव में असत्वपणा है २ जीव में जब सत्वपना स्थापन कर पीछे असत्वपना स्थापन करै तब जीव में सत्वासत्वपणा है ३ सत्व असत्व दोनों ही विवक्षा जीव में एक समय में करी चाहै तो एक काल में नहीं कर सकते जिस समय सत्व की विवक्षा करै उस काल

असत्त्व की विवक्षा नहीं कर सकते, और असत्त्व की विवक्षा करें उस काल में सत्त्व की विवक्षा जीव में नहीं कर सकते, इस हेतु जीव में अवाच्यपना है ४ जब पहिले जीव में सत्त्वपना स्थापन करके पीछे अवाच्यत्व की विवक्षा करी जावे तब जीव में सत्त्व अवाच्यपना है ५ जब पहले असत्त्व को निश्चय करके पीछे अवाच्यत्व की विवक्षा करी जावे तब जीव में असत्त्व अवाच्यपना है ६ जब पहले सत्त्व को निश्चय करे पीछे उस ही स्थान असत्त्व स्थापन कर पीछे उसही स्थान अवाच्यपने की विवक्षा करी जावे तब जीव में सत्त्व असत्त्व अवाच्यपना है ७।

अथ इन ७ भंग को स्पष्टतया दर्शाते हैं।

अस्तित्व १ नास्तित्व २ अस्तिनास्तित्व ३ अवक्तव्य ४ अस्ति अवक्तव्य ५ नास्ति अवक्तव्य ६ अस्ति नास्ति अवक्तव्य ७।

अपने द्रव्य गुण पर्याय की अपेक्षा जीव पदार्थ है १ और जीव द्रव्य में जीव से भिन्न दूसरे पदार्थ धर्मास्ति १ अधर्मास्ति २ आकाशास्ति ३ पुद्गलास्ति ४ काल ५ पर अजीव सम्बन्धी द्रव्य १ क्षेत्र २ काल ३ भाव ४ इनों का अभाव है क्योंके स्व द्रव्य गुण पर्याय परणत होने से पर द्रव्य, पर गुण, पर पर्यायों का जीव में नास्तित्वपणा है क्योंके तीन काल में भी जीव द्रव्य अजीव द्रव्य नहीं हो सकता इस हेतु पर द्रव्यापेक्ष या नास्तित्वपणा है २ और जीव में स्व द्रव्य गुण पर्याय सत्ता की अपेक्षा से अस्तित्वपना है और अजीव द्रव्य गुण पर्याय सत्ता से नास्तित्वपणा इस हेतु से जीव में अस्ति नास्ति एकही समय में दोनों भंग हैं ३।

(प्रश्न) हे जैन! जब जीव द्रव्य में एक समय अस्ति नास्ति रूप दोनों भंग विद्यमान हैं तो तुम जीव है और नहीं है ऐसा क्यों नहीं कह देवे। (उत्तर) हे भव्य! जीव नहीं ऐसा कहे तो अस्तित्व पने की नाश व्यापत्ति हो परस्पर विरुद्ध स्वभाव होने से अस्तित्वपना कहते, नास्तित्व पना कहना बन नहीं आता जो एकांतपणे एक समय में अस्तित्व (जीव है) तब नहीं है जीव ऐसा कहने मृषावाद का दोष लगे, क्योंके

उस समय अस्तित्व का सद्भाव है, यदि जो एकांतपने नास्तित्व है अस्तित्व नहीं कहने से मृषावाद का दोष लगे, क्योंके है जीव ऐसा अस्तित्वपना उचारते एक अक्षर के उच्चारने में असंख्यात समय बीत जाता है, तो फेर कैसे एक समय में अस्ति जीव, नास्ति जीव ऐसे दो विकल्प उच्चार सकते, इस वास्ते ये जीव अवाच्य (अवक्तव्य) ऐसा चौथा भंग हुआ अर्थात् अकथनीय है नहीं कहने योग्य है।

(प्रश्न) चौथे भंग में अवक्तव्य जीव ऐसा आप ने कहा तब या तो जीव अस्तित्व है या नास्तित्व जीव है, ऐसा स्वरूप जीव का वर्ते है, (उत्तर) हे भव्य नास्ति जीव ऐसा भी अवक्तव्य है तब सत् अवक्तव्य पांचमां भंग जीव में ठहरा, ५ और नहीं जीव अवक्तव्य तब असत् अवक्तव्य भी छठा भंग जीव में हुआ, ६।

(प्रश्न) हे जैन जो एक समय में जीव एकांतपने कर है ऐसा अस्तित्व पना और पर द्रव्य की अपेक्षा नहीं जीव ऐसा नास्तित्वपना अवक्तव्य जीव है, तो फेर जीव द्रव्य का उच्चारन कैसे करना, (उत्तर) हे भव्य समकाल में अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य जीव ऐसा उच्चारन करना ऐसा सत् जीव में सातमां भंग हुआ ७।

ऐसा कथन सर्वज्ञ स्याद्वादीका है, ये त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञानी के वाक्य को अज्ञानवादी कहते हैं, इस ज्ञान से क्या प्रयोजन है, इन सात भंग को जीव से दिखाया तैसे अजीव पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध मोक्ष ऐसे नवो ही तत्वों में ये सात २ भंग ऊपर लिखे मुजब गुण करने से ६३ होते हैं, ४ भंग और है, सतोत्पा पदार्थ की उत्पत्ति १ असतोत्पा अर्थ की उत्पत्ति २ सत् असत् वा (विकल्प करके) अर्थ की उत्पत्ति ३ अवाच्य अर्थ की विकल्प करके उत्पत्ति ४ ऐसे अर्थोत्पत्ति कूं आश्रय कर ४ भंग जो सर्वज्ञ ज्ञानी कल्पन करते हैं, अज्ञानवादी इन ६७ को त्याग अज्ञान पने कूं श्रेष्ठ मानता है।

॥ इति अज्ञानवादी मत ॥

करीब हुआ, इतिहास तिमिर नामक ग्रंथ के तीसरे भाग में लिखा है उनके लगभग ही नये शांख्य रामानुज स्वामी तदन्तर माधवाचारी तदन्तर नीमार्क स्वामी तदन्तर विष्णु स्वामी इनका भेदांतर विक्रम सम्वत पनेर से पैंतीस में वल्लभाचारी इन पांचों ने सांच मूल धर्म और विनयवादी पणे भक्ति मार्ग प्रगट करा, रामानुज में से रामानन्द स्वामी हुये प्रायः जितने भगवे कपड़े श्वेत कपड़े, गुलाबी रंग के कपड़े भक्ति मार्गी हैं ये सब स्वामी रामानन्द से मिलते हैं, कबीर भी रामानंद का चेला बना था, इस कबीर के समय ही कनफटा मत गोरखनाथ ने प्रगट करा, पंजाब में गुरु नानक ने उदासी मत प्रगट करा, इधर दादूजी रुण्ड, मुण्ड, गुदडिये, निरंजनी, रामस्नेही चार स्थान के हरि रामदासी तदन्तर निश्चलदास वेदांती उत्पन्न हुआ, निर्मले वगैरह लिखने का तात्पर्य यह है कि ये आर्य समाजी, ब्रह्मसमाजी राधास्वामी आदि हमारे देखने जो जो मत प्रगटे हैं वे सब उन पूर्वोक्त ३६३ ही में समझना, परन्तु षट् दर्शन नाम से प्रसिद्ध जो हैं उनों का स्वरूप ही इहां प्रगट करेंगे, नास्तिक मत दर्शनों में नहीं, तो भी कुछ स्वरूप दर्शावेंगे, इस काल में अन्य देशों आर्य देश बिना सबसे अधिक मनुष्य संख्या में तीसरे भाग के बौद्ध मत मानने वाले हैं, इस हेतु प्रथम इस मत का संक्षेप स्वरूप दर्शाते हैं।

अथ बौद्ध दर्शन स्वरूप।

देव इनों का योग मुद्राधारी सतरूप मूर्त्ति छाती पर तीन रेखा हाथ एक उपदेश देता हुआ इनों के तीर्थ प्रवर्तक ७ हुये, ऐसा बौद्ध मानते हैं, विपश्यी १, सिखी २, विश्वभूः ३, ककुच्छंद ४, कांचन ५, काश्यप ६, शाक्य सिंह ७ शौद्धोदन, प्रमुख इनों के प्रवचन कर्त्ता हुये, इनों के साधु भिक्षु (पुंगर) नाम से प्रसिद्ध हैं कषायले वस्त्र शिर मुंडित हाथ में कमंडल जल का रखते हैं बुद्धकापाटधारी लांबा तिब्बत में विद्यमान दलाई नाम का है, इन भिक्षुओं के पास में सांसारिक भिक्षा जो गृहस्थ डाल देते हैं वह सब वे भिक्षा प्राय

करते हैं, तारा को बुद्ध की आत्मा अवतार मानते हैं. धर्म. बुद्ध. संघ रूप ३ रत्न मानते हैं. ४ तत्व मानते हैं. दुःख १. समुदाय २. मार्ग ३. निरोध ४. भव में भवांतर में. भिन्न २ पांच स्कन्ध दुःख हैं. विज्ञान स्कन्ध १. वेदना स्कन्ध २. संज्ञा स्कन्ध ३. संस्कार स्कन्ध ४ रूप स्कन्ध ५ सचेतन. अचेतन वस्तुओं के परमाणुओं का संघात उसको स्कन्ध कहते हैं. रूप रसादिक का स्कन्ध उसका नाम विज्ञान स्कन्ध १. सुख दुःख के भोगने का स्कन्ध वह वेदना स्कन्ध २. नाम जाति आदिक जोड़ने का स्कन्ध, वह संज्ञा स्कन्ध ३ पुण्य पाप का उदय होता है वह संस्कार उसका स्कन्ध वह संस्कार स्कन्ध ४ पृथ्वी जलादिक का रूप उसका स्कन्ध वह रूप स्कन्ध ५ ये सब पांचों स्कन्ध दुःख संसार का कारण होने से ये पहिला दुःख तत्व है. १, ये अपना ये पराया. ऐसे सम्बन्ध से जहां राग द्वेषादि गण अच्छे प्रकार उदय में आवे वह समुदय नाम दूसरा तत्व २ सब पदार्थों में क्षणिकत्व (विनाश) पना वह मार्ग नाम तीसरा तत्व ३ चित्त का समस्त पने क्लेश अवस्था उसका जो रोकना वह मोक्ष उसका नाम निरोध चौथा तत्व ४ इन ४ तत्वों से भिन्न आत्मा (जीव) ऐसे नाम का कोई पदार्थ नहीं है तब किसी आस्तिक ने बौद्ध से पूछा है बौद्ध नित्य आत्मा नहीं है तो कैसे पहले आप ने अनुभूत अर्थ का स्मरण होता है, तब बौद्ध ने कहा इसमें प्रथम बुद्धि नहीं क्षण के उपजने से कार्य कारण भाव करके आगे से आगे बुद्धि क्षण के विषे पिछली वासना फलती है जिससे पिछले अनुभूत अर्थ (बातों) याद रहता है. जैसे दीपक की कलिका सन्तानपने से एक होकर ही प्रकाश करती है. पहिले की कलिका में भी दीखता है. ऐसे पहिले का विज्ञान भी अगले विज्ञान में प्रकाश करता है. तब पुनः आस्तिक ने पूछा जो पदार्थ में क्षणिक (विनाश) है. तो फिर उसकी तरह यह है. ऐसी प्रति अभिज्ञा कैसे उत्पन्न होती है. तब बुद्ध कहता है, ऐसा नहीं ये तुम्हारी बुद्धि का भ्रम है. देखो काटे हुये फेर हो जाते हैं, नख. केश वगैरह नव जानते हैं वह ही यह है ऐसी बुद्धि की नर यह भी है. बुद्ध दो प्रमाण

मानते हैं, प्रत्यक्ष १, और अनुमान २, निर्विकल्प (विना विचारा) ही प्रत्यक्ष है, अर्थ से उत्पन्न होने से और जो सविकल्पक (विचार संयुक्त है) सामान्य विषय होने से वह प्रत्यक्ष नहीं इस बौद्धमत में १२ आयतनादिक विचार बहुत है, वह षड् दर्शन संमुच्चयादि ग्रंथों में जानना ग्रंथ वृद्धि हो जाने से नहीं लिखा, ये बौद्धमत का उपलक्षण कुछ दिखाया, बहुत से अनभिज्ञ अन्य दर्शनी जैन धर्म को बौद्ध या बौद्ध की शाखा या जैन की शाखा बौद्ध इत्यादि कहा करते हैं, वो समझ लेंगे बौद्ध का कोई तत्व सम्बन्ध जैन धर्म से नहीं, जैसे मुसलमानों को वेदधर्मी कहना तद्वत् जैन को बौद्ध कहना है।

अथ नैयायिक मत किंचित् स्वरूप।

इनों का शिव देव है वोही सृष्टि उत्पत्ति स्थिति संहार का कर्त्ता है, दंडी इनों का गुरु है, इनों में कोई जटाधारी, यज्ञोपवीत धारी, जल कमंडल धारी शौच धारी केइयक अंग पर राख भी लगाते हैं, भरड़ खाखी भी इस मत के भेदांतरी है लोक में परिव्राजक भी कहाते हैं, नैयायिक १६ तत्व मानते हैं, प्रमाण १, प्रमेय २, संशय ३, प्रयोजन ४ दृष्टांत ५, सिद्धांत ६, अवयव ७, तर्क ८, निर्णय ९, जल्प १०, वाद ११, वितंडा १२ हेत्वाभास १३, छल १४, जाति १५, निग्रह स्थान १६, प्रमाण ४ प्रत्यक्ष १ अनुमान २ उपमान ३ शब्द ४ इंद्रिय और पदार्थ के सम्बन्ध से उत्पन्न ज्ञान वह प्रत्यक्ष प्र० १ चिन्हों से चिन्हवन्त का ज्ञान जैसे धूम्र के देखने से अग्नि का ज्ञान होना, वह अनुमान प्रमाण २ किसी भी पदार्थ की सदृशता करके किसी भी वस्तु का ज्ञान होना वह उपमान प्रमाण ३ आप्त (राग द्वेष वर्जित) प्रमाणिक पुरुष के वचन से जो ज्ञान होना वह शब्द प्रमाण ४, १ प्रमाण विषय जो करा जावे उसका नाम प्रमेय वह १२ है आत्मा १, शरीर २, इंद्रिय ३, अर्थ ४, बुद्धि ५, मनः ६, प्रवृत्ति ७, दोष ८, प्रेत्य भाव ९, फल १०, दुःख ११, अपवर्ग १२ इनों का विचार गौतम कृत न्याय सूत्र में जानना २ ये क्या है ऐसा जो विचारे उसका नाम संशय है ३

कारण द्रव्य है, अथवा गुणों के आश्रय द्रव्य है, ऐसा द्रव्य का लक्षण माना है और पृथ्वी द्रव्य के अंतर्भूत ही वनस्पती को मानते हैं. क्योंकि गंधवती पृथ्वी ऐसा लक्षण पृथ्वी का होने से इन पूर्वोक्त नव द्रव्य के भेद लक्षण उनों के ग्रंथ में देख लेना, दुसरा पदार्थ गुण वह २४ कहते हैं, रूप १, रस २, गंध ३, स्पर्श ४, संख्या ५, परिमान ६, पृथक्त्व (भिन्न २) ७, संयोग ८, विभाग ९, ये इसकी अवस्था काल से धो पर है, ऐसा परत्व है १०, उससे विपरीत अपरत्व ११, गुरुत्व (भारीपना) १२, द्रवत्व (पतलापना) १३, स्नेह (चिकना) १४, शब्द १५ बुद्धि १६, सुख १७, दुःख १८, इच्छा १९, द्वेष २०, प्रयत्न २१, धर्म २२ अधर्म २३ संस्कार २४ इनों में भी द्रव्य २ प्रति केइयक सामान्य गुण है, केइयक विशेष गुण है विस्तार इनों का उनके ग्रंथ से जान लेना, कर्म ५ उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना) १ अवक्षेपण (नीचे डालना) २ आकुंचन (समेटना) ३ प्रसारण (फैलाना) ४ गमन (चलना) ५ भ्रमण गमन के अंतर्गत ही है ३ अब सामान्य सर्व समान आकार पना वह आकारपना दो प्रकार का है पर और अपर [illegible] पर सामान्य सत्ता सर्व द्रव्य में व्यापक है १ दूसरा अपर सामान्य वह द्रव्य में द्रव्यपना गुण में गुणपना कर्म में कर्मपना एक का धर्म दूसरे में नहीं जैसे द्रव्य में द्रव्यपना है परन्तु गुणपना नहीं इस तरह तीनों का विकल्प जानना ४ अथ विशेष पद में निरूपण वह विशेष वह वस्तु की अंत से पहचान अथवा पृथ्वी आदिक द्रव्य में जो परमाणु परमाणु रूप वह विशेष कहलाता है।

अथ समवाय।

आधार और आधेय के सम्बन्ध से जो अभिन्नपना जैसे उसके नाश होने से उसका भी नाश हो जाना उन दोनों का सम्बन्ध वह समवाय पदार्थ कहलाता है, जैसे तंतु का आधार वो ही वस्त्र है तंतु अधिकरण (आधार) है, वस्त्र आधेय है तंतु के नाश होने से वस्त्र का भी नाश

हो जाता है, इस वास्ते तंतु और वस्त्र अयुत सिद्ध कहे जाते हैं, दोनों का सम्बन्ध वह समवाय अथवा अवयव और अवयवी का सम्बन्ध वह भी समवाय अथवा गुण और गुणी का सम्बंध यह भी समवाय, तैसे क्रिया और क्रिया का कर्ता उनों का संबंध वह भी समवाय, तैसे जाति और व्यक्ति इन दोनों का सम्बन्ध वह भी समवाय, जाती जैसे ये वृक्ष है यह तो सामान्य समस्त वृक्ष गण व्यापक शब्द है, सब वृक्ष गण साधारण धर्मपने हैं वह तो जाति यह तो सामान्य कथन है और व्यक्ति है सो विशेष कथन है, जैसे यह वृक्ष है तो कौन सा वृक्ष है ये आम का वृक्ष है ये कहना इसका नाम व्यक्ति है जाति सामान्य कथन व्यक्ति विशेष कथन, इन दोनों के सम्बन्ध कूं भी समवाय कहते हैं, ६ ऐसे द्रव्यादिक छ पदार्थ को भाव मानता है सातमां अभाव पदार्थ मानता है, वह ४ प्रकार का है, प्राग् अभाव १ कार्य की उत्पत्ति के पहले ही कारण में कार्य का अभाव जैसे घड़ा बनने के पहिले मिट्टी के पिंड में घट का अभाव दिखता है १, दूसरा प्रध्वंस अभाव २ कार्य के विनाश में कार्य का अभाव जैसे घट के फूटने से कपाल माला (ठीकरों) में घड़े का अभाव वह प्रध्वंस २, तीसरा इतरेतर अभाव ३ जैसे विजातीय विवक्षित वस्तु का जो परस्पर अभाव जैसे घड़ा वस्त्र नहीं वस्त्र घड़ा नहीं, घड़े की अपेक्षा वस्त्र विजातीय (दूसरी जाति) वस्त्र की अपेक्षा घट विजातीय इन्हों के अन्योन्य अभाव है, वह इतरेत० ३ अत्यन्त अभाव ४ जहां तीन कालिक अभाव जैसे जीव चेतन तीन काल में भी अचेतन नहीं होता, विरुद्ध स्वभाव होने से वह अत्यंताभा० ४ ऐसा सात पदार्थ मानता है, इनके मंतव्य दो प्रमाण हैं प्रत्यक्ष १ अनुमान २ बाकी उपमान ३ शब्द ४ प्रमाण को इन दोनों के [illegible] मानता है, इनका संसार विचार उनों के ग्रंथ में ज्ञान [illegible] में मुक्ति जड़स्वरूप मानते हैं, बुद्धि आदिक नव [illegible] का उच्छेद हो जाना वोही मुक्ति है २! वेद से [illegible] निश्चय वोही मोक्ष है, वह २१ वह है ५ इंद्रिय [illegible] शब्द १, स्पर्श २, रूप ३, रस ४, गंध ५, [illegible]

विचारना होती है इन प्रमाण में अन्यथा अनुपपत्ति ही बीज है, (अन्यथा हो ही नहीं सकता) ये इस प्रमाण का बीज है, ये अर्थापत्ति प्रमाण जैमिनी मुनि ने माना है और भट्ट प्रभा करके मत में तो अभाव छठा प्रमाण माना है, इस अभाव का निर्णय वैशेषिक मत में कर दिया है अब प्रमाण शब्द का अर्थ लिखते हैं, जो प्राप्त पदार्थ है उसको प्राप कहो उसको प्रमाण कहते हैं, विशेष कथन उनों के ग्रंथ में देखना ।

॥ इति मीमांसक मतोपलक्षणं ॥

अथ सांख्य मत स्वरूप ।

प्राचीन कापिली सांख्य प्रथम तो ऋषभ देव को ही ईश्वर मानते थे पीछे इनके आचार्यों ने आत्मा को ही ईश्वर मानना शुरु करा, और नवीन सांख्य विष्णु को ईश्वर मानते हैं, केइयक सांख्य भागवत बजते हैं केइ जटाधारी मत भेद इनों में बहुत हैं, केई रामानुजी और स्वामी आदि आचार्य संप्रदाई सी दर्शित है, और केइयक वल्लभा चारी स्वामी नारायणादि के आचार्य सी संयोगी भी है. तिलक छाप कंठी मालादिक से भिन्न २ इनों की उपलक्षणा है सांख्य तत्व २५ मानते हैं, दया, उपशम स्वजनता आदि सतोगुण १ अहंकार, हर्ष उत्साहादि रजो गुण २ द्वेष, हिंसा, झूठ आदिक तमोगुण ३ इन तीन गुणों की सम अवस्था वह प्रकृति कहलाती है, प्रकृति प्रथम तत्व १ प्रकृति बुद्धि बिना नहीं वह गइ ये दूसरा तत्व २ बुद्धि जो है सो मैं कर्त्ता हूं मैं जानता हूं इस उल्लेख बिना नहीं प्रवर्त्तती, इस हेतु अहंकार तीसरा तत्व ३ अहंकार के शब्द रूप, रस, गंध, स्पर्श, विषय होते हैं, ५ ये तत्व भये, महत् आदिक ७ प्रकृति के विकार हैं, तब हुये ८ इनों से १६ और प्रगट हुये ५ तो भूत और मन युक्त ११ इंद्रिय एवं १६ सो ऐसे शब्द मात्र से आकाश १ रूप मात्र से अग्नि २ रस मात्र से जल ३ गंध मात्र से पृथ्वी ४ स्पर्श मात्र से वायु ५, एवं ५ अब पांच तो बुद्धि इन्द्रिय, स्पर्शन १, रसन २, घ्राण ३ चक्षु ४ श्रोत्र ५ अब ५ कर्मेन्द्रिय वचन १ हाथ २ पांव ३ गुदा ४ लिंग ५ वचन से बोलना

पीछे इससे छोटी जो बहिन उसका पति भी पंचत्व पाया उसको ग्रामा न्तर व्याही थी सो लेने गया रस्ते में उस स्वसा को तृषा लगी तब बृहस्पति ने कहा आगे आसन्न सघन वृक्षों की छाह में जिसमें कमल खिल रहे हैं, ऐसे स्वच्छ जल से भरा हुआ सरोवर है तब वो उस आस्था से कष्ट को सहती २ चली. सर आया नहीं घर आ गया, तब जल पी कर स्वस्थ भई पीछे बृहस्पति को उपलंभ देने लगी, तुम झूठवादी को नमस्कार हो तब बृहस्पति बोला मृषावचन के आश्रय से ही तेरा प्रयाण भया, अन्यथा नहीं होता हे सुलोचनी इस मेरे मृषावाक्यानुवत् आस्तिक दर्शनियों ने भी स्वर्ग मोक्ष मनुष्यादिक के सुख आगे मिलेगा इस हेतु जप तप ब्रह्मचर्य इंद्री दमनादि क्रिया की आचरना बतलाई १८ पाप दिखा के नर्कादिक के दुःख इसने आगे होना बतलाया तब मुग्ध जन आस्तिकों की श्रद्धा से भूख प्यासादि २२ परीसह सहते प्रत्यक्ष सुख को छोड आगे विशेष तर सुखाभिलाषी हो प्रवर्त्तने लगे, मृषा वाक्य विना प्रवृत्ति नहीं होती, तब उस भगनी ने कहा पांच आस्तिक पंडितों का वचन मृषा और तुम एक का प्रमाण ये कैसे समझा जावे तब भगनी को समझाने बृहस्पति ने एक बाघ का पंजा सुथार से बनवाया [illegible] नगर के बाहर पंजे को धूल में बाघ के [illegible] आकर बहुत से सर्व [illegible] कहा प्रभात नगर के [illegible] लगे [illegible] लोगों [illegible]

[illegible]

जैन धर्म सर्व मतों का धर्म सबकों पालने योग्य है, पक्षपातांध, कदाग्रही हठवादी ये सब पर्याय वाचक ही नाम है ऐसे को लाभ पहुंचना मुश्कल है।

यतः अज्ञसुखमाराध्य सुखतर माराध्यते विशेषज्ञ ज्ञान लवदुर्विदग्धं ब्रह्मापितंनरंनरंजयति १।

अर्थः—अज्ञात पुरुष सुख से आराधने में आता है, और विशेष ज्ञाता पुरुष अतिशय सुख से आराधे जाता है, तुच्छ ज्ञान लव से जो दुष्टपणे जला, ऐसे पुरुष को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता है १।

यतः उपदेशोहि मुर्खाणां प्रकोपाय नशांतये पयपान भुजंगानां केवलं विष वर्द्धनं ? ।

अर्थः—निश्चय मुर्खों को दिया हुआ उपदेश क्रोध के लिये होता है शांति के लिये नहीं, जैसे सांप को दूध पिलाने से केवल जहर ही होता है, १ इस वास्ते ये उपदेश तत्त्व गवेषी पक्षपात रहित मनुष्यों को ही लाभप्रद होगा।

अन्य दर्शनी जब अपना पक्ष वर्णन करते हैं तब कहते हैं ये बात तो ऐसे ही है और जैन धर्मी जब पक्ष दशाते है तो कहते हैं, ये बात तो ऐसे भी है और ऐसे भी है स्यात्कथंचित शब्द का प्रयोग करते हैं, इस वास्ते जैन दर्शन स्याद्वाद कहलाता है, एकेक पदार्थ में अनंत धर्म रहा भया है, इसलिये स्याद्वाद माने विना मतांतरियों को मौनी बणना पडता है जैसे किसी जिनदेव का पुत्र जिनदास है और उसका पुत्र ऋषभदत्त है तब ऋषभदत्त जिनदेव का पौत्र और जिनदास का पुत्र हुआ, जिनदास में जिनदेव की अपेक्षा पुत्रत्व धर्म रहता है, ऐसा एकांत कभी नहीं कह सकते [illegible] पुत्र [illegible] की अपेक्षा पिता धर्म भी रहा भया [illegible] में [illegible] है ऐसा कहना युक्ति [illegible]

एकांत कहना सिद्ध नहीं होता, जिनदास में पुत्रत्व मातुलत्व, पितृव्यत्व भ्रातृत्व आदि २ अनेक धर्म परस्पर विरुद्ध होने पर भी भिन्न २ अपेक्षा से रह सकते हैं अतः नैकस्मिन्नसंभवात् इस व्यासजी के रचे सारी रक सूत्र पर स्याद्वाद के खंडन के लिये शंकर स्वामी का लेखनी उठाना अज्ञान रूप था पक्ष पात का पटल नेत्रों पर आने से स्याद्वाद का असली स्वरूप नहीं देख सके, अगर सम्यक्तया समझ लेते, तो स्याद्वाद की शरण लेते * सत्य है जिन २ अन्य दर्शनी आचार्यों ने जैन धर्म का खंडन करा है वह यथार्थ विद्वानों के सन्मुख हास्यास्पद ही बने हैं, यदि शंका हो तो स्वामी शंकर कृत सप्तभंग का खंडन देख लो प्रथम भंग के स्वरूप ही को नहीं समझ सके हैं, वे मतानुयायी कहा करते हैं, स्वामी ने सप्त भंग को खंडन कर डाला है आगे अज्ञान वादी नहीं मानते, जो ज्ञान जिनके ६७ भेद में सप्तभंग का स्वरूप नवतत्त्वों पर दर्शाया है वह ज्ञान सर्वज्ञ सर्व दर्शी प्रकाशित है वह मानने वाले जैन है नहीं माने वह अज्ञान वादी है तथापि इहां उन सात भंगों को दृष्टांत युक्त दर्शाते हैं, उन सप्त भंगों के मूल तीन विकल्प हैं अस्ति है नास्ति नहीं है अवक्तव्य नहीं कह सकते जैसे किसी के पास सीप पड़ी है दूसरे ने आकर पूछा क्यों जी क्या ये सीप है, जरूर कहेगा सीप है यदि कोई ऐसा भ्रांति से कहे कि क्या ये चांदी है तब वो निश्चय उत्तर देगा नहीं इसमें यह सिद्ध हो गया कि प्रश्न कर्त्ता को उत्तर देने में दो विकल्पों की आवश्यकता है या तो अस्ति वा नास्ति, तीसरा अवक्तव्य (मौन रहने की जरूरत पड़ती है) जैसे बंगाल देश वासत्व एकफल थली देश वास्तव्य मनुष्य के पास लाया, जो कि उस थली वास्तव्य ने न देखा था, न सुना था, उसने पूछा बताओ इस फल का नाम क्या तब या तो चुप रहेगा या ये कहेगा ये अवक्तव्य है (मैं नहीं

* काशी में जिस [illegible] [illegible] जैकोबी [illegible] हरमन जेकोबी [illegible] व्याख्यान में स्पष्टतया प्रगट करा है, कि स्याद्वाद एक अभेद्य दुर्ग है, जिन २ लोगों ने स्याद्वाद के खंडन पर लेखनी चलाई है, वे अपनी अज्ञानता के सिवाय कुछ भी नहीं कर सके है, बल्कि उनके इस कर्तव्य पर हंसी आती है, कि वे कैसे दरिद्र थे।

कह सकता ये क्या है), अर्थात् जहां पर वस्तु स्वरूप का वर्णन नहीं हो सकता उस जगह अवक्तव्य अनिर्वचनीय की जरूरत होती है, बस सिद्ध हो गया अस्ति या नास्ति कहीं पूछने पर अवक्तव्य ऐसे भिन्न २ अपेक्षा के प्रश्न में उत्तर होता है फेर सुनो मेरे पास जो पाट पड़ा है, किसी ने पूछा क्या गुरुजी ये पाट, तिलोकचन्द्र ने लाकर रखा था वह ये ही पाट है तब मुझे कहना होगा अस्ति वही है तब और किसी ने पूछा ये पाट मोहनलाल ने लाकर रखा था वोही है, तब मुझे कहना होगा नास्ति (नहीं) इसी वजे कोई पूछे विक्रम सम्वत् १९६० मिगसर सुदी ६ को ये पाट चांदे सुथार ने बणाया था वो ही है तब कहना होगा अस्ति (है) यदि कोई कहे उस दिन भीखे सुथार ने पाट बणाया था, ये वो ही पाट है, तो कहना होगा नहीं अब तीसरा अवक्तव्य पाट पर दिखाते हैं, यह पाट है इतने अक्षर बोलते मुझको १ मिकिण्ट काल लगता है, अब कोई कहे १ मिकिण्ट काल में ये पाट है और ये पाट नहीं है, ऐसे दोनों वाक्यों का उच्चारन कर दो तो मैं एक उच्चारन एक मिकिंट में कर सकूंगा, हरगिज दो उच्चारन नहीं कर सकूंगा, इस का नाम अवक्तव्य ३ भंग है, अथवा कोई ऐसा कहे कि द्रव्य शब्द का उच्चारन इस रीति से करो कि ये अनुक्रम किसी को न मालूम हो, कि द्र प्रथम बोला गया और व्य पीछे बोला गया, तो बस अवक्तव्य की शरण लेनी होगी एक एक दो इस नियम को कोई काट सके तो इस भंग को काट सके, है भव्यो इन तीनों से ७ भंग होते हैं, जैसे प्रथम प्याले में सोडा दूसरे में आइसड तीसरे में खंड बाकी ४ प्याले खाली पड़े हैं, इन तीनों की मिलावट के लिये इन तीनों से ७ ही बनेंगे, न तो छ बनेंगे, न तो आठ जैसे सोड का १ आइसड का २ खंड का ३ सोडा और आइसड का ४ सोडा और खंड का ५, आइसड और खंड का ६ सोडा आइसड और खंड का ७ अस्ति १ नास्ति २ अवक्तव्य ३ इन तीनों के ४ और जैसे अस्ति नास्ति ४ अस्ति अवक्तव्य ५ नास्ति अवक्तव्य ६ और अस्ति नास्ति अवक्तव्य ७ इनों का विस्तार लिखने इहां स्थान नहीं मधुर में से बिन्दु रूप दरशाया है. ज्यादा जैन पंडितों

लीन हो जाता है केवल जैन से इतना ही भेद रहा इस बात का कि
मुक्त स्वीकारते हैं और जैन भी मुक्त मानते हैं, जैन कहते हैं किसी प्रक
चेतन रूप से एक भी आत्मा कह सकते हैं, ये कथन निश्चयनय
निर्भर है परन्तु एकांत निश्चयनय पर जैन ठहर जांय तो व्यवहार न
का मार्ग नष्ट हो जाता है, माता में माता बुद्धि, पिता में पिता बुद्धि
पुत्र में पुत्र बुद्धि, स्त्री में स्त्री बुद्धि, भगनी में भगनी बुद्धि, इत्यादि
भेद बुद्धि के नष्ट हो जाने से नाना प्रकार के अनर्थ खड़े होंगे, इसलिये
आत्मा स्वरूप करके एक भी है, ८४ लच योनि भेद से भिन्न-२ भी है,
इतना प्रमाण देने पर भी यदि वेदांतिक एक ही एक करते रहें तो इस
प्रश्न का उत्तर दें एक वेदांतिक अच्छा पठित है वह दूसरे अपठित को
वेदांत रहस्य समझाने का प्रयास करता है बतलाइये उसका
परिश्रम सफल माना जावे या निष्फल यदि श्रवण कर्त्ता के भ्रम का
नाश होने से परिश्रम सफल मानें तो द्वैतपक्ष सिद्ध हो गया, क्योंकि एक
तो समझाने वाला जिसके भ्रम असत्य है दूसरा समझने वाला जिसके
भ्रम ज्यों का त्यों कायम है कहिये द्वैत हुआ या एक, अगर एकांतपणे
एकही है ऐसा हठ नहीं छोड़ोगे तो उपदेश व्यवस्था निरर्थक ठहरेगा,
क्योंके उपदेश सुनाने वाला उपदेश सुनने वाले को पृथक अपणे से
[illegible] [illegible] इसलिये हे वेदांती भाइयो निश्चय और व्यवहार
दोनों नयों को स्वीकार कर एक भी अनेक भी इसही सिद्धांत को
[illegible] भारत में जैन निकलना
[illegible] दोनों पेट मिल इनकलों के हाथ
[illegible] से अपने सिनाना है
[illegible] दोनों पेड़
[illegible] गई
[illegible]

[illegible]

अर्थः यदि हेतु से अद्वैत सिद्धि मान भी लें तो हेतु साध्य इन दोनों के मानने से जिस द्वैत की जड़ उड़ानी थी उसको उलटा जल मिला जिससे जादह प्रफुल्लित हुई यदि बिना प्रमाण के अद्वैत मानोगे तो द्वैत ही वचन मात्र से क्यों नहीं मान लेते, बस प्रगटपन द्वैत पक्ष सिद्ध हो गया, जैन तीर्थंकर कथित संग्रहनय को एकांत हठ से पकड़ कर वेदांत अद्वैत मत निर्गमन हुआ है।

॥ इति वेदांत अद्वैत मत ॥

अथ सांख्य दर्शन।

इस संग्रहनय को ग्रहण करके ही सांख्य दर्शन उत्पन्न हुआ, यह भी जैन का एक अंग है हठ के कारण जैन से पृथक् बन गया, सांख्य कहते हैं प्रकृति कर्त्री है, आत्मा कमलवत् निर्लेप है।

यत नकर्त्तानाणिभोक्तात्मा कापिलानां तुदर्शने, जन्म धर्माश्रयेनायं प्रकृतिः परिणामिनी ?

ये कथन केवल संग्रहनयोक्त है संग्रहनय सत्ता ग्रहण कर्ता है, इस सत्ता की अपेक्षा यह निखिल आत्माओं को एक मानता है, इस अपेक्षा से जैसे मुक्तात्मा वैसी ही हमारी आत्मा है क्यों के सत्ता में कुछ भेद नहीं इस अपेक्षा से तो सांख्यों का कथन सत्य है, परन्तु एकांतपणे ऐसा ही है यह कहना सिद्ध नहीं होता अगर ऐसा ही है तो सांख्य इस हमारे प्रश्न का जवाब तो देवें यदि आत्मा को आप निर्मल ही मानते हो तो मुक्ति और संसार ये दोय भेद क्यों माने गये और जब आत्मा बंधन में नहीं तो फेर मुक्ति क्या वस्तु है तब तो संसार और मुक्ति एकही ठहरी और आत्मा की मुक्ति का होना तुम मानते हो तब सांख्य कहता है कर्त्ता, भोक्ता, मोक्ता, ये धर्म प्रकृति के ही है, आत्मा में नहीं, मात्र उपचार से आत्मा में मोक्ष मानते हैं (उत्तर) ये कथन तुमारा असमीचीन है।

यतः कृतिभोगयबुद्धयै द्वन्द्वो मोक्षश्चनात्मनः ततश्चात्मा नमुहिरप कृट मेनय दुच्यते १ पंचविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्रा श्रमेरतः जटी मुण्डी शिखी चापि मुच्यते नात्र संशयः २।

अर्थः यदि कर्ता हर्ता बुद्धि को ही मानते हो तो फेर आत्मा को उद्देश में रखकर आप का यह कहना है कि चाहे किसी आश्रम में हो चाहे शिखा धारी, चाहे मुंडित, चाहे जटाधारी हो, सांख्य के प्रकृति प्रधान अहंकारादि २५ तत्वों के जानने से बन्धन से मुक्त हो जाता है तो ये कथन कैसे योग्य हो सकेगा, अच्छा आप यह बतलाओ जिस बुद्धि को आप कर्ता भोक्ता मानते हो वह नित्य है या अनित्य यदि कहोगे नित्य है तो बस उसके निरंतर सामीप्य (पास रहने) से आत्मा की मुक्ति कदापि नहीं होगी. यदि कहोगे बुद्धि अनित्य है तो उसके पूर्व काल में संसार का अभाव सिद्ध होगा * इस प्रकार अनेक दूषण एकांतवाद में रहते हैं इसलिये ही श्री न्याय जी का शास्त्र लेने से निश्चय मार्ग है निश्चयनय को मानकर सांख्य वेदान्त आत्मा को स्फटिक तुल्य निर्मल मानते परन्तु यह नहीं कहते कि संसारी आत्मा भी सर्वथा [illegible] व्यवहारनय इस बात को कभी नहीं [illegible] किसी को भी मृषावादी कह [illegible] निर्मल मानने से और [illegible] परन्तु [illegible]

परिवर्तन कर देवे तो जैन कथंचित् इनमें भी संद्मत हो सकते हैं नैगम नयाभास में नैयायक का समावेश है सो भी धर्म धर्मी का एकांत भेद मानने के ही कारण से यदि कथंचित् भेदा भेद दोनों मानें तो यह पृथक् कभी नहीं कहलावे और ऐसे ही यदि कथंचित् ईश्वर कर्तृत्व के सिद्धान्त को स्वीकारते तो नैगम की रीति पर स्वीकारा जाता, नैगम नय भविष्यत् अवस्था को भूतकाल में मानता है जैसे महावीर स्वामी परम शरीर में ईश्वर कहलाये तब संसार अवस्था में भी ईश्वर ठहरे इस अपेक्षा ही आचारांगादि तथा कल्प सूत्रादि सूत्रों में गर्भ अवस्था में बालावस्था में तरुणावस्थादि संसार वाम में भी तएणं से समणे भगवं महावीरे सूत्र कार ने कहा है केवल ज्ञान उत्पत्ति के पहिले उन भगवान ने अनन्त शरीरों को कर्म द्वारा उत्पन्न करा है और आयुकर्म को छोड़ा इस कारण संसार के करता भोक्ता हर्त्ता भी सिद्ध हुये और ईश्वरत्व उनमें बराबर विद्यमान था जैसे ऋषभ देव जी के पार्श्वनाथ जी तक २३ ही तीर्थंकरों के साधु आदि चारों संघ प्रति क्रमण के दूसरे आवश्यक में चउवीसत्था लोगस्स उज्जोयगरे (चतुर्विंशति संस्तव) में आगे होने वाले तीर्थंकरों कू साक्षात् तीर्थंकर मान के वंदनादि नमस्कार करते थे ये भविष्यत काल को भूत काल में माना है ऐसा जैन सूत्रों में नैगम नय का कथन है इस प्रकार ईश्वर में कर्तृत्व पणा माना जाय तो कोई हानी नहीं परन्तु इस चराचर सम्पूर्ण जगत् का निर्माण और प्रलय कर देना शुक्र शून्य शशश्रृंगवत् है यह बात गीता में भी जैन धर्म पर् लेख है।

यतः न कर्तृत्वंन कर्माणि लोकस्य सृजतिप्रभुः न कर्म फल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते १।

अर्थः जगत् का कर्ता परमात्मा नहीं है, लोकों के कर्मों का रचयिता परमात्मा नहीं है और नहीं परमात्मा कर्म फल का दाता है किन्तु स्वभाव अर्थात् वासना जिसको जैन कर्म कहते हैं उसही की प्रवृत्ति है याने सर्व बातें चेतन और कर्म द्वारा हुई हैं, हो रही हैं और होंगी देखो गीता का कैसा निष्पक्ष कथन है कोई ... कर्म जड़

अतः कुछ नहीं कर सकते (उत्तर) जड में सुख दुःख पहुंचाने की श
प्रत्यक्ष है ब्राह्मी वच माल कंगनी इत्यादि जड़ वस्तु बुद्धि को इ
करती है जीवनीय गण की औषधी मेदा महा मेदा सतावर नोले
आदि प्राणों को मदद पहुंचाती है अफीम संखल आदि जड़ जव
प्राणों को भी हरण करता है संयोग से सुख भी करता है अन्न जड़
पदार्थ शरीर प्राण संरक्षण है इत्यादि विवरण प्रत्यक्ष है जड़ वस्तु
चेतन का सहाई दुःखदाई दोनों है हां यह जरूर है जड़ वस्तु स्वतः
हानि लाभ नहीं पहुंचाती. और भवि तव्यता के योग हानि लाभ
पहुंचाती भी है जैसे बैठे पर दिवाल गिर पड़े इत्यादि दोनों विचारों
की अपेक्षा से जैन मानते हैं जब तक चेतन शुभाशुभ अभिप्राय से
कर्मों को आत्मा के साथ लो ली भूत नहीं करे तब तक वह शुभाशुभ
कर्म अपने परिणामों को नहीं प्रगट कर सकता तो फेर ईश्वर को
अंतर्गत मान कर उनको कर्मफल कहना कौन से बुद्धिमानों का काम
है यदि ईश्वर को फल प्रदाता मान लिया जावे तो भी जीव को कर्म
[illegible]

के हाथ गला कटते तीव्र वेदन सहते हैं वह पूर्व जन्मोपार्जित अशुभ कर्म का दुःख रूप फल पाते हैं उस दुःखरूप फल का देने वाला वह कसाई घातक हुआ या आप का ईश्वर जो आप कहोगे ईश्वर पूर्व कृत कर्मों का फल घातक द्वारा उन २ जीवों को दिवाता है इस रीति के अनुसार घातक ईश्वर की प्रेरणा से उन जीवों को मारता है तब तो घात करने में स्वतन्त्र भी कसाई नहीं रहा आज्ञा ईश्वर की होने से पापी भी घातक नहीं ठहरा इस प्रकार तो जगत् में जितने प्राणी दूसरों को दुःख देने वाले हैं वह सब ईश्वर प्रेरित ही सिद्ध हुये और जीव कर्म करने में स्वतन्त्र इस सिद्धांत की जड को उनकी लेखनी ही कुल्हाड़ी बन के काट डाला यदि वे कहें कि जितने दुष्ट प्राणी दूसरे जीवों को दुःख देते हैं उन के कर्मों में ईश्वर की प्रेरणा नहीं है तो अपने शास्त्र में से [illegible] कर दीजिये कि जैसे चोर चोरी कर खुद कारागृह में नहीं [illegible] अपने आप बुरे कर्मों का नतीजा दुःख पाना नहीं चाहते इस [illegible] होना चाहिये यदि इस सिद्धांत को नहीं छोड़ना है तो यह [illegible] आदिक पशुओं [illegible] हनन करने वाला कसाई ईश्वर की प्रेरणा से उन को [illegible] पहुंचाता है इसलिये कि दुःख पाप कर्म का [illegible] वह फल प्रदाता नहीं हो सकता ऐसे दो विकल्पों में से किसी एक को [illegible] दि पूर्व विकल्प को स्वीकार करते हैं तो [illegible] विकल्प [illegible] स्वीकार करते हैं तो जवाब नहीं दे सकते [illegible] सर्वादी [illegible] समुपस्थित है किंचर भी नहीं [illegible] र्थ सिद्धांत सर्वथा ईश्वर कर्तृत्व [illegible] [illegible] रा निराकार पदार्थ किसी आकार वाले को उत्पन्न नहीं कर सकता इस न्याय से जैन ईश्वर कर्तृत्व से न्याय युक्त पक्षे दूर रहे हैं यदि साकार जीवन्मुक्त पद विभूषित ईश्वर को जैन [illegible] का कर्त्ता माने तो कोई हानि नहीं इस नव् मत के [illegible] भी में सम्मिलित हैं कतिपय मतानुसार इस बात [illegible]

अज्ञानियों में कर्म प्रधान है जैसे मूर्ख मनुष्य मिलकर किसी किल्ले को तोड़ता है जब उस कार्य में उनकी मति प्रविष्ट नहीं हो सकती तब तत्काल वह घबरा कर कह देते हैं किल्ला दृढ है, परन्तु जिनों को किल्ला तोड़ने का सम्यग् ज्ञान है उनों के सन्मुख किल्ला कमजोर और तोड़ने वाले बलवान् ऐसे दोनों की प्रधानता अपेक्षा से सिद्ध है मीमांसक यज्ञ करने को कर्म काड कहते हैं (यज्ञेषु पशुमाल भेत) अर्थात् जीव की हिंसा रूप कर्म को जैन धर्मी सर्वथा नहीं स्वीकारते इसकी व्याख्या बहुत है परन्तु यज्ञ याजन पूजायां इस धातु निष्पन्न अर्थ तो जैन धर्म के जीवाभिगम सूत्र रायप्रसेणी सूत्रादि अनेक सूत्रों में अर्हंत सिद्धों की प्रतिमा पूजन सम्यक्त्वी देवतों ने द्रव्य भाव दो प्रकार करी ऐसा लेख है ज्ञाता सूत्र में सम्यक्त्व धारणी द्रोपदी श्राविका का द्रव्य भाव पूजा करने का लेख है साधु जन को सिद्धों की प्रतिमा का भावस्तव वंदन का लेख भगवती सूत्र में है, इस न्याय यज्ञ है भी, त्रस जीवों का यज्ञ नहीं भी है, व्यास महर्षि लिखते हैं अहिंसा परमो धर्म, उत्तर मीमांसा कार भी यज्ञ मे पशु होमने को [illegible] भागवत में भी प्राचीन वर्ही राजा को नारदजी ने पशु [illegible] फल नरक दिखाकर छुड़ाया है, अहिंसा परम [illegible] जैन धर्म का सिद्धांत है कई महानुभावों का कहना है [illegible] का नाम नहीं है इस वास्ते जैन पीछे से चला है, उनका [illegible] वेदों में है भी सही, [illegible] मांस भक्षियों ऋषियों के [illegible] वेदों में जैन दयाधर्मियों का नाम [illegible] वो क्यों लिखते थे, आगे [illegible] गया सो तो विद्यमान [illegible] वैकालिक, अधूरीय प्रश्नी [illegible] दर्शनियों का नाम निशान [illegible] कर देते कि हमारे इन ग्रंथों [illegible] वेद माल कल पते हैं, कदापि नहीं [illegible]

चांडालो जन्म कोटिषु १४ अकल्यापंचाचरेणेव यः शिवंसकृदर्चयेत् सोपिगच्छेच्छिवस्थानं शिवमंत्रस्यगौरवात् १५ पंचाक्षरेण मंत्रेण बिल्व पत्रैः शिवार्चनं करोति श्रद्धया युक्तो सगच्छेदीश्वरंपदं १६।

विष्णुमतेमेवोक्तं चिंतामणौ, ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि वर्जयेत्ता दृशं देवी मद्योच्छिष्ठ घटं यथा १ त्रिपुंड्रधारक व्यानां शूद्राणां च विधीयते त्रिपुंड्र धारणाद् विप्र पतितः स्यान्न संशयः २ योवदातिद्विजातिभ्य चंदनगोपि मर्दितं अपिसर्षपमात्रेण पुनात्या सप्तमं कुलं ३ उर्ध्वपुंड्र विहीनस्य स्मशानं सदृसं मुखं अवलोक्य मुखं तेषा मादित्यमवलोकयेत् ४ ४ यज्ञो दानं तपश्चैव स्वाध्याय पितृ तर्पणं व्यर्थं भवतितत्सर्व मुर्ध्व पुंड्र विनाकृतं ५ शालग्रामोद्भवं देवं शैल चक्रां कमंकितं यत्रापिनीयतेतत्र वाराणस्यां शताधिकं ६ शालग्रामोद्भवं देवं देवो द्वारावती भवः उभयो संग मोयत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ७ म्लेच्छ देशे शुभोवापि चक्रां कोयत्र तिष्ठति वाराणस्यां यवाधिकं समंतात्योजनत्रयं ८ यन्मूले सर्व तीर्थानि यन्मध्य सर्व देवता, यदग्रे सर्व वेदास्च तुलसी तांनमाम्यहं ९ पुस्करादा नितीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा वासुदेवा दयो देवा वसंति तुलसी दले १० तुलसी काष्ट मालांतु प्रेतराज्य स्पदूतकाः दृष्टानश्यंतिदूरेण वातो घूतंयथारजः ११ तुलसी मालिकां धृत्वा यो भुंक्ते गरिनंदिनी सिक्थे २ सलभते वाजपेयं फलं शुभं १२ तुलसी काष्टमालायो धृत्वास्नानं समाचरेत् पुष्करेच प्रयागेच स्नातंतेन मुनीश्वर १३ आलोच्य सर्व शास्त्राणि विचार्यच पुनः २ इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा १४ चक्रलांछनहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत् क्रियमाणंचयत्कर्म वैष्णवानां विशेषतः १५ कृष्ण मंत्र विहीनस्य पापिष्ठस्यदुरात्मनः श्वानविष्टा समंचान्नं जलंच मदिरा समं १६।

होने वाले २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ति, ९ नारायण, ९ प्रति वासुदेव, ९ बलदेव इत्यादिकों का जीवन चरित्र प्रथम ही प्रकाश कर दिया था, वह द्वादशांग में सूत्र रूप उन के शिष्य गणधरों ने रचा, सब तीर्थंकरों की वाणी का तत्त्व सारांश एकही होता है, केवल नगर, राजा, साधु आदिक चारों संघों का नाम चरित्र भेद काल विद्यमान का होता है, इसलिए ही जैनों के सूत्र में राम कृष्णादि, बलदेव, वासुदेव, नारदादिकों के सम्बन्ध की गाथाएं मौजूद हैं, चौबीसवें तीर्थंकर को हुए पच्चीस सौ वर्ष हुए, इस समय सर्व जैनागम इन्हीं परमेश्वर के उपदेशानुसार विद्यमान है, पिता पुत्र की उत्पत्ति का स्वरूप सब जानता है, और कहता है ऋषभ तीर्थंकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी आर्यवेद, अनार्यवेदादि के भावी स्वरूप सब प्रथम ही भाषन करा था, वही उल्लेख जैन ग्रन्थों में विद्यमान है, सारे दर्शन जिनेश्वर कथित एकैकनय ग्रहन कर निकले हैं, जैन इन दर्शनों में से नहीं निकला है बिखरे मोतियों में माला का व्यवहार नहीं हो सकता परन्तु माला में मोतियों का व्यवहार है, अथवा एक जनरैली सड़क में सब छोटी २ सड़कें मिल जाती हैं परन्तु जनरैली सड़क छोटी सड़कों में नहीं मिलती, सब प्राणियों के पद हस्ती के पद में समा जाते हैं परन्तु हस्ती का पद अन्यों के पद में नहीं समा सकता, जैन धर्म के मार्ग में चलने को कोई दर्शनी कलंक नहीं लगा सकता तत्त्वगवेषी इस निष्पक्ष कथन को पढ़कर सुनकर मिथ्या कदाग्रह को चित्त से दूर कर सत्य स्याद्वादनयवादान्वित धर्म को ग्रहण करे यदि परमपद पहुंचना है तो।

इति श्रीमज्जैनदिग्विजय पताकायां षट्दर्शन स्वरूप पक्षपातवाद

निराकरण नाम [illegible]

नमोस्तुते महादेवा महा दोष-विवर्जितः महा मोह विनिर्मुक्तः महा गुण समन्वितः ॥ ६ ॥

अर्थः तुम महादेव को नमस्कार हो महा दोष विवर्जित महामोह से विनिर्मुक्तः महागुणों से युक्त ॥ ६ ॥

शब्द मात्रो महादेवो लौकिकानांमतेमतः, शब्द तो गुण तश्चैवा. र्थतोपिजिनशासने ॥ ७ ॥

अर्थः शब्द मात्र से महादेव लौकीक वालों के मत में कहा है शब्द से और गुण से निश्चै ही अर्थ से महादेव तो जैनशासन में ही है ८।

शक्तितः व्यक्तितश्चेव विधानं लक्षणं तथा, मोह जालं हतं येन महादेवः स उच्यते ॥ ८ ॥

अर्थः शक्ति से निश्चय व्यक्ति से विधान वैसे लक्षण मोह जाल हना जिसने वह महादेव कहलाता है ॥ ८ ॥

महा क्रोधो महा मानो महा माया महामदः, महालोभो हतोयेन महादेवः स उच्यते ॥ ९ ॥

अर्थः महा क्रोध महा अहंकार महा कापटयता महा मद महा लोभ हन दिया जिसने वह महादेव कहलाता है ॥ १० ॥

महाकामो हतोयेन महाभय विवर्जितः, महाव्रतोपदेशीच महादेवः स उच्यते ॥ ११ ॥

महा काम को हन दिया जिसने महा भय करके विवर्जित महा [illegible]र और उपदेशी वह महादेव कहलाता है॥ ११ ॥

महा नन्दो दया यस्य महा क्षांतिर्महा तपः महा मौनी महा योगी महादेवः स उच्यते ॥ १२ ॥

अर्थः महा नन्द दया जिसके महा क्षमा महा तपस्वी महा मौनी महा योगीश्वर वह महादेव कहलाता है ॥ १२ ॥

महा वीर्यं, महा धैर्यं महा शीलं महा गुणाः. महा मंजुल
नापस्य महादेवः स उच्यते ॥ १३ ॥

अर्थः अनंत बल महा धैर्य महा शील महा गुण महा मृदुता क्षमा
जिनके वह महादेव कहलाता है ॥ १३ ॥

स्वयंभूतं यतो ज्ञानं लोकालोक प्रकाशकं. अनंतवीर्यं चारित्रं
स्वयंभूः सोऽभिधीयते ॥ १४ ॥

अर्थः आप ही से हुआ जिनों को ज्ञान लोका लोक प्रकाशक
अनंत वीर्य से कर्मो का चय रूप करता वह चारित्र वह स्वयंभू
कहलाता है ॥ १४ ॥

शिवो यनाजिनः प्रोक्तः शंकरश्च प्रकीर्तितः. कायोत्सर्गस्थः
पर्यंक स्त्री शस्त्रादि विवर्जितः ॥ १५ ॥

अर्थः निरुपद्रवतायें से जिन शिव कहे जाते और सुख करता
से शंकर कहाते कायोत्सर्ग में रहे हुये पद्मासन स्त्री और शस्त्रादि
रके वर्जितः ॥ १५ ॥

साकारश्च निराकारो मूर्तामूर्तो महेश्वरः. परमात्मा जन्त
त्मा याद्यात्मा पित चैव च ॥ १६ ॥

अर्थ वह साकार युक्त और निराकार भी मूर्त मूर्त हैं इश्वर
त्मा अन्तरात्मा वैसे ही बाह्यात्मा भी ॥ १६

परम ज्ञान योगेन परमात्मा परम ...

सकलो दोष सम्पूर्णो निष्कलो दोष वर्जितः पंचदेह विनिर्मुक्तः प्राप्तः सपरमंपदं ॥ १६ ॥

अर्थः कला सहित दोष से पूर्ण कला रहित दोष करके वर्जित पंच शरीर औदारिकादि से रहित वह पाये परम पद ॥ १६ ॥

एको मूर्त्ति स्त्रयो भागा ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः, तान्येव पुनरुक्तानि ज्ञानं चारित्र दर्शनं ॥ २० ॥

अर्थः एक मुर्ति के तीन भाग ब्रह्मा विष्णु महेश्वरः वे ही फेर कहे ज्ञान चारित्र दर्शन करके ॥ २० ॥

कार्य विष्णु क्रिया ब्रह्मा कारणंतु महेश्वरः, कार्य कारण सम्पन्नो महादेवः स उच्यते ॥ २१ ॥

अर्थः कार्य तो विष्णु क्रिया ब्रह्मा है और कारण महेश्वर है कार्य कारण करके संपन्न वह महादेव कहलाता है ॥ २१ ॥

मथुरा संभवो ब्रह्मा राजगृहे महेश्वरः द्वारिकायांतुविष्णु रेक मूर्त्ति कथं भवेत् ॥ २२ ॥

अर्थः मथुरा में ब्रह्मा हुआ राजगृही में महेश्वरः द्वारिका में हुआ विष्णु एक मूर्त्ति कैसे हो सके ॥ २२ ॥

पद्म हस्तो भवेत् ब्रह्मा शूल पाणी महेश्वर, शंखपाणीर्भवे विष्णु रेक मूर्त्ति कथं भवेत् ॥ २३ ॥

अर्थः कमल हाथ में ब्रह्मा, त्रिशूल हाथ मे महेश्वरः, शंख हाथ वाला विष्णु कहो एक मुर्ति कैसे हो सके ॥ २३ ॥

हंस वाहो भवेद् ब्रह्मा वृष वाहो महेश्वर नागारि वाहो वे विष्णु रेक मूर्त्ति कथं भवेत ॥ २४ ॥

अर्थः हंस के वाहन वाला ब्रह्मा वृषभ के वाहन वाला महेश्वरः गरुड़ के वाहन वाला विष्णु एक मूर्त्ति कैसे हो सके ॥ २४ ॥

जातः कृतयुगे ब्रह्मा द्वापरेच महेश्वरः त्रेतायुगे भवेद्विष्णु रेकमूर्त्ति कथं भवेत ॥ २५ ॥

अर्थः कृतयुग में ब्रह्मा हुआ द्वापर में महेश्वरः त्रेता युग में विष्णु एक मूर्ति कैसे हो सके ॥ २५ ॥

पेढालस्य सुतो रुद्रो माताश्चसत्यकीस्मृता, मूलंच जन्मनक्षत्रं, एक मूर्ति कथं भवेत् ॥ २६ ॥

अर्थः पेढाल सन्यासी का पुत्र रुद्र और माता सत्यवती कही जन्म नक्षत्र मूल एक मूर्ति तीनों कैसे हो सके ॥ २६ ॥

चतुर्मुखो भवेद्ब्रह्मा त्रिनेत्रस्तु महेश्वरः, चतुर्भुजो भवेद्विष्णुः एक मूर्त्ति कथं भवेत् ॥ २७ ॥

अर्थः चार मुख वाला ब्रह्मा तीन नेत्र वाला महेश्वरः, चार भुजा वाला विष्णु तीनों एक मूर्ति कैसे हो सके ॥ २७ ॥

स्वर्ण वर्णो भवेद्ब्रह्मा श्वेत वर्णो महेश्वरः कृष्ण वर्णो भवेद्विष्णु रेक मूर्ति कथं भवेत् ॥ २८ ॥

अर्थः सोने का रंग ब्रह्मा श्वेत रंगवाला महेश्वर काले रंग वाला विष्णु तीनों एक मूर्ति कैसे हो सके ॥ २८ ॥

ज्ञानं विष्णु सदा प्रोक्तं सम्यक्त्व ब्रह्म उच्यते चारित्रमीश्वरः प्रोक्तो अर्हन्मूर्तित्रयात्मिका ॥ २९ ॥

अर्थः ज्ञान को हमेश विष्णु कहा सम्यक ही को ब्रह्म कहते हैं चारित्र को महेश्वर कहा इस वास्ते ब्रह्मा विष्णु महेश्वर अर्हंत ही की मूर्ति त्रयात्मक है ॥ २९ ॥

क्षितिजल पवन हुताशनं यजमानाकाशसोमसूर्याख्या, इत्येष्टौ लोकेऽस्मिन् अर्हंततेगुणाः प्रोक्ता ॥ ३० ॥

अर्थः पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, यजमान, आकाश, चन्द्र, सूर्य ये ऐसे यह आठ इस लोक में, इन आठों के गुण अर्हंत में हैं ॥ ३० ॥

क्षितिरित्युच्यते चांति जलः शांति प्रसन्नतां, निःसंगता वायुः हुताशोयोग उच्यते ॥ ३१ ॥

अर्थः पृथ्वी ऐसा कहने से क्षमा, जल कहने से शांति प्रशमता हवा का गुण संगरहितपना अग्नि का गुण योग कहलाता है ॥ ३१ ॥

यजमानो भवेदात्मा तपोदान दयानिधिः, सोम मूर्तिभवे च्चन्द्रो ज्ञान मादित्य मुच्यते ॥ ३२ ॥

अर्थः यजमान है सो आत्मा का गुण, तपदान दया के निधान, शीतल मूर्ति गुण चन्द्र का ज्ञान है सो सूर्य गुण कहलाता है ॥ ३२ ॥

अकारेण भवेद्विष्णु रेफे ब्रह्माव्यवस्थितः हकारेण हरः प्रोक्तः तस्यांते परमं पदं ॥ ३३ ॥

अर्थः अकार से विष्णु विश्व पालक पना रेफ करके ब्रह्मा पना रहा हुआ है हकार करके हरः अष्ट कर्मों का हर्ता इनों के अंत में सुद्दे पर विन्दु वो ही परम पद मोक्ष है अर्हं ॥ ३३ ॥

अकार आदि धर्मस्य आदि तत्त्व प्रदेशकः स्वरूपे परम ज्ञानं अकारस्तेन उच्यते ॥ ३४ ॥

अर्थः आदि धर्म का अकार आदि प्रदेश का तत्त्व स्वरूप में परम ज्ञान इसलिये आदि में अकार कहलाता है ॥ ३४ ॥

हतोरागश्च द्वेषश्च हतमोह परीषहः हतानियेन कर्माणि हकारस्तेन उच्यते ॥ ३५ ॥

अर्थः हना राग और द्वेष हना है मोह परीषहः हना है जिसने सर्व कर्म इसलिये पीछे हकार कहलाता है ॥ ३५ ॥

भव बीजांकुर जननी रागाद्याःक्षयमुपगतायस्य ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनोवानमस्तस्मै ॥ ३६ ॥

अर्थः भवरूप बीज अंकुर की जननी रागादि क्षय हो गया है जिनके सो ब्रह्मा वा विष्णु वा हर उनको नमस्कार हो ॥ ३६ ॥

अथ लोक तत्व निर्णयात् किंचिल्लिख्यते ।

प्रणिपत्यैकमनेकं केवल रूप जिनोत्तमं भक्त्या भव्य जन बोधनार्थं नृतत्वनिगमं प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

अर्थ—प्रणाम करके एक और अनेक केवल रूप जिनोत्तम को भक्ति से, भव्य जन के ज्ञानार्थ नरतत्व निगम कहता हूं ॥ १ ॥

भव्याभव्य विचारो नह्रियुक्तोनुग्रहप्रवृत्तानां ॥ कामं तथापि पूर्वं परिचितव्यात्बुधैः परिपत् ॥ २ ॥

अर्थ—भव्य अभव्य का विचार अनुग्रह में प्रवर्त्तन की इच्छावाले को युक्त नहीं तो भी पहले पंडित ने पर्षदा की परीक्षा करलेनी ॥ २ ॥

परानिवा भेद्यमानाः पर कथने चालनी यथोरिक्तः ॥ कलुष यति यथानहिपः पूनकवद्दोषमादत्ते ॥ ३ ॥

अर्थ—बस की तरह अभेय पराये के कथन पर चलनी की तरह जो खाली असार ग्राही मैला करता है जल को जैसे भैंसा चलनी की तरह तनरत्नपने दोषग्रहण करता है ॥ ३ ॥

जल मंथनवत् कथितं बधिरस्येयहि निरर्थकंतस्य ॥ पुरतो धरमध्यत्यं तस्मात्प्रहर्यं तुभद्रस्य ॥ ४ ॥

अर्थ—जल को मथन करने से क्या निकलता है तद्वत् होता है निश्चय बहरे को सुनाना संगीत निरर्थक अंधे के सन्मुख नाचना तिस हेतु यहां भद्र का ही ग्रहण है ॥ ४ ॥

इतस्त्वाह आचार्यस्यैवहितज्जाड्यं यच्छिष्योनावबुध्यते ॥ गावो गोपालकोनेव कुतीर्थेनावतारिता ॥ ५ ॥

अर्थ—इसलिये और कहते हैं निश्चय वह आचार्य का ही जड़पना है जो शिष्य नहीं ज्ञान प्राप्त होता है जैसे गोपाल नहीं होने से कुतीर्थों ने अवतारण कर डाला ॥ ५ ॥

आचार्यस्त्वाह क्रियाकरोत्यनार्याणां उपदेष्टासुवागपि॥ तप्रतीक्ष्णकुठारोपि दुर्दारुणि विहन्यते॥ ६॥

अर्थ—आचार्य कहते हैं उपदेशकर्ता अच्छे वचनवाला भी अनार्य का क्या करे जैसे तहां तीखा कुहाड़ा भी खराब काष्ठ में विशेषपने हनीज जाता है॥ ६॥

अप्रशांतमतौशास्त्र सद्भावप्रतिपादनं॥ दोषायाभिनवोदीर्ण शमनीयमिवज्वरे॥ ७॥

अर्थ—अप्रशांत बुद्धिवाले का सद्भाव प्रतिपादन रूप शास्त्र दोष के लिये होता है जैसे तरुण ज्वर में शमन औषधि के देने से अत्युतज्वर की विरुनी होती है॥ ७॥

उदितौ चन्द्रादित्यौ प्रज्वालितादीप कोटि रमलापि नोप करोति यथांधे तथोप देशस्त्व मांधानां॥ ८॥

अर्थः चन्द्र सूर्य के उदय होने से तैसे निर्मल दीपक की कोटि भी प्रज्वालित होने से जैसे अंध को उपकार नहीं करता है तैसे ही सदुपदेश अज्ञानरूप अंधकार छाये हुये अन्धे को॥ ८॥

एकत्र तडागजल पिबति भुजंग शुभजलंगोश्च परणमति विषं सर्पे गवि जायते क्षीरं॥ ६॥

अर्थ एक तालाब में अच्छा जल सांप और गऊ दोनों पीते हैं सांप में विष परणमता है यों ही गऊ में क्षीर होता है जिसकी तरह उपदेश पात्र कुपात्र परणमता है॥ ६॥

सम्यग ज्ञान तडागे पिबतां आगमविमलनामसर्वा परिणमतिमन्नु सम्यग मिथ्यात्व समन्तुषन्तेय॥ १०॥

अर्थ सम्यक ज्ञान तालाब में आगमरूप जल अच्छे और बुरे दोनों पीते हुये अच्छे को तो सम्यग परिणमता है और यों ही ज्ञान बुरे को मिथ्यात्व पने परिणमता है। १०॥

अर्थः विचारने पर प्रत्ययकार की बुद्धि विशेष पने वर्ते है उतने उपाय के मध्य मन आत्मार्थ में निग्रहन करना (दृढ़ करना) निश्चयपणे करके व्यसवाद आकाश से नहीं गिरता है ॥ १५ ॥

यर्थित्य मानं नवदाति युक्तिं प्रत्यक्षतोनाप्यनुमान तश्च तत्युद्धिमान् कोनुभजेष लोके गोशृंगतः क्षीरसमुद्भवोनः ॥ १६ ॥

अर्थः जो विचारने से नहीं तो युक्ति देता है न प्रत्यक्ष से और न अनुमान से कौन ऐसा बुद्धिमान होगा सो लोक में फेर भी ऐसे मत को पीछे भी भजेगा कदापि गउ के शींग से दूध उत्पन्न नहीं होता ॥ १६ ॥

येवैनेया विनयनिपुणैस्ते क्रियंते विनीता नावैनेयोविनय निपुणै शक्यते संविनेतु दाहादिभ्यः समल समलंस्यात्सु वर्णं सुवर्णं नायस्पिंडो भवति कनकंच्छेददाह क्रमेण ॥ १७ ॥

अर्थ. जो प्रथम ही से विनयवान है उसको विनय में निपुण पुरुष विनीत करता है परन्तु जो विनयवान प्रथम से नहीं है उसको विनय में निपुण पुरुष विनयवान नहीं कर सकता, अग्नि में तपाने आदि क्रम से मल युक्त सोना निर्मल सोना हो सकता है, परन्तु काटने तपाने आदि क्रम से लोह का पिंड सोना नहीं हो सकता ॥ १७ ॥

आगमनियुक्त्याच योर्थं समभिगम्यते परीक्षहेमवद्ग्राह्यः पक्षपाता ग्रहेणकिं ॥ १८ ॥

अर्थः आगम करके और युक्ति करके जो अर्थ अच्छी तरह जानने में आवे परीक्षा करके सोने की तरह ग्रहण करना पक्षपात का आग्रह करने से क्या ॥ १८ ॥

मातृमोद्र कवद्वाला येगृह्णंत्यविचारिताः तेपश्चात् परितप्यंते सुवर्णः ग्राहको यथा ॥ १९ ॥

अर्थ. माता के लड़की तरह जो बाल बगैर विचारे ग्रहण करते है वे पीछे पश्चात्पने पछताते हैं जैसे सोने का ग्राहक ॥ १९ ॥

श्रोतव्येषु कृतौ कर्णौ वाग् बुद्धिश्च विचारणे यः श्रुत्वा न विचारयेत स कार्यं विन्दते कथं ॥ २० ॥

अर्थः सुनकर कर के कानों से वचन फिर बुद्धि से विचारना जो सुना हुआ बुद्धि से नहीं विचारता वह कार्य को कैसे हासिल करेगा ॥ २० ॥

नेत्रैर्निरीक्ष्यविष कंटकसर्प कीटान् सम्यग्यथा व्रजतितान् परिहृत्य सर्वान् कुदेव कुश्रुति कुदृष्टि कुमार्ग दोषान् सम्यग् विचारयत कोऽत्र परापवादः ॥ २१ ॥

अर्थः आंखों से देख कर जहरी जीव कांटे सांप कीड़ों को अच्छे मार्ग से इन सबों को छोड़ बुद्धिमान चलता है वो फेर कुदेव, कुशास्त्र, कुदृष्टि रूप कुमार्ग के दोषों को अच्छी तरह विचारे क्या यहां पर निंदा है ॥ २१ ॥

मत्स्यश्चनो न भगवान् ऋषभो न विष्णु र्नाजोऽपि ने नपरो न हिरण्य गर्भः तेषां स्वरूप गुणमागम संभवान् ज्ञात्वा विचारयत कोऽत्र परापवादः ॥ २२ ॥

अर्थः [illegible] मे न [illegible] भगवान ऋषभ देव हैं न विष्णु [illegible] है [illegible] है [illegible] ब्रह्म केवल उनों [illegible] हुआ उनका विचार करो [illegible]

[illegible]

अर्थः यह भगवान जिनवर तो मेरे भाई नहीं लगते और और पूर्व लिखे विष्णु आदि मेरे वैरी नहीं इनों में से एक को भी मैंने अपनी दृष्टि से नहीं देखा है परन्तु इनों के अलग २ वचन और जीवन चरित्र सुनकर के भगवान वीर के गुणों का अतिशय लोलपी (आसक्त) हो करके अंगीकार करा है ॥ ३२ ॥

नास्माकं सुगतः पितानरिपवस्तीर्थ्या धनं नैवते, दत्तंनैव तथाऽजिनेनत्हृतंकि किंचित् कणादादिभिः, किंत्वेकांत जगद्धितः स भगवान् वीरो यतश्चामलः वाक्यं सर्व मलोपहर्तृ चयनस्त द्भक्तिमंतो वयं ॥ ३३ ॥

अर्थ नहीं तो हमारा सुगत (बौद्ध) वैरी है फिर नहीं है जिनेश्वर हमारा पिता. पुनः तीर्थंकर जिनने तो धन दिया नहीं और कणादादिक मतावलंबियों ने मेरा कुछ धनादिक हरन करा नहीं तो फेर क्या है कि वह वीर भगवान एकांत जगत के हित के लिये निर्मल वचन जो कि सर्व मल का अपहरने वाला निरूपण करा इसलिये ही उनके भक्ति में हम हुये हैं ॥ ३३ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अर्थः इनों में कोई सर्वज्ञ है उसने जगत् के हितार्थ
जगत् का स्वरूप कथन करा है और जो जगत् द्रव्यों को एकान्त
हैं उनों को सुक्ष्म दृष्टि वाले पशुवत्र कहते हैं विरोध कहने से क्या ॥

यस्यनिखिलाश्चदोषानसंति सर्वे गुणाश्च विद्यंते, ब्र
वा विष्णुर्वा महेश्वरो वानमस्तस्मै ॥ ४० ॥

अर्थः जिसके समस्त दोष नहीं है और समस्त गुण विद्यमान
ऐसा वह ब्रह्मा हो वा विष्णु हो वा महेश्वर हो उनों को नमस्का
करता हूं ॥ ४० ॥

इति श्री हरिभद्राचार्य रचितं उपदेशामृत लोक तत्त्व निर्णय शास्त्र युक्त हरिभद्र
ब्रह्मादि जीवन चरित्र जैनागमनु लिखित तीर्थंकर चरित्र सम्पूर्णम् ॥

अर्थः मांस खाने से शीघ्र पतन होता है लाख और लूण और दूध बेचने वाला ब्राह्मण तीन दिन से शूद्र होता है ॥ १ ॥

इतरे पांतु पण्यानां विक्रया दपि कंपगः, ब्राह्मणस्त्वे कराव्रेण वैश्य भावं विगच्छति ॥ २ ॥

अर्थः और दुकानदार बन के जादह दूध बेचने से ब्राह्मण एक रात करके वैश्य बन जाता है ॥ २ ॥

वृषली फेन पीतस्य विश्वासोपहतस्यच तथै वानु प्रसूतस्य निः कृति नोप लभ्यते ॥ ३ ॥

अर्थः वृषली फेन पीतस्य इतिस्मृति पिता के घर जो कुमारी ही रजस्वला हो जावे उसको विश्वास घात से विवाह करना और उसमें जानकर ऐसा ब्राह्मण शुद्धि नहीं प्राप्त होता।

ऋतुकालमतिक्रम्य यस्तु गच्छति मैथुनं, सएव ब्रह्महा नाम हन्ते ब्रह्मनदान्मजं ॥ ४ ॥

अर्थः स्त्री का ऋतु काल को उल्लंघन कर जो ब्राह्मण मैथुन में प्रवृत्त होता है वह [illegible] ब्रह्म घाती और उसका जो पुत्र हो तो उसको भी ब्रह्म घाती [illegible]

ऋतु काले [illegible] यस्तु सेवेन मैथुनं, ब्रह्म हत्या फलं तस्य [illegible] ॥ ५ ॥

अर्थः ऋतुकाल उल्लंघन कर जो ब्राह्मण मैथुन सेवता है उसको ब्रह्म हत्या का फल [illegible] और [illegible] भी [illegible] है [illegible]
[illegible]

ब्राह्मण नहीं होता ६ तब पञ्च पाती ने कहा कुल से ब्राह्मण होता है, (उत्तर) कुल से भी ब्राह्मण नहीं होता क्योंकि मुनियों के कुल में दोष प्रसंग होने से तैसे श्रुति में कहा भी है

यतः हस्ति न्यामचलो जातः उलुक्यांकेश कंबलः अगस्त्ये गस्ति पुष्पाच कौशिकः कुशसंस्तरात् ॥ १ ॥ कठिनात् कठिनो जातः, शर गुल्माच्च गौतमः द्रोणाचार्यस्तु कलशात् तित्तिरस्ति त्तिरी भवः ॥ २ ॥ रेणुकाजनयेद्रामः ऋषी शृंगी वने मृगी, कै वर्तो जनयेद्व्यासं. कत्तीवंतं चन्द्रिका ॥ ३ ॥ विश्वामित्रंच चांडाली वशिष्टंचैव उर्वशी नतेषां ब्राह्मणीमाता तेपि लोकस्य ब्राह्मणाः ॥ ४ ॥

अर्थः हस्तिनी मे अचल ऋषी जन्मा उलू की सैकेश कंबल ऋषी अगस्त ऋषी अगस्त के पुष्प से. कौशिक ऋषी कुश के बिस्तर से [illegible] कठिन से कठिन ऋषी जन्मा. सर कंडे के गुल्म से गौतम ऋषी [illegible] घड़े से द्रोण चार्य जन्मा. तित्तरि से तित्तर ऋषी उत्पन्न हुआ [illegible] रेणुका [illegible] से [illegible] हुआ वन में मृगी से [illegible] से [illegible] उत्पन्न हुआ. [illegible] [illegible] से उत्पन्न हुआ, [illegible]

तब पक्षपाती ने कहा शौच आचार से ब्राह्मण होता है ।

उत्तर, नहीं हो सकता देखो तुम्हारे श्रुति का प्रमाण

यतः आरंभे वर्त्तमानस्य ब्राह्मणस्य युधिष्टरः कुतः शौच भवेत्तस्य मैथुनाभिरतस्यच ॥ १ ॥

अर्थः आरम्भ गृह कार्यादि कर्त्ता तैसें धर्म बुद्धि से जीव पंचेन्द्रियादि वध आरम्भ में वर्त्तमान ब्राह्मण के हे युधिष्टर शौच पवित्रता कैसे हो सके और मैथुन सेवनादिक क्रिया वाला गृहस्थी ब्राह्मण के शौच कहां से होय १, फिर ऐसा भी है जो २ शौच आचारवंत पुरुष सर्व ब्राह्मण ही होय ऐसा तुम मानते भी नहीं, देखते हैं, नट, भंड, नट्ये, मदिरा वेचने वाले चंडाल कुल वाले आदिक स्नान पवित्र वस्त्र तिलक, छाप, माला प्रमुख पवित्रता तैसे चांडाल पराये पान में भोजन नहीं करते, अन्य जाति वर्णों का स्पर्श भी प्राय नहीं करते इत्यादि शौच। चार के प्रति शरण हुये को भी तुम ब्राह्मण उनों को नहीं मानते इसलिये सिद्ध हुआ कि शौचाचार से भी ब्राह्मण नहीं होता ७।

तब पक्षपाती ने कहा तपस्या से ब्राह्मण होता है ।

उत्तर यतः तपाग्रादि भवेद्विप्रः सिद्ध साधन मिष्यते, ...व मेतत्तपो मूलं तपोहि दुरति कर्म ॥ १ ॥

तप से जो विप्र हो जाय तो सिद्ध साधन चाहिये ये सर्व तपों मूल ...ग निश्चय दुःख से उल्लंघने में आता है ॥ १ ॥

हे महानुभाव तुम कहो वह कौन सा तप है सो ब्राह्मण करते हैं एकादशी, गोत्रान, तुलसी व्रत, ऊभ छठादिक जो जो नामा मात्र उसमें भी एकादशी के दिन फलाहार में जो जो पदार्थ अन्य दिन भक्षण करते वह एकादशी के दिन अवश्य रसना लंपट पने ...त हैं करवा चौथ, तीज, ऊभछठादि व्रत में दिन में भूख मरके ...नरह रात को खावे हैं मार्कंड पुराण में ऐसा कथन तुमारे हैं

यतः अस्तंगते दिवानाथे तोयं रुधिर मुच्यते, अन्नं मांस समं प्रोक्तं मार्कंडेन महर्षिणा ॥ १॥

अर्थः सूर्य अस्त हुये बाद जल तो रुधिर जैसा अन्न मांस तुल्य कहा मार्कंड महा ऋषी ने १, इस वाक्य को अन्यथा करके रात्रि भोजन आचरते हैं और निशाचर संज्ञा को प्राप्त होते हैं रात को गमन करने वाला वा रात को खाने वाले को निशाचर (राक्षस) कहा है चरगति तथा भक्षण अर्थे वाचक धातु है इसलिये पूर्वोक्त तथा मांस भी क्षियां करती हैं परन्तु ब्राह्मणों को नहीं करते देखा, यदि इस पूर्वोक्त तथा मांस को कोई आचरे भी लेवे तो भी ब्राह्मण नहीं हो सकता क्योंकि इत्यादि तथा मांस भी चारों वर्ण वालों को करते देखा परन्तु उनको तुम ब्राह्मण नहीं मानते इसलिये तप से भी ब्राह्मण नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

तब पक्षपाती ने कहा संस्कार से ब्राह्मण होता है।

उत्तर, संस्कार से भी ब्राह्मण नहीं होता क्योंकि क्षत्रिय वैश्यों का भी सीमंत उत्पन्न जात कर्मादि संस्कार विशेष होता ही है परन्तु वे ब्राह्मण नहीं होते और वसिष्ठादिक जो ब्राह्मण कुल बिना अन्यत्र स्थान उत्पन्नों का जात कर्मादि संस्कार नहीं भी किया गया था वे प्रधान ब्राह्मण हो गये इसलिये व्रत संस्कार करके भी ब्राह्मण नहीं होता ॥ ९ ॥

नाम करके भी ब्राह्मण नहीं होता क्योंकि जो नाम अन्य वर्ण वालों का है उसमें कोई विशेषता नाम ब्राह्मण में प्राप्त नहीं ॥ १० ॥

अथ ब्राह्मण लक्षण लिख्यते।

सर्वे.यादि [illegible] जाति [illegible] कुशलश्च तपसा ज्ञानयोग्यान् संस्कारैर्द्विजा [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] सजात्यानां [illegible] गुणैः कुन्देन्दु विमलैर्ज्ञाननियमपरायणः ॥ २ ॥ [illegible] पापानि सर्वे [illegible] उच्यते ज्ञान शील क्षमा धैर्य [illegible] गुणा ॥ ३ ॥ अथ सर्वे समाः [illegible], सर्वे प्रसन्ना

उच्यते ॥ ४ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण यथाः शिल्पे न शिल्पिकः अन्यथा नाम मात्रस्या दिंद्र गोपककीटवत् ॥ ५ ॥

अर्थः न शौच से न शरीर से न जाति से न कुल से न जीव से न तप से, न ज्ञान से, न योनि से, न संस्कार से ब्राह्मण होता है १, न जटा रखने से, न गोत्र से, न जाति से, न और किसी से, कुंद पुष्प वा चंद्रवत् विमल गुण वृत नियम में तत्पर हो २, जो पापों का खोता है वह ब्राह्मण कहलाता है वह गुण यह हैं दान शील क्षमा वीर्य ध्यान विशेष ज्ञान पणा आदि जहां सर्व बराबर हैं वह ब्राह्मण कहलाता है ४, ब्रह्मचर्य के पालने से ब्राह्मण होता है जैसे शिल्प के करने से शिल्पी कहलाता है अन्यथा तो नाम मात्र ब्राह्मण है जैसे वर्षा ऋतु में इंद्र गोप (ममोलिये वा बीर बोटी) कीटक का नाम इंद्र गोप है जो वर्षा से स्वतः हो जाते हैं परन्तु वे अर्थ करके इंद्र को छिपाने वाला कभी नहीं हो सकता, तद्वत् ब्राह्मण नाम मात्र होते हैं ५, तैसे धर्मशास्त्र ब्राह्मणों के लिखा है ।

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्मचेंद्रिय निग्रहः सर्व भूत दया ब्रह्म एतद्ब्राह्मण लक्षणं ॥ १ ॥ एक वर्ण मिदं सर्व पूर्व मासीत् युधिष्ठिर. क्रिया कर्म विभागेन चातुर्वर्ण्यव्यवस्थितं ॥ २ ॥ शूद्रोपिशील संपन्नो गुणवान ब्राह्मण उच्यते. ब्राह्मणोपि क्रिया भ्रष्टः शूद्रात्प्रत्यवरो भवेत ॥ ३ ॥ पंचेंद्रिय बलं घोरं, यदि शूद्रो पिर्वाणिव न तस्मै दानं प्रदा तव्यं सत्यमेवं युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥ न जातिर्दृश्यते राजन गुणाः कल्याण कारकाः व्रतस्थ मपि चांडालं तंदेव ब्राह्मणं विदुः ॥ ५ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव युधिष्ठिरः निवृत्तो धर्मशास्त्रेयो तमेव ब्राह्मणं विदुः ॥ ६ ॥ यदा न कुरुते पापं सर्व भूतेषु दारुणं कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ७ ॥ चतुर्वेदो पिचो विप्रः शुद्धंधर्मनिशेवते वेद भार धरो मूर्खः स वै ब्राह्मण गर्दभः ॥ ८ ॥ शूद्राश्चैव कारिणो ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर समाचार सदा तस्य यथा स्वात

और क्रिया जैन धर्म में आचार्य प्रचलित है वह सब अहिंसा धर्म के संबंध से है जिसमें स्वदया १, परदया २, निश्चयदया ३ व्यवहार दया ४, स्वरूप दया ५, द्रव्यदया ६, अनुबन्ध दया ७, भाव दया ८, इसका विस्तार ज्ञानी गुरु से जानो ऐसे ८ दया के भेदांतर अहिंसा के पर्याय हैं।

॥ इति संक्षिप्त जिनधर्म स्वरूपं ॥

अब किसी ने कहा श्रुति स्मृति का कहा धर्म सर्वथा न्याय है इसलिये श्री शंकर-दिग्विजय में कहा है रे रे बौद्ध अहिंसा धर्म को गोप्य है वेद की हिंसा २ में नहीं।

उत्तर-हे महानुभाव वेद के मंत्रों से मारे जाय जो मनुष्य और माना गया पशु उनकी हिंसा हिंसा नहीं तब तो मुसलमान भी अपनी अरबी भाषा का मंत्र पढ़ गौ आदि जीवों को मारते हैं उस मंत्र के बोले पीछे मारा जीव को हलाल (खाने योग्य) बिगर मंत्र बोले जो मारा गया जीव के मांस कूं हराम (नहीं खाने योग्य) कहते हैं वह मुसलमानों का [illegible] मंत्र यह है (बिसमिल्लाह) खुदा दयालु है शुरू करता हूं उसके नाम [illegible] इसका अर्थ है इस न्याय से मुसलमान को भी हिंसा नहीं होनी [illegible] की कलियुग आजकल भी देवों के नाम पर भैरवादिक [illegible] अनेक मनुष्य हमेश प्राणियों का प्राण लेते हैं वह भी [illegible] के भागी नहीं ठहरे क्या खूब लीला है ऐसे लोकों की बुद्धि को [illegible] है वेद की हिंसा हिंसा नहीं और अहिंसा में धर्म नहीं है महानुभावो [illegible] के प्राण लिये और पैसा जो ग्राह्य है उस हिंसा को फिर [illegible] हैं वह युक्ति विरुद्ध होने से त्याज्य है जो आत्मानि पाप से निवृत्त है वह धर्म [illegible] [illegible] है कि वायु जलादि पंचभूतों की हिंसा गृहस्थ से होती है [illegible] संकल्प करके त्रस जीवों को हनना त्याज्य [illegible] [illegible] में जो मारे जीवों को संकल्प करके मारते हैं [illegible] में [illegible] ही तुल्य है पशु पुत्रादि [illegible]

[illegible]

हे सुभंगा ये तेरा अंग सदव घी से लेपन कर जिवा से चाटूं तब ये दूसरा प्रजापति (ब्रह्मा) का मुख है जैसे ऋग्वेद के तेंतीसमें अध्याय में ब्राह्मण हरिश्चन्द्र की कथा में लिखा है।

नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति सर्वे पशवो विदुः तस्मात्पुत्रो मातरं स्वसारं चाभि रोहति एषपंथा उरुगाय सुखेधायं पुत्रिणामाक्रमंति विशेष कामा स्तंपश्यंति पशवो वयां सिच तस्मात्ते मात्रा पिसह: मैथुनी भवंति।

अर्थः नहीं बिना पुत्र की गति है ऐसा सर्व पशु जानते हैं तिस वास्ते पुत्र माता वा बहन पर चढ़ते हैं ये मार्ग दोनों को सुख धारण करना और विशेष कामातुर ने पुत्री को भी आक्रमण करना उसने पशुओं की वा अथवा अवस्था देख कर इस लिये तेरा माता के साथ मैथुन करना होय निश्चय जैसे वर्गविनाशान में लिखा है।

प्रजापतिः स्वां दुहितर मकामयत्।

अर्थात प्रजापति अपनी पुत्री से काम क्रीड़ा सेवता हुआ जैसे अत्रेय स्मृति में लिखा है।

[illegible] नाभिनंदन कर्मणा, नापो मूत्र पुरीषेण, न विप्र [illegible] बलात्कारो दस्युभ्यो चोर हस्त गर्भं [illegible] विप्र ताडिता ॥ २ ॥ [illegible] विशीयते स्त्रियाऽपि प्रकृपम [illegible] केनचित् ॥ ३ ॥ [illegible] जो भस्या दुष्कृतान्य पकर्षति ऋतुकाले उपासित्वा ऋतुकालेन [illegible] ॥ ४ ॥ असवर्णेनयो गर्भो नारी योनि निषिच्यते [illegible] विचारी [illegible] तर्मुच्यति ॥ ५ ॥

अर्थ [illegible] सो ज्ञारसे [illegible]
से अग्नि दीपित नहीं [illegible]

प्राण जाता होय तब ४, धन जाता होय तब ५ इत्यादि ५ मृषा बोलने में पाप नहीं मृषावाद सूचक वचन है वैसे सौत्रामणीयनामा अध्ययन के विधरूप अप्पण मध्यकांड इष्ट कल्प में लिखा है।

तस्माज्जायांश्च कुमनायांश्च स्नुषाश्च स्वशुरश्च सुरांपिस्वा प्रललापतुः आसेवे आलंब्यहि पार्श्वे आलंब्यं तस्मो ब्राह्मणः सुरांपिवेत् अतः सौत्रामणीय यज्ञे स्वगृहे मद्य संधान मनुष्ठीयते।

अर्थः तिस कारण स्त्री मनोज्ञ बेटे की बहु, श्वसुर मद्यपान करके प्रलाप करने लगे आसवों को पकड़ निश्चय पसवाडे विशेष पने पकड़ तिनके बाद ब्राह्मण मदिरा पिये इसलिये सौत्रामणीय यज्ञ में मद्य का संधान अनुष्ठान करे, फिर वहा ही सौत्रामणीय प्रकरण में लिखा है।

नैवसुरां पीत्वा हिनस्मिय एवं विधां सुरांपिवति प्रजाति वीर्य माद्‌वाति।

अर्थः नहीं निश्चय मद्य पी कर के हिंसा नहीं करता है जो इस प्रकार मदिरा पीता है वह प्रजा अति वीर्य बल को प्राप्त होय।

[illegible] वेदों में मद्य पान के प्रति पादक वचन लिखे हैं अब इसके बाद [illegible] वचन मनुस्मृति में

[illegible] यशूद्रार्थ मुपाजाय अग्नि होत्र मुपाचरेत् ऋत्विजोपिहि शूद्राणां ब्राह्मणानिंदगामिना शूद्रान्नं शूद्र संपर्क शूद्रेण च सहासनं शूद्राज्ञा नागमे [illegible] स्वर्ग स्थानपि पातयेत् ॥ ४ ॥

अर्थ जो ब्राह्मण शूद्र का [illegible] लेके अग्नि होत्र करता है, यज्ञ कराने वाला यदि शूद्र [illegible] तो ब्राह्मण को निंदनीक कहा २ शूद्र का अन्न, शूद्र की संगति शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना शूद्र से नाना प्रकार आगमन करके स्वर्ग में [illegible] भी नीचा पटकता है ॥ ४ ॥

[illegible]

नरकं घोरं ब्रह्म तेजो विवर्जितः ॥ १ ॥ नयज्ञार्थं क्वचिच्छूद्रा द्विप्रोभक्षेतत्कुत्रचित् यजमानो हि भक्षित्वा चांडालः प्रति जायते ॥ २ ॥ तपश्च अग्निहोत्रं च, वैश्वदेव तथा हुति, सर्वंन श्यन्ति तस्य शूद्रान्न पचने कृते ॥ ३ ॥ शूद्रान्न रस पुष्टांगं आहिताग्निश्चनित्यशः जपः शांति कृतस्चापि गति कर्धान विद्यते ॥ ४ ॥

अर्थः जो शूद्र से मांस लेकर के ब्राह्मण पचाता है वह ब्रह्म तेज करके रहित ब्राह्मण घोर नरक को जाता है ॥ १ ॥ नहीं कभी यज्ञ के अर्थ शूद्र से ब्राह्मण खावे और यज्ञ कराने वाला भी शूद्र का खाय करके चांडाल के जन्म में जाता है ॥ २ ॥ तप और अग्निहोत्र अग्नि तैसे आहुति उसका कुछ भी माननीय नहीं शूद्रान्न जो ब्राह्मण पकाता है ॥ ३ ॥ शूद्र के अन्न रस से पुष्ट है अंग जिसका और हमेस अग्नि होत्र जप शांति भी करता है ऐसे ब्राह्मण की उर्द्धगति नहीं है ॥ ४ ॥

हे [illegible] मनुस्मृति का सम्पूर्ण [illegible] काला करने [illegible] के प्रति [illegible] [illegible] निम्न वचन मानक है

[illegible]

[illegible] पठनि चांडाल [illegible]

[illegible] ब्राह्मण के नहीं देना।

[illegible]

मंदिर की पूजा करै वह देवलंदन चारों का स्पर्श हो जाय तो वस्त्र संयुक्त जल में प्रवेश करना ॥ १ ॥ प्रत्याख्यान (त्याग) भोग वस्तु का प्रत्यपन (ज्ञान) पहले प्रष्ण करना, दान लेना, मांग खाना, निश्चय पढ़ाना, ब प्रकार वेद बेचना होता है ॥ २ ॥

बृहस्पति स्मृति में कहा है—

यतः मंत्र भेदी प्रथक् पाकी, आदेशी वेद विक्रयी रतहत्या योषितः त्यागी पंचैतेब्रह्म हास्मृताः ॥ १ ॥ आदि शांति चपे विप्राः आदिष्टाश्च पठंतिये, आदेशी पाठकश्चैव द्वावेतौ ब्रह्म घातकौ ॥ २ ॥ वेदाक्षराण्यावंति युज्यतेर्थस्य कारणात् तावत्यो ब्रह्म हत्यादि वेद विक्रय कारणात् ॥ ३ ॥

अर्थः जो गुप्त वार्त्ता रूप मंत्र लोकों में प्रगट करे अलग रसोई बना के भोजन करे आज्ञा देवे वेद बेचे, जवान स्त्री को त्याग देवे ये पांचों ब्रह्म हत्यारे कहे ॥ १ ॥ जो आज्ञा देता है ब्राह्मण और जो हुकम पाकर पढ़े निश्चय आज्ञा देने वाला और पढ़ने वाला ये दोनों ब्रह्म घाती हैं ॥ २ ॥ जितने वेद के अक्षर अर्थ के कारण ॥ वी चाहिये उतनी ही ब्रह्म हत्या होती है वेद बेचने के कारण सेती ॥ ३ ॥

[illegible] स्मृति में कहा है—

वेद विक्रिय निर्दिष्टं, स्त्रीपुरुषार्जितं धनं, नदेयं पितृदेवेभ्यो [illegible] वाद्रु पार्जितं ॥ १ ॥

अर्थः वेद बेच के तथा स्त्री से जो पैदा किया हुआ धन तैसे नपुंसक का उपार्जित धन पितर देवार्थ नहीं देना ॥ १ ॥

फिर यमस्मृति में कहा है—

यतः स्नानी नेनाम निरीक्षितः चांडालान्यंतजान्कचित् स्वर्णस्य स्नेयिनं चैव, वेद विक्रयिणं तथा ॥ १ ॥

[illegible] स्नान किया हुआ नहीं देखना चांडाल

यतः कृष्णो वाच श्रूयतां धर्म सर्वस्वम् श्रुत्वाचैवावधार्यतां आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थः सर्वस्व धर्म को सुन के हृदय में धारण करना जिसमें अपनी आत्मा से दूसरे का बुरा न करो ॥ १ ॥

युधिष्ठरोवाच—

कथमुत्पद्यते धर्म्म कथं धर्मो विवर्द्धते कथं चस्थाप्यते धर्मः कथं धर्मः विनश्यति ॥ २ ॥

अर्थः युधिष्टर कहता है कैसे धर्म उत्पन्न होता है कैसे धर्म बधता है कैसे धर्म साधे जाता है कैसे धर्म का नाश होता है ॥ २ ॥

कृष्णोवाच—

सत्येनोत्पद्यते धर्मः, दयादानेन वर्धते क्षमा यास्थाप्यते धर्मः क्रोध लोभाद्वि नश्यति ॥ ३ ॥

अर्थः कृष्ण कहते हैं कि सत्य से धर्म उत्पन्न होता है दया दान करके वधता है क्षमा करके ठहरता है धर्म क्रोध लोभ से नाश हो जाता है ॥ ३ ॥

कृष्णोवाच

अहिंसा सत्य मस्तेयं त्यागो मैथुन वर्जनं, पंचस्वेतेपुधर्मेषु सर्वे धर्म प्रतिष्ठित ॥ ४ ॥

अर्थः अहिंसा सत्य चोरी का त्याग मैथुन का वर्जना और सर्व पदार्थों का त्याग इन पांच धर्मों में सर्व धर्म रहे हुये हैं ॥ ४ ॥

सर्वे वेदा न तत्कुर्यु सर्वेयज्ञाश्च भारतः सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात प्राणिनांदया ॥ ५ ॥

अर्थः सारे वेद वह नहीं कर सके और भारत के सर्व यज्ञ भी नहीं कर सके और सर्व तीर्थों का स्नान भी नहीं कर सके जो करती है प्राणियों की दया ॥ ५ ॥

अहिंसा लक्षणो धर्मः अधर्म प्राणिनां वधः तस्माद्धर्मा प्राणिभिः कर्त्तव्या प्राणि नां दया ॥ ६ ॥

अर्थः नहीं हिंसा ऐसा लक्षण धर्म है प्राणियों का वध अधर्म है इसालिये धर्मार्थ प्राणियों ने लोक में प्राणियों की दया करनी ॥ ६ ॥

लोभ माया विभूतानां नराणां प्राणिनां मतां येषां प्राणि बधो धर्मों विपरीता भवंतिते ॥ ७ ॥

अर्थः जो मनुष्य लोभ कपटाई से भरा और प्राणियों का वध करता है जिनों के जीव हिंसा ही धर्म है वेधर्म से विपरीत है ॥ ७ ॥

न शोणिताद्रतं वस्त्रं शोणितैर्नैं वशुध्यति शोणिता द्रनया वस्त्रं शुद्धं भवति वारिणा ॥ ८ ॥

अर्थः खून से गीला वस्त्र खून से धोने से शुद्ध नहीं होता, वह तो जल के धोने से ही शुद्ध होता है ॥ ८ ॥

यदि प्राणि वधे धर्मो स्वर्गश्च खलु जायते संसार मोच कानांतु कुतः स्वर्गो भिर्शायते ॥ ९ ॥

अर्थः जो प्राणि वध से धर्म और स्वर्ग हो जाय तो फिर संसार त्याग धर्म तपादि करने वाले कहां जावेंगे संसार खाली हो सर्व हिंसकों से स्वर्ग ही भर जायगा ॥ ९ ॥

ध्रुवं प्राणि वधो यज्ञे नास्ति यज्ञेषु हिंसकः ततोहिंसात्मकः कार्यः सदायज्ञो युधिष्टरः ॥ १० ॥

अर्थः यज्ञ में निश्चय प्राणि वध है यज्ञ तो अहिंसक है ई नहीं तिस कारण हिंसात्मक कार्य है युधिष्टर निश्चय यज्ञ हिंसक है ॥ १० ॥

इंद्रियाणि पशून् कृत्वा वेदिंकृत्वा तपो मई अहिंसामाहुति कृत्वा आत्म यज्ञं यजाम्यहं ॥ ११ ॥

अर्थः इंद्रियों को पशु करके तपो मइ वेदी करके अहिंसा आहुती करके आत्मा यज्ञ से पूजन करुं मैं ॥ ११ ॥

अर्थः जैसा मेरा प्राण मुझे प्रिय है वैसा और भी देह धारियों के प्राण प्रिय है ऐसा जान कर नहीं करना घोर नर्क दाता प्राणियों का वध पंडितों ने ॥ ४ ॥

प्राणिनां रक्षणं युक्तं मृत्यु भी ताहि जंतवा आत्मो पम्येन जानन्हि इष्टं सर्वस्य जीवितं ॥ ५ ॥

अर्थः प्राणियों की रक्षा युक्त है निश्चय मौत से डरते सब जीव हैं निश्चय अपनी आत्मा के तुल्य जानना सब को जीवित इष्ट है ॥ ५ ॥

उद्यतं शस्त्रमा लोक्य विषाद यांति विह्वलाः जीवा कंपंति संत्रस्ता नास्ति मृत्यु समं भयं ॥ ७ ॥

अर्थः नंगे उठाये शस्त्रों को देख विकल हो विषाद पाते जीव त्रास पाके कांपते हैं मृत्यु के तुल्य कोई भय नहीं ॥ ६ ॥

कंटके नापिविद्धस्य महती वेदना भवेत् चक्रकुंता सियष्टयाधै मार्यमाणस्य किंपुन ॥ ७ ॥

अर्थः कांटे से बींधा हुआ के बडी वेदना होती है तो फिर चक्र बर्छी, तलवार [illegible] वेदना का फिर क्या कहना है [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अर्थः विष्टा में कीड़े के, देवलोक में इन्द्र के बराबर जीवतव्य की वांछा है और मरने का भय भी तुल्य है ॥ १० ॥

अहिंसा सर्व जीवानां माजन्मा पिहिरोचते नित्य मात्मां यथारक्षेत् यथाकार्यापेरष्वपि ॥ ११ ॥

अर्थः दया सर्व जीवों को जन्म से ही रुचती है जैसे अपनी आत्मा की रखते हैं वैसे करना पराये पर भी ॥ ११ ॥

जीया नांर क्षणं श्रेष्टं जीवा जीवित कांक्षिणः तस्मात्समस्त दानेभ्यो भयदानं प्रशस्यते ॥ १२ ॥

अर्थः जीवों का रक्षण श्रेष्ट है जीव जीवतव्य के इच्छक हैं तिस कारण सब दानों में अभयदान प्रशंसनीय है ॥ १२ ॥

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिंद्रिय निग्रहं सर्व भूत दया पुष्पं क्षमा पुष्पं विशेषतः ॥ १३ ॥

अर्थः अहिंसा प्रथम पुष्प है इंद्रिय जीतना दूसरा पुष्प, सर्व जीवों की दया तीसरा पुष्प है विशेष से क्षमा पुष्प चौथा है ॥ १३ ॥

ध्यान पुष्पं तपः पुष्पं ज्ञान पुष्पं तसप्तमं सत्यं चैवाष्टमं पुष्पं, तेन तुष्यंति देवता ॥ १४ ॥

अर्थः ध्यान पुष्प पांचमा है, तप पुष्प छठा है, ज्ञान पुष्प सातमां है, सत्य आठमा पुष्प है. इन पुष्पों से देवता मनोप पाते हैं ॥ १४ ॥

ये श्लोक मार्कंड पुराण के हैं।

यत पृथिव्या मप्यहं पार्थ वायाव पिजलेप्यहं वनस्पति गतश्चाहं सर्व भूत गतोप्यहं ॥ १ ॥

अर्थः हे अर्जुन पृथ्वी में भी मैं हूं पवन में भी जल में भी मैं हूं, और वनस्पती में भी मैं हूं, सर्व भूतों में प्राप्त मैं हूं ॥ १ ॥

जले विष्णु स्थले विष्णु विष्णु पर्वत मस्तके ज्वाल माला कुले विष्णु सर्व विष्णु मयं जगत् ॥ २ ॥

अर्थः जल में स्थल में विष्णु, पर्वत पर वनस्पत्यादि में विष्णु, अग्नि में विष्णु सर्व जगत् विष्णु मय है ॥ २ ॥

अर्थः एक जीव को अभयदान देना अच्छा परन्तु हजार विप्रों को हजार गऊ देना अच्छा नहीं ॥ ६ ॥

अभयं सर्व सत्वेभ्यो यो ददाति दया परः तस्य देहा द्विमुक्तस्य भय नास्ति कुतश्चन ॥ ७ ॥

अर्थः अभय जो सर्व सत्वों को दया युक्त हो देता है वह इस देह को छोड़ने से भी उसको कहांभयनहीं ॥ ७ ॥

हे मधेनुधनादीनां दातारः सुलभाभुवि दुर्लभः पुरुषो लोके यः प्राणिष्व भय प्रदः ॥ ८ ॥

अर्थः सोना गऊ धनादिक के दातार पृथ्वी में सुलभ हैं परन्तु लोक में जो प्राणियों को अभय देने वाले ऐसे पुरुष दुर्लभ हैं ॥ ८ ॥

महतामपि दानानां काले नक्षीयते फलं भीता भय प्रदानस्य, क्षय एवन विद्यते ॥ ९ ॥

अर्थः बड़े भी दान का फल काल पाकर क्षीण हो जाता है परन्तु भय करके व्याप्त का अभय दिया हुआ फल क्षय होता नहीं है ॥ ९ ॥

॥ इति भारते शांति पर्वे ॥

यथा मेन प्रियो मृत्यु सर्वेषां प्राणिनां तथा तस्मान्मृत्यु भयात्रित्यं त्रातव्या प्राणिनो बुधैः ॥ १ ॥

अर्थः जैसा मुझ को मृत्यु प्रिय नहीं तैसे ही सर्व प्राणियों को भी तिस कारण मृत्यु भय से नित्य पाडतों ने रक्षा करणी ॥ १ ॥

एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवर दक्षिणाः एकतो भय भीतस्य प्राणिनां प्राण रक्षणं ॥ २ ॥

अर्थः एक तरफ तो सर्व यज्ञ प्रधान दक्षिणा युक्त एक तरफ डर से डरे हुये प्राणियों का प्राण रक्षण करना ॥ २ ॥

सर्वे सत्वे यथा दानं एक सत्वे यथा दया सर्व दान प्रदानां ते ध्येये का प्रशस्यते ॥ ३ ॥

अर्थः सर्व पात्रों को मुंह मांगा दान देना और एक तरफ सर्व जीव की रक्षा करना सर्व दान देने से एक जीव अभयदान प्रशंसा गया है ॥ ३ ॥

एकतः कांचनं मेरु बहु रत्ना वसुं धरां एकतो भय भीतस्य प्राणिनां प्राण रक्षणं ॥ ४ ॥

अर्थः एक तरफ तो सोना मेरु प्रमाण दान करे और एक तरफ बहुत रत्न युक्त पृथ्वी का दान करे एक तरफ भय भीत प्राणियों का प्राण रक्षण ॥ ४ ॥

यूकामत्कुण दंशादीन् ये जंतु स्नेह मस्तनुं पुत्रवत्परि रक्षंति तेनरा स्वर्ग गामिनः ॥ ५ ॥

अर्थः जूं मांकड खटमल डांसादिक अपने को काटते पुत्र की तरह रक्षा करे वह मनुष्य स्वर्ग जाने वाले हैं ॥ ५ ॥

पशूनां येतु हिंसंति ये गृद्धा इव मानवा ते मृता नरकं यांति नृशंसा पाप पोषका ॥ ६ ॥

अर्थः पशुओं को जो मारते हैं वे गृद्ध की तरह मनुष्य हैं वे मर के नरक जाते हैं निर्दई पाप के पोषक ॥ ६ ॥

सर्वे जीव दयार्थंतु ये न हिंसंति प्राणिनं निश्चित धर्म संयुक्ता स्तेनरा स्वर्ग गामिनः ॥ ७ ॥

अर्थः सर्व जीवों के दयार्थ जो प्राणियों को नहीं हनते निश्चय वे धर्म संयुक्त [illegible] हैं मनुष्य [illegible] ७ ।

सप्त द्वीपं [illegible] [illegible] संसमाचनं [illegible] जीव दया नास्ति सर्व [illegible] [illegible] ८

[illegible]

[illegible]

[illegible] नाग [illegible] अवरत भग वानेन [illegible] निगमन

[illegible] दान से, [illegible]

अर्थः वीर्य रक्त से उत्पन्न हुआ ऐसा मांस जो मनुष्य खाता है और फिर वे मनुष्य स्नान मज्जनादिक शौच करते हैं उनों को देख उहां देवता हंसते हैं ॥ ४ ॥

कमांस काशिवे भक्तिकमद्यं कालिकार्चनं मद्य मांसानुरक्तानां दूरे तिष्टं तिशंकरः ॥ ५ ॥

अर्थः मांस भक्षण करे उसकी शिव में भक्ति कहां कहां तो मदिरा पान और कहां कालिका की पूजा मदिरा मांस में अनुरक्त पुरुष से शंकर दूर ही रहता है ॥ ५ ॥

किं जाप्य होमनियमे तीर्थे स्नाने च भारतः, यदि खादति मांसानि सर्व मेत न्निरर्थकं ॥ ६ ॥

अर्थः जाप होम नियम करके क्या और गंगादि तीर्थ स्नान करके क्या हे भारत जो पुरुष मांस भक्षण करे उसके ये सब निरर्थक हैं ॥ ६ ॥

प्रभा संपुष्करं गंगा कुरुक्षेत्रं सरस्वति, वेदिका चन्द्र भागाच सिन्धुश्चैव महानदी ।' ७ ॥

अर्थः प्रभास पुस्कर गंगा, कुरुक्षेत्र, सरस्वती, वेदिका और चन्द्र भागा और निश्चय सिन्धु महानदी ॥ ७ ॥

एते तीर्थे महत्पुण्यं यत्कुर्या दाभि सेचनं, अभक्षणं च मांसस्य नच तुल्यं युधिष्टरः ॥ ८ ॥

अर्थः इन तीर्थों में बड़ा पुण्यदान करे एक पुरुष और एक पुरुष मांस नहीं भक्षण करे तो मांस त्याग समान, हे युधिष्टर तीर्थ पुण्यादिक कृत्य नहीं है ॥ ८ ॥

तिल सर्प पमात्रंतु यो मांसं भक्ष्यते नरः सयाति नरकं घोरं यावच्चन्द्र दिवा करौ ॥ ९ ॥

अर्थः तिल सर सव मात्र जो मनुष्य मांस खावे वह घोर नरक को जावे जहां तक चन्द्र सूर्य रहें उहां तक ॥ ९ ॥

केदारे ये जलं पीत्वा पुण्यं मर्जयते नरः, तस्मा दष्ट गुणं प्रोक्तं मद्या मिप विवर्जनं ॥ १० ॥

अथ रात्रि भोजन निषेधाधिकारः।

ये रात्रौ सर्वदाहारं वर्जयंति सुमेधसः तेषांपक्षो पवासस्य फलं मासेन जायते ॥ १ ॥

जो रात्रि को अच्छी बुद्धि वाले नित्य आहार वर्जते हैं उनको १५ दिन के उपवास का फल एक महीने से होता है ॥ १ ॥

नोदकमपि पीतव्यं रात्रौ यत्र युधिष्टरः तपस्विना विशेषेण गृहिणाच विवेकिना ॥ २ ॥

अर्थः जल भी नहीं पीना रात को जहां हे युधिष्टर तपस्वियों को विशेषपने और विवेकी गृहस्थ ने भी ॥ २ ॥

मृतेस्वजनमात्रेपि सूतकं जायते किलः अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथं ॥ ३ ॥

अर्थः अपना स्वजन मात्र मरने से भी निश्चय सूतक होता है तो दिन का नाथ अस्त प्राप्त होने से कैसे भोजन करना ॥ ३ ॥

अस्तं गते दिवा नाथे तोयं रुधिर मुच्यते अन्नं मांस समं प्रोक्तं मार्कण्डेन महर्षिणा ॥ ४ ॥

अर्थः सूर्य के अस्त होने के बाद जल तो रुधिर तुल्य कहिये अन्न मांस समान कहा मार्कण्ड महर्षि ने ॥ ४ ॥

ये श्लोक मार्कण्ड पुराण के हैं।

रक्ता भवंति तोयानि अन्नानि पिशिता निच रात्रौ भोजनं शक्तस्य ग्रासेतन्मांस भक्षणं ॥ १ ॥

अर्थः रात्रि को जल रक्त सदृश अन्न मांस सदृश रात्री भोजन आसक्त मनुष्य के ग्रास २ में मांस भक्षण होता है ॥ १ ॥

मुहूर्तो नोदितं नक्तं प्रवदंति मनीषिणः नक्षत्रं दर्शनं नक्तं नाहं मन्ये गणाधिपः ॥ २ ॥

अर्थः ब्रह्मचर्यादि व्रत धारक को ब्राह्मण जानना शस्त्र हाथ में क्षत्री जानना खेती कर्म करने से वैश्य जानना, दास कर्म करते को शूद्र जानना ॥ ५ ॥

ब्रह्मचर्य तपो युक्ता सम कांचन लोष्ट वत् सर्व भूत दया युक्ता ब्राह्मणाः सर्व जातिषु ॥ ६ ॥

अर्थः ब्रह्मचर्य तप कर युक्त कांचन और पत्थर पर सम बुद्धि सर्व जीवों की दया कर युक्त ऐसे लक्षण वाले सर्व जाति में ब्राह्मण जानना ॥ ६ ॥

येषांत दांताश्रुति पूर्ण कर्णा जितेन्द्रिया प्राणि वधे निवृत्ताः परिग्रहेसंकुचितानिरीहा स्ते ब्राह्मणा स्तारयितुं समर्था ॥ ७ ॥

अर्थः जो शांत हो जितेन्द्रिय हो और शास्त्र सुनने से जिसके कर्ण पूर्ण हो मन जीतने वाला प्राणि वध से निवृत्त परिग्रह का संकोचक वांछा रहित वह ब्राह्मण तारने को समर्थ होता है।

इय सर्व श्लोक महाभारत शांति पर्व में हैं।

सुखं शय्या नवं वस्त्रं ताम्बूलं स्नान मंडनं दंत काष्टं सुगंधं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणं ॥ १ ॥

अर्थः सुख शय्या नवीन वस्त्र, पान बीड़ा, शृंगारार्थ स्नान, आभूषण दंत काष्ट, अतरादि सुगंधि ये सर्व ब्रह्मचर्य का दूषण है ॥ १ ॥

ताम्बूलं सुक्ष्म वस्त्राणि स्त्री कथेन्द्रिय पोषणं दिवा निद्रा सदा क्रोधी यतिनां पातकानिषट् ॥ २ ॥

अर्थः पान बीड़ा, रेशमी आदि सुक्ष्म बहु मूल्य वस्त्र, स्त्रियों की शृंगार कथा, कोक नायका भेदादिक, दिन का शयन, नित्य का क्रोधी पना यतियों को ये छ पापकारी क्रिया है ॥ २ ॥

अनेकानि सहस्त्राणि कुमाराः ब्रह्मचारिणः दिवंगतानि राजेंद्र अकृत्वा कुल संतति ॥ ३ ॥

अर्थः हजारों कुमार बाल ब्रह्मचारी निश्चय हे राजेन्द्र देवलोक गये विवाह और पुत्रादि नहीं उत्पन्न करके भी ॥ ३ ॥

इत्यादि ब्रह्मचर्याधिकार महाभारत में है।

मद्य मांस शनं रात्रौ भोजनं कंद भक्षणं ये कुर्वंति वृथा स्तेषां तीर्थ यात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥

अर्थः मद्य मांस का भक्षण रात्रि का भोजन कंद सर्व जाति का भक्षण जो करते हैं उन पुरुषों का वृथा है तीर्थ यात्रा जप और तप ॥ १ ॥

वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरे वृथाच पौष्करी यात्रा वृथा चान्द्रायणं तपः ॥ २ ॥

अर्थः ऐसे पुरुष को वृथा एकादशी कही वृथा हरि का जागरन कहा वृथा पुष्कर की यात्रा कही और वृथा चान्द्रायण तप कहा ॥ २ ॥

ये श्लोक पद्म पुराण के हैं ।

रक्त मूल कमित्याहु तुल्यं गो मांस भक्षणं श्वेतंतंविद्धि कौंतेय मूलकं मदिरोपमं ॥ १ ॥

अर्थः रक्त कंद जान ऐसा है सो गऊ के मांस तुल्य उनों का भक्षण है निश्चय करके जान हे कुंती का पुत्र श्वेतकन्द भी वाद्दशही मूलकन्द को मदिरा की ओपमा ॥ १ ॥

पितृणांदेवता दीनां यः प्रयच्छति मूलकं सयाति नरकं घोरं यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥ २ ॥

अर्थः पितर और देवतादिकों को जो पुरुष मूल कन्द अर्पण करे वह जावे घोर नर्क जहां तक चन्द्र सूर्य हैं उहां तक ॥ २ ॥

कंद मूलाश्चये मूढा सुप्ते देवे जनार्दने भक्षयं तिनरापार्थ तेवै नरक गामिनः ॥ ३ ॥

कंद और मूल जो मुर्ख जनार्दन देव सोये पीछे (चौमासे में) भक्षण करे हे अर्जुन वह विशेषपने नरक जावे ॥ ३ ॥

इत्यादि कंद मूल वृंताकादि वर्जनाधिकार ।

दश सुन्यो समोचक्री, दश चक्री समोद्विजः दश द्विजं समो वैश्या दश वैश्या समो नृपः ॥ १ ॥

अर्थः दश पारधी (आहेडी) समान एक कुंभार दश कुंभार समान एक ब्राह्मण दश ब्राह्मण समान एक वैश्या दश वैश्या समान एक राजा ॥ १ ॥

अर्थः जंगम और थावर निश्चय दो प्रकार का तीर्थ कहलाता है जंगम तीर्थ ऋषि जन है थावर तीर्थ विशेष करके है ॥ २ ॥

अहिंसा सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्यं सुसंयमं भैक्ष्यवृत्ती रतायेन तत्तीर्थं जंगमं स्मृतं ॥ ३ ॥

अर्थः किसी जीव की हिंसा न करे सत्य बोले चोरी नहीं करे ब्रह्मचर्य अच्छे संयम युक्त भिक्षा भोजी वह पुरुष जंगम तीर्थ कहाते हैं ॥ ३ ॥

अगाधे विमले शुद्धे सत्य शील समे हृदे स्नातव्यं जंगमं तीर्थं ज्ञानार्जवदयापरैः ॥ ४ ॥

अर्थः गंभीर निर्मल शुद्ध सत्यशील समान द्रह में रहना जंगम तीर्थ है ज्ञान और सरलता दया में तत्पर हो ॥ ४ ॥

ये श्लोक आदित्य पुराण का है।

आचारवस्त्रांचलगालितेन ज्ञानांबुना स्नातिन रोचनित्यं सत्यं प्रसन्नं क्षमि शीतलेन किंतस्य भूया सलिलेन कृत्यं ॥ १ ॥

अर्थः आचार रूप वस्त्र के पल्ले से छाना ज्ञान जल से जो पुरुष इनसे स्नान करता है वह ज्ञान जल कैसा है सत्य प्रसन्नता क्षमा रूप शीतलता है जिसमें उसको फिर द्रव्य जल के स्नान का कृत्य क्या है ॥ १ ॥

सप्त स्नानानि शस्तानि स्वयमेव स्वयं भुवा द्रव्य भाव विशुद्ध्यर्थं ऋषीणां ब्रह्मचारिणां ॥ २ ॥

अर्थः सात स्नान श्रेष्ट कहा आप ब्रह्मा ने द्रव्य भाव विशेष शुद्धि के अर्थ ऋषी ब्रह्मचारियों के ॥ २ ॥

आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्य मेयच पार्थिवं मानसं चैव स्नानं सप्त विधं स्मृतं ॥ ३ ॥

अर्थः आग्नेय १, वारुण २, ब्राह्म ३, वायव्य ४, दिव्य ५, निथे पार्थिव ६, मानस ७, स्नान सप्त विध कहा ॥ ३ ॥

आग्नेयं भस्मनां स्नानं मवगाह्यंतु वारुणं आपोभिष्टामयं ब्राह्मं वायव्यांतुगवांरजं ॥ ४ ॥

अर्थः भस्मसे विलेपन वह आग्नेय स्नान १, दशों दिशा का अवगाहन वह वारुण स्नान २, आत्माके सरूपका ध्यान करना वह ब्रह्म स्नान ३, गऊ का पद्रज लगाना, वह वायव्य स्नान ॥ ४ ॥

संवत्सरेण यत्पापं कुरुते मत्स्य बंधकः एकाहेन तदाप्नोति अपूत जल संग्रही ॥ ६ ॥

अर्थः वर्ष दिन में जो पाप मत्स्य पकड़नेवाला करता है वैसा पाप एक दिन में प्राप्त होता है बिना जल के छाने संग्रह करनेवाले को ॥ ६ ॥

ये श्लोक विष्णु पुराण के हैं।

काम राग मदोन्मत्त ये च स्त्री वसवर्त्तिनः न ते जलेन शुद्धयंति स्नानतीर्थ शतैरपि ॥ १ ॥

अर्थः विषय राग से मदोन्मत्त जो फिर स्त्री का वशवर्त्ती ऐसा पुरुष जल से शुद्ध नहीं होता न सैकड़ों तीर्थों के स्नान से शुद्ध होता है॥ १ ॥

यथा चतुर्भिकनकं परीक्षते निघर्षणछेदनतापताड़नैः तथैव धर्मो विदुषा परीक्षते श्रुतेन शीलेन तपो दयागुणैः ॥ २ ॥

अर्थः जैसे चार प्रकार से सोने की परीक्षा की जाती है कसौटी से कसकर, काट कर, ताप में देने से, चोट देने से, तैसे ही पंडितों ने धर्म की परीक्षा करणी शास्त्र करके, शीलादि आचरण करके, तपस्या करके और दया करके ये चार जिसमें हों वह धर्म शेष अधर्म है ॥ २ ॥

अहिंसा प्रथमा प्रोक्ता यस्मात्सर्वेज्ञ तत्प्रिया तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कर्त्तव्या सविचक्षणैः ॥ १ ॥

ये भारत शांति पर्व के श्लोक हैं।

अर्थः सर्व धर्मों में अहिंसा प्रथम कही तिस कारण सर्वज्ञ भगवान को अहिंसा प्रिय है तिस कारण सर्व प्रयत्न करके अहिंसा विचक्षण पुरुषों ने करणी ॥ १ ॥

न च गंगा न च केदारं न गया न पुस्करं न ज्ञानं न होमश्च न तपो न जप क्रिया ॥ २ ॥

अर्थः गंगा, गया, केदार, पुष्कर इनों में जाने से कुछ नहीं नहीं ज्ञान से न होम न तप न जप न क्रिया ॥ २ ॥

न ध्यान मेव न स्नानं न दानं नापि सत्क्रिया सर्वेतनिष्फला यांति गम्नु मांसं प्रयच्छति ॥ ३ ॥

अर्थः न ध्यान न स्नान न दान नहीं निश्चय ये सत्क्रिया सर्व ये निष्फल जाता है जो मनुष्य मांस भक्षण करे ॥ ३ ॥

शुक्र शोणित संभूत ममेध्यं मांस मुच्यते अहो पार्थ अघ रूपम् तस्मात् स्पर्शो विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

अर्थः वीर्य रुधिर से उत्पन्न मांस अपवित्र कहाता है अहो अर्जुनः इसलिये मांस का स्पर्श भी वर्जना ॥ ४ ॥

अमेध्य पद् भक्षत्वा मनुष्यै रपि वार्जितम् देवो पुनीत भोक्ताहि मांस देवान भुंजते ॥ ५ ॥

अर्थः अपवित्र अनत्र होने से मनुष्य भी मांस को वर्जते हैं निश्चय देवता तो पवित्र भोग के भोक्ता हैं इसलिये देवता मांस नहीं भक्षण करते ॥ ५ ॥

देवानान मतः कृत्वाः घोरं प्राणि वधंनरा ये भक्षयंति मांसंच तेव्रजंत्य धना गतिं ॥ ६ ॥

अर्थः देवतों को अग्रणी कर जो नर प्राणियों का वध करते हैं और मांस भक्षण करते हैं वे अधन गति जाते हैं ॥ ६ ॥

मांस पुत्रो पमं कृत्वा सर्व मांसानि वर्जयेत् दया दान विशुद्धयर्थं ऋषिने वार्जितं पुरा ॥ ७ ॥

अर्थः मांस पुत्र की उपमा करके सर्व मांस को वर्जना दया दान और विशेष शुद्धि के अर्थ मैंने और ऋषियों ने पहले ही से वर्जन करा है ॥ ७ ॥

नग्राह्यानिन देयानि षट वस्तु निच पंडितैः अग्नि मधु विषं शस्त्रं मद्य मांसं तथैवच ॥ ८ ॥

अर्थः न लेनी न देनी छ वस्तु पंडितों ने अग्नि, सहत, विष, शस्त्र, मदिरा तैसे ही मांस ॥ ८ ॥

घातकश्चानुमंताच भक्षणश्च विक्रयः लिप्यंते प्राणिघातेन पच्यंतेतु युधिष्टरः ॥ ९ ॥

अर्थः जीव घात करने वाला, अनुमति देने वाला, खाने वाला, मूल्य से लेने वाला बेचने वाला ये सब प्राणिघात के पाप से लिपाते हैं और पकाता है वह भी हे युधिष्टरः ॥ ९ ॥

सर्वं जातिषु चांडाला सर्वं जातिषु ब्राह्मणा ब्राह्मणाश्चापि चांडाला चंडालेष्वपि ब्राह्मणा ॥ १० ॥

अर्थः सर्व जातियों में चांडाल होते हैं और सर्व जातियों में ब्राह्मण होते हैं ब्राह्मण भी चांडाल होते हैं चांडाल भी ब्राह्मण होते हैं ॥ १० ॥

अव्रताश्च दुराचारो येच भैक्ष्य चराद्विजा तंग्रामं दंडयेद्राजा चौर भक्त प्रदायकः ॥ ११ ॥

अर्थः व्रत रहित दुराचारी जो भिक्षा मांग खाते हैं ब्राह्मणः उस ग्राम को राजा दंड दे क्यों के चोरों को भात देने वाले जैसे दंड के पात्र जैसे ये ग्राम के लोक हैं ॥ ११ ॥

यस्तु रक्तेषु दंतेषु वेद मुच्चरते द्विजः अमेध्यं तस्य जिह्वाग्रे सूतकं च दिने दिने ॥ १२ ।

अर्थ जो पान बीड़िका भषण कर लाल दांतों से ब्राह्मण वेद उच्चारन करता है उसके जिह्वा के अग्र भाग में अपवित्रता है दिन दिन प्रति सूतक है ॥ १२ ॥

ना खात्पूर्गी फलं विद्वान् तालनिर्यास सन्मुनि पत्रं मांसं समं प्रोक्तं चूर्ण योगं च मद्यवत् ॥ १३ ॥

अर्थः पंडितों ने सुपारी नहीं खानी ताल वृक्ष के निर्यास की तरह पान मांस समान कहा कत्थे चूने का योग मद्य की तरह ॥ १३ ॥

राज प्रतिग्रहं धारी ब्राह्मणानां युधिष्ठरः पचिताग्नि धान्यानां पुनर्जन्मंन विद्यते ॥ १४ ॥

अर्थः राजा का दान लेने वाले ब्राह्मण का ब्राह्मण दग्ध है युधिष्ठर अग्नि में पचाये हुये बीज की तरह फिर नहीं प्रगट हो सकता ॥ १४ ॥

शांति पर्व भारत में ये श्लोक हैं।

शृंगार मदनो स्वादं यस्मात्स्नानं प्रकीर्तितं तस्मात्स्नानं परित्यक्तं नैष्ठिके ब्रह्मचारिभिः ॥ १५ ॥

अर्थ- शृंगार का मुख्य स्वाद जिससे स्नान में [illegible] कारन ब्रह्मचर्य की नेष्टा वाले ने स्नान समस्त पने छोड़ा [illegible]

काम क्रोधस्य सहितः किमरण्य करिष्यति अथवा निर्जिता वैतौ किमरण्यं करिष्यति ॥ २ ॥

अर्थः जो मनुष्य काम और क्रोध करके युक्त है उसका जंगल वास क्या करेगा अथवा ये दोनों जीता है जिसने तो फिर अरण्य वास उसका क्या करेगा ॥ २ ॥

करोति विरतिं धन्यो यः सदानिशि भोजनात् सोर्द्ध पुरुषा युषस्य पाद्वस्य मुपोषितः ॥ ३ ॥

जो धन्य है सो रात्रि भोजन का त्याग व्रत करे वह पुरुष अपने आयुष्य का आधा भाग उपवास के फल को प्राप्त हो ॥ ३ ॥

निगृहीतेंद्रिय द्वारा यत्रोपाविशते मुनिः तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं नान्यत्र पुष्करं जना ॥ ४ ॥

अर्थः जीती हुई इन्द्रिय द्वारा जहां मुनीश्वर विराजते हैं तहां तहां कुरुक्षेत्र है और तत्र ही पुष्कर है अहो मनुष्यो और जगे पुष्कर नहीं ॥ ४ ॥

मुंडनात् श्रवणेनैव संस्कारात् ब्राह्मणोनच मुनिनारण्य वासित्वात् वल्कलाच्च तापसः ॥ ५ ॥

अर्थः सिर मुंडित कराने से श्रमण नहीं संस्कार से ब्राह्मण नहीं जंगल वास से मुनि नहीं वल्कल चीवर धारने से तापस नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

देवानां च मनुष्येषु तिर्यग् योनि गतेषु च मैथुनं ये न सेवंति नद्धि ब्राह्मण लक्षणं ॥ ६ ॥

अर्थः देवतों में मनुष्यों में और तिर्यच योनि में प्राप्त होकर के भी जो मैथुन नहीं सेवन करता वह निश्चय ब्राह्मण का लक्षण है ॥ ६ ॥

क्षेत्रं यंत्रं प्रहरण वधं लांगलंगा तुरंगं धेनुगंध द्रविण नरयोहर्म्य मन्यं च चित्रं यत्सारंभं जनयति मनोरत्न नालिन्य कुर्यं तान्नदानं सुगत कृतये नैवदेयं कदाचित् ॥ ७ ॥

अर्थः खेत यंत्र मारने के शस्त्र हल, गऊ, घोड़ा बैल, सुगंध वस्तु सर्व धन वृष मकान कृत्रिम आसनादि चित्र जो २ वस्तु आरम्भ जनक और मन को मलीन करे ऐसा दान सुकृतार्थ कभी नहीं करना ॥ ७ ॥

अर्थः सर्वज्ञ और सर्व दर्शी सर्व देवों से नमस्कृत तीन छत्र की लक्ष्मी, से श्रेष्ट पूजा युक्त योग मूर्ति (पद्मासन) को धारे हुये ॥ १ ॥ सूर्यादिक सर्व हाथ जोड़ के ऐसे भाव करके नित्य ध्याते हैं जिसके दोनों चरण कमल ॥ २ ॥ वह परमात्मा रूप आत्मा के निर्मल केवल ज्ञान से देदीप्यमान निरंजन निराकार (मुक्तिहोनेसे) ऐसे ऋषभदेव महाकवि ॥३॥

ये श्लोक नगर पुराण भवावतार रहस्य के हैं।

पद्मा सन समासीन श्याम मूर्ति दिगंबरः नेमिनाथ शिवे त्याख्या नाम चक्रेस्य वामनः ॥ १ ॥ वामनोथ वतारेहि वामनेनच रैवते बलिजित् नेमिनाथाग्रे सामर्थ्यार्थं तपस्तपे।

अर्थः पद्मासन विराजमान श्याम मूर्ति जिन कल्प और थिवर कल्पातीत निर्ग्रंथ इस हेतु दिगम्बर नेमनाथ शिव ऐसा नाम इसका नाम वामन करा ॥ १ ॥ निश्चय वामना अवतार वामन ने गिरनार पर्वत पर नेमनाथ के आगे (पहले) बलि को बंध करने की समर्था के अर्थ तप तपा ॥ २ ॥

ये श्लोक प्रभास पुराण के हैं।

अकारादि हकारांत मुर्धाधो रेफ संयुतं नाद बिन्दु कला क्रांतं चन्द्र मण्डल संयुतं ॥ १ ॥ एतत्तत्त्व परं तत्त्वं यो विजानाति भावतः संसार बंधनं छित्वा सयाति परमागतिं ॥ २ ॥

अर्थः अकार है आदि मे, हकार है अन्त में मस्तक के नीचे रेफ संयुक्त नाद बिन्दु कला क्रांत चन्द्र मण्डल करके संयुक्त अर्हं ॥ १ ॥ यही उत्कृष्ट तत्त्व जो भाव से जाने संसार बंधन छेद के वह जावे परमगति को ॥ २ ॥

ये भारत के श्लोक हैं।

कुलादिबीज सर्वेषा माद्यो विमल वाहनः चक्षुष्मांश्च यशस्वी च अभिचन्द्र प्रसेन जित ॥ १ ॥ मरुदेवश्च नाभिश्च भरत कुल सत्तमाः अष्टमं मरु देव्यांच नाभेर्जा तो युगेश्वर ॥ २ ॥

अर्थः सर्व मनुष्यों के कुल के आदि बीज भन पहला विमल वाहन ॥ १ ॥ चक्षुष्मान २, यशस्वी ३, अभिचन्द्र ४, प्रसेन जित ५, मरुदेव ६, नाभि ७, ये सप्त ही कुल सत्तम हुये आठमा नाभि मरु देवा के नाभि राजा से युग ईश्वर उत्पन्न हुवा ॥ २ ॥

ये श्लोक यहां मनुस्मृति के हैं।

नाहं रामो न मेवान्छा विषये गुन मेमनः शान्ति मासितु मिच्छामि वीतरागो जिनोयथा ॥ १ ॥

अर्थः न मैं राम न मुक्ति वान्छा विषय में मेरा मन नहीं शांति मुक्ति प्राप्त होने इच्छता हूं जैसे वीतराग जिनराज ने इच्छा ॥ १ ॥

ये वशिष्ट वैराग्य प्रकरण अहंकार निषेधाध्याय का लेख है।

युगे २ महा पुण्यं दृश्यते द्वारिका पुरिः अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभा से शशि भूषणः ॥ १ ॥ रेवताद्रौ जिनोनेमिः युगादि विमला चले ऋषिणामा श्रमा देव मुक्ति मार्गस्य कारणं ॥ २ ॥

अर्थः युग युग में महा पुण्य कारी द्वारिका पुरी दीखती है जहां हरि ने अवतार लिया कांति से चन्द्र जैसे शोभायमान ॥ १ ॥ गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ जिनेश्वर ऋषियों का आश्रम होने से ही ये आश्रम मुक्ति मार्ग का कारण है ॥ २ ॥

ये श्लोक प्रभास पुराण के हैं।

मुंडं मलीन वस्त्रं च गुंफी पात्र समन्वितं दधानं पूंजिका हस्ते चालि यच पदेपदे ॥ १ ॥ वस्त्र हस्तं तथा हस्तं क्षिप्यमानो मुखं सदा धर्मं तिव्या हरं तच नमस्कृत्यहरास्थितः ॥ २ ॥ ॥

अर्थः मुंड श्वेत मैले वस्त्र झोली पात्र करके युक्त धारण की है जीव प्रमार्जन पूंजिका (रजो हरण) हस्त में उसको पद पद में चलाता हुआ ॥ १ ॥ वस्त्र वाला हाथ तथा खाली हाथ मुख ऊपर देता हुआ हर वख्त, और धर्म लाभ ऐसा उचारता हुआ उनों को नमस्कार कर हर खडा रहा ॥ २ ॥

ये जैन के यति गुरु का भेष तथा उप लक्षण के श्लोक शिवपुराण के हैं।

तावद्भ्रमति संसारे पितरः पिंडकांक्षिणः यावत्कुले विशुद्धात्मा यती पुत्रो न जायते ॥ १ ॥

अर्थः तहां तक पितर पिंड की इच्छा वाले संसार में पर्यटन करते हैं जहां तक कुल में विशेष शुद्ध आत्मा वाला यती पुत्र नहीं जन्मता है ॥ १ ॥

अथ वर्त्तमान वेदोक्त वाक्यानि ।

ॐ ५ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थं करान् ऋष भाद्यान् वर्द्ध मानां तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । ऋग्वेद मंत्र ।

ॐ ५ पवित्रं नग्नं मुपस्पृ सामहे येषांजातं येषांवीरं सुवीरं । ऋग्वेद् मं० १ । अ० १ । सु० १ ॥

ॐ ५×५×नमोऽर्हतो ऋष भाय ऋषभ पवित्रं पुरुहूत मध्वरं यज्ञे पुनन्नं परनं माह संस्तुता वारं शत्रुजयंत शुरिद्रं माहुति रिति स्वाहा । यजुर्वेद मंत्र ।

ॐ ५ त्रातार मिंद्र ऋष भंवदन्ति अमृतार मिंद्रहवे सुगतं सुपार्श्वं मिंद्रहवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमान पुरहूत मिंद्रमाहु तिरिति स्वाहा

ॐ ५ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमिवीरं पुरुष मर्हंत मादित्य वर्णं तमसः पुरस्तात् स्वाहा ।

ये सर्व यजुर्वेद् के मंत्र हैं स्वस्तिन स्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः । ये वेदमंत्र संध्या में है ।

अर्थः नास्तिक शब्द का अर्थ क्या है इस शब्द अनेकार्थ वाची है क्योंकि अनेक सज्जन गण इस नास्तिक शब्द का भिन्न २ अर्थ करते हैं अतः सर्व का यथोचित समाधान करने के अर्थ उन सर्व अर्थों पर विचार करना होगा जो कि आज कल विशेष प्रचलित है ।

१ पाणिनि अभिमत अर्थ की ही पहिले मीमांसा की जाती है क्यों के आप वेद सम्बन्धी व्याकरण के मुख्य आचार्य माने जाते हैं उन्हीं की रचित अष्टा ध्याई द्वारा स्वत प्रसिद्ध वेद के अर्थ समझाये जाते हैं यदि आप का व्याकरण न होता तो यह बहुत सम्भव था कि वेदों का उच्च कोटि की संस्कृत या यों कहिये ईश्वरीय भाषा निरर्थक ही रह जाती

१. [illegible]

अथ वर्त्तमान वेदोक्त वाक्यानि ।

ॐ ५ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थ करान् ऋषभाद्यान् वर्द्ध मानां तान् सिद्धात् शरणं प्रपद्ये । ऋग्वेद मंत्र ।

ॐ ५ पवित्रं नग्नं नुपस्त सामहे येषांजातं येषांवीरं सुवीरं । ऋग्वेद मं० १ । अ० १ । नु० १ ॥

ॐ ५×५×नमोऽर्हतो ऋषभ भाय ऋषभ पवित्रं पुरुहूत मध्वरं यज्ञे पुनग्नं परमं माह संस्तुता वारं शत्रुजयंतं शुरिंद्रं माहुति रिति स्वाहा । यजुर्वेद मंत्र ।

ॐ ५ त्रातार मिंद्र ऋषभंवदन्ति अमृतार मिंद्रहवे सुगतं सुपार्श्वं मिंद्रहवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमान पुरुहूत मिंद्रमाहु रिति स्वाहा

ॐ ५ नग्न सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमिवीरं पुरुष महंत मादित्य वर्णं तमसः पुरस्तात् स्वाहा ।

ये सर्व यजुर्वेद के मंत्र हैं स्वामिनम स्वामी अरिष्ट नेमि ये वेदमंत्र संख्या में हैं

[illegible]

[illegible]

क्योंकि वेदों की भाषा वह भाषा है-कि जिसके यथावत् अर्थ आजकल के संस्कृत व्याकरण से नहीं हो सकते पाणिनीयजी अस्ति नास्ति दिष्ट मतिः अर्थात् परोक्ष सूक्ष्म विषय नहीं है ऐसी जिसकी मति है वह नास्तिक है अष्टा ध्याई ४।४।६०। ऐसा अर्थ करा है और अष्टा ध्याई के प्रसिद्ध टीकाकार भट्टोजी दीक्षित आदिष्ट शब्द को परलोक अर्थ में लेते हैं।

अस्ति पर लोक इत्येवं मतिर्यस्य सआस्तिकः नास्तीति मतिर्यस्य सनास्तिकः।

अर्थः है परलोक ऐसी है बुद्धि जिसकी वह आस्तिक नहीं ऐसी बुद्धि जिसकी वह नास्तिक ये सिद्धांत कौमुदी का उल्लेख है।

जैनी पुनर्जन्म, नर्क, स्वर्ग और मोक्ष परलोक सब मानते हैं आस्तिक है २, दूसरे सज्जन आस्तिक शब्द का अर्थ यह करते हैं कि जो जीव और पाप पुण्यादिका अस्तित्व न माने वह नास्तिक है इस अर्थानुसार भी जैनी पूर्ण आस्तिक हैं क्योंकि जैन शास्त्रों में जीवा जीवादि का जैसा सूक्ष्म विस्तार पूर्वक कथन है वैसा अन्य किसी मत में नहीं।

३. एक सज्जन कहते हैं ईश्वर को न मानें उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं करे वह नास्तिक है इस हेतु भी जैनी आस्तिक है क्योंकि यह बाल गोपाल प्रसिद्ध है कि जैनियों के बड़े २ मन्दिर होते उनमें वह किसी की मूर्त्ति स्थापित कर उसकी उपासना करते हैं वह उन जैनियों का ईश्वर है यदि मूर्तियों और ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव और उपासना की रीति के भिन्नत्व से ही नास्तिकत्व हुआ करता है तो आज प्रत्येक मत में उनकी भिन्नता होने से प्रत्येक ही नास्तिक ठहरेंगे अतः जैनी आस्तिक हैं यहां कोई शंकाकार कहेगा की अन्य मतावलम्बी अनेक विभिन्नता होने पर भी सर्व का स्वामी एक ईश्वर मानते हैं अतः वे नास्तिक नहीं और जैनी जीव मात्र को जो कर्म मल से अलिप्त हो जावे ऐसे अनन्त ईश्वर मानते हैं अतः नास्तिक हैं इसका समाधान सुनो जैनी भी प्रत्येक कर्म मल से अलिप्त जीव मात्र की ओर इस प्रकार अनन्त मानते हुवे भी जाति अपेक्षा वा ईश्वरत्व गुण अपेक्षा कथंचित् स्वरूप करके एक ईश्वर भी मानते हैं इस हेतु जैनी नास्तिक नहीं इसमें भिन्न व्यक्ति अपेक्षा

सर्व का स्वामी कोई ईश्वर नहीं क्योंकि किसी भी युक्ति व न्याय के प्रमाण से यह कदापि सिद्ध नहीं होता अतः यह खर विषाणवत् अवस्तु है और तत्त्व प्रमाणाभ्दां वस्तु सिद्धिः न होने के हेतु अवस्तु को न मानने से जैनी नास्तिक है ।

४. एक सज्जन कहते हैं ईश्वर को संसार का कर्ता न मानने से जैनी नास्तिक है यह भी यथार्थ नहीं क्योंकि एकांत वाद से सर्व जगत् का कर्ता हर्ता मानने से उसमें कौन पक्ष का प्रमाण और युक्ति से समर्थन नहीं होता इस बात का खंडन आप्त मीमांसा देखो, तथा जैन तत्वा दर्श भाषा ग्रंथ का दूसरा परिच्छेद देखो यह सिद्धांत तो इतना अर्क तूलवत् हलका है सो जैनियों का ५ वर्ष का लड़का बुद्धिमान हो उड़ा सकता है सो नमूना यहां दिखाते हैं ।

कर्ता वादी कहता है जीव का कर्ता हर्ता परमेश्वर है उसने सृष्टि को रच के जीव बनाये समाधान। हे सज्जन यदि सृष्टि ईश्वर ने रची तो एक सुखी और एक दुःखी एक धनी एक निर्धन उच्च नीच एक दयालु एक चाडाल इत्यादि अंतर क्यों डाल दिया कर्मों के द्वारा सम दृष्टि क्यों नहीं रहा यदि कहोगे करने वाले को तो वह सुखी करता है और उसके निरकों [illegible]

सृष्टि रचकर अपने ऊपर इतना पंपाल क्यों उठा लिया है अपने आनन्द में व्यर्थ सृष्टि की चिन्ता क्यों डाल ली इसमें ईश्वर को लाभ हुआ जो यह माया जाल विस्तारा, यदि कहोगे ईश्वर ने सृष्टि रच सृष्टि के जीवों को अपनी शक्ति विद्या और मैं ऐसा गुणी, ऐसा हूं इत्यादि कला दिखलाई के यह सब मेरी माया है, हे भव्य ये कर्त्तव्य उन्हों को ही दिखाया के खुद ही जिन्हों को रचा जैसे कोई अभिमानी अपनी दासी के मूं से अपने को चक्रवर्त्ति महाराजा दिल में खुश हो तद्वत् तुमारा ईश्वर हुआ शक्ति विद्या, बल, अपने महस को दिखावे ऐसा जगत् व्यवहार है इस न्याय तो ईश्वर अभिमानी संसार व्यवहार का अनभिज्ञ जिसने ये माया जाल विस्तार जब ईश्वर ने सृष्टि नहीं रची थी तब इस सृष्टि रचने की चिन्ता से दुःखी रहता होगा, रचने बाद सुख पाया होगा बाजीगर पेट भरने करता है और लोकों को दिखाता है ईश्वर को भी कुछ आजीविका कर थी जो सृष्टि रची कहो तुम किस कारण ईश्वर जगत् को रच अप कला कौशलता दिखलाई इत्यादि अनेक दोष कर्ता सृष्टि के मानने में अब सुनो तुम कहते हो ईश्वर जगत् का हर्ता है, हे भव्य कोई भी आ अपने हाथ से वस्तु बना के नाश नहीं करता अगर कोई बना बना खंडित करता जाय तो उसको सब दुनियां मूर्ख कहती है जैसे मनुष्य अपने हाथ से कोई स्थल का चित्र कर मिटा दे तो समझ चाहिए या तो वह अशुद्ध लिखा गया था उसमें कुछ न्यूनता रह गई तुम कहो क्या ईश्वर जगत को रचने में गलती की या मार्ग भूल ग जो सृष्टि का संहार करता है इस न्याय ईश्वर सृष्टि का संहार क घातक ठहरता है [illegible] सत्य असत्य का निर्णय करो सृष्टि क ईश्वर को मान कर ईश्वर [illegible] सब लगाओ दोष लगा कर ईश्वर के बड़े बड़े [illegible] पाप पुण्य जीव करेगा वैसा फल पावेगा, बाप का किया बाप भोगेगा बेटे का बेटा भोगेगा कर्त्ता का जीव ईश्वर के बनाने वाले [illegible] में दुःख पावेंगे ईश्वर कर्त्ता नहीं है, अन्त और आदि कोई नहीं. अपने अपने कर्म योग से

दुःख पाता है जीव ८४ लक्ष जीवायोनि में फिरता न तो ईश्वर दंड देता न भक्तों के पाप की माफी करता, राग द्वेष से रहित मोक्ष में अजर अमर ईश्वर भगवान विराजमान है।

स्याद्वाद में जैनी कथंचित् ईश्वर को संसार का करता मानते भी हैं वह हम नैयायक मत में लिख आये हैं तथापि लिखते हैं सत् का विनाश और असत् की उत्पत्ति कदापि नहीं होती अर्थात् भाव से अभाव और अभाव से भाव कदापि नहीं हो सकता जैसे यदि बीज में वृक्ष न हो तो वह कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता इसी प्रकार जब यह जीव कर्म अलिप्त होने पर स्वयम् शुद्ध ईश्वर हो जाता है तब यह सिद्ध हुआ कि यह अपनी अशुद्ध जीव अवस्था में भी किसी प्रकार ईश्वर ही है या यों कहिये कि जैसे बीज में शक्ति अपेक्षा वृक्ष है उसी प्रकार अशुद्ध जीव में भी शुद्ध ईश्वर तत्व है कारण में कार्य का उपचार (यथा राज पुत्र पाटवी को राजा कहना) अपेक्षा से यह जीव ईश्वर है ऐसा सिद्ध हुआ अब इस जीव की दो अवस्थायें हैं एक अशुद्ध, दूसरा शुद्ध, या जीवत्व ईश्वरत्व या संसार और मोक्ष अपनी संसार या बंध अवस्था में यह जीव निज कर्मानुसार स्वयम् नाना योनियों में परि भ्रमण किया करता है और मोक्ष अवस्था में अपने संसार भ्रमण का नाश कर देता है इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव अपने संसार का कर्त्ता हर्त्ता है पूर्व में यह जीव ईश्वर प्रमाणित हो चुका है अतः कथंचित् ईश्वर संसार का कर्त्ता हर्त्ता है ऐसा मांनने से जैनी आस्तिक है।

५. नास्तिको वेद निन्दकः (वेद की निन्दा करने से जैनी नास्तिक हैं) ऐसा मानना भी यथार्थ नहीं क्यों कि वेद शब्द विद् धातु से बनता है जिसका अर्थ ज्ञान है इससे सिद्ध हुआ ज्ञान पूर्ण ग्रंथ जैन का द्वादशांग है जैनी ज्ञान की निन्दा कभी नहीं करते न ऐसे ग्रंथ की ही करते हैं कि जिसमे संसार बंधन से मोक्ष की प्राप्ति का ज्ञान हो परन्तु यह बात जुदी है कि यह शब्द किन्हीं ग्रंथ विशेष के अर्थ रूढि हो गया हो और उनमें ज्ञान न होने या यथार्थ मोक्ष मार्ग का अभाव होने और संसार पंपच की ही बात होने से जैनी उनकी निन्दा करने लगे हो पर ऐसा करने से जैनी

नास्तिक नहीं कहे जा सकते वेद शब्द आज कल विशेषतः ऋग्, यजु, साम और अथर्व ऐसे नाम की चार संहिताओं के अर्थ में व्यवहृत होता है सायन महीधरादि के वर्तमान भाष्य व स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के भाष्यानुसार भी उनको पढ़ने से जैनियों को भली भांति ज्ञात हो गया है कि उसमें कैसा ज्ञान है जिन सज्जनों ने अभी तक वेदों को न पढ़ा हो और केवल उनका नाम ही सुनकर उनके विषय में बाबा वाक्यं प्रमाणम् मानने वाले हों या वेद भाषित हिंसा धर्मः अधर्मस्तद् विपर्ययः इस लकीर के फकीर हों उनसे हम प्रीति पूर्वक प्रार्थना करते हैं आप पक्ष पात त्याग करने कल्याणार्थ किसी भाष्यानुसार (जिस पर आप का पूर्ण विश्वास हो कि यह सत्य है) एक बार वेदों को अवश्य पढ़िये और पश्चात तब विचारिये कि उनमें कैसा ज्ञान है यदि आप इतना भी कष्ट न उठावें तो कृपया इन इन ग्रंथों को पढ़े वेद विख्यात पंडित विश्वनाथ विनायक का वेद नामक लेख जो सितम्बर मास सन् १९०८ ई० को प्रयाग से प्रकाशित होने वाली (सरस्वती) नामक सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका में मुद्रित हुआ है व आर्यमत लीला व साधु आत्मारामजी रचित तत्व निर्णय प्रासाद अज्ञान तिमिर भास्करादि पुस्तक ध्यान से अवश्य पढ़िये जैन का ज्ञान उत्कृष्ट है

यथा· आचारांग सूत्र कृतं स्थानांगं समवाय युक् पंचमं भगवत्यंगं ज्ञाता धर्म कथा पि च ॥ उपासका तकृद्दशा नौ त्तरोपपातिका दश प्रश्न व्याकरण मेव विपाक श्रुत मेवच इत्येका दश मंगानि दृष्टि वा दस्तु द्वादशः ॥ १ ॥

ये अंग विद्यमान ११ हैं और १२ उपांगसूत्र, ८४ आगम, सूत्र निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, टीकायुक्त सूत्र, तथा लाखों ग्रन्थ विद्यमान हैं ऐसे सर्व वेद ज्ञान ग्रंथों की निन्दा जैनी कभी नहीं करते इसलिये जैन आस्तिक हैं।

हैं अच्छे यदि वेद स्मृति पुराणों का श्रद्धा पूर्वक मानते हो तो तुम्हें जैन धर्म से विरोध है

यतः वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणं नैतस्त्रयं यस्य भवेत् प्रमाणं कस्तस्य कुर्याद्वचनं प्रमाणं ॥ १ ॥

अर्थः वेद प्रमाण स्मृतियें प्रमाण धर्मार्थ युक्त वचन प्रमाण ये तीनों जिसको प्रमाण नहीं उनका वचन कौन प्रमाण करता है ॥ १ ॥

ये श्लोक भारत का है।

यथार्थ वचन अहिंसा युक्त सबों के जैन के इष्ट हैं अन्यथा जैसे को जैसा मानते हैं देखो—

आत्मा विष्णुं समस्तानां वासुदेवा जगत्पतिः तस्माच्च वैष्णव कार्या पर हिंसा विशेषतः ॥ १ ॥ तर्कोप्रतिष्टः स्मृतयो विभिन्नः नासावृषि यस्य मतंनभिन्नं धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो ये नगतः सपंथाः ॥ २ ॥ वेदा विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैकोमुनिः यस्यवचः प्रमाणं धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो ये न गतः सपंथा ॥ ३ ॥

अर्थः आत्मा है सो समस्त जग जीवों का वह विष्णु है वासुदेव जगत् का पति (राजा है) इसलिये वैष्णवों ने परहिंसा विशेषतया न करनी ॥ १ ॥ तर्क से स्थापित स्मृतियें जुदी २ हैं ऐसा कोई ऋषी नहीं हुआ कि जिसका मत जुदा न हो इसलिये स्मृति पुराणों को त्याग के धर्म का तत्व किसी अन्य गुफा में स्थित है वह कौन सी गुफा है महाजन लोक जिस मार्ग को प्राप्त हुये वह ही पंथ धर्म का है ॥ २ ॥ वेदों का कथन भिन्न २ स्मृतियों का कथन भिन्न २ एक भी कोई ऐसा मुनि नहीं हुआ कि जिसके वचन प्रमाण करने लायक हों धर्म का तत्व किसी अन्य गुफा में प्रतिष्टित है की जिसको महाजन लोक प्राप्त हुये वह ही पंथ धर्म का है ॥ ३ ॥

ये श्लोक भारत इतिहास के हैं।

महाजन संज्ञा अश्वपति आदि दया धर्मी व्यापारि राजन्य वंनियों

इस ग्रंथ संकलना में जैन तत्त्व का रहस्य दर्शाने हमने वेद स्मृति पुराणादि के वाक्य जो लिखे हैं उनका सिद्धांत यह है वादी प्रति वादी निर्णीत की सिद्धांत वादी प्रति वादी दोनों मिल के जिसका निश्चय करें वह सिद्धांत कहलाता है जो जैन तीर्थंकर स्याद्वादी ने कथन करा वह वादी दया धर्म की बुद्धि वालों ने भी ग्रहण करा इस तरह जैन का ज्ञान सिद्धांत हुआ अथवा जिस ज्ञान और क्रिया से सिद्धगति (मोक्ष) की प्राप्ति हो वह जैन का सिद्धांत सिद्ध है, इस जैन दिग्विजय पताका ग्रंथ का लिखना केवल किसी का दुखाने को नहीं परन्तु सत्यासत्य निर्णयार्थ प्रकाशित किया गया आशा है कि सज्जन गण पक्षपात त्याग और इस पर समुचित विचार कर कल्याण मार्ग के अनुगामी होंगे ।

ॐ शांति ! ॐ शांति !! ॐ शांति !!!

अथ प्रशस्ति।

श्रीमान् खरतरे गच्छे अर्कैव धर्म दीपनः। जिन चारित्र सूरिशं राज्येच तत्प्रशादतः॥ १॥ श्री विक्रमपुरे रम्ये गंगासिंह प्रजापतिः सार्दूल युवराज्येच सुख स्थाने मनोहरे॥ २॥ रसऋषि तत्वे काब्दे पंचम्यां शित फाल्गुने धर्मशील गुरुः श्रीमान् निधान कुश लाभिधः॥ ३॥ पाठक ऋद्धिसारेण जैन दिग्विजयोध्वजाम् विस्तारितं प्रबोधाय सज्जनानां प्रमोद कृत्॥ ४॥ पक्षपातं परित्यज्य सादरेण विलोक्यतान् पठुर्पितं सारग्राह्या नुचितं क्षम यस्वमे॥ ५॥ देवाधिदेव धर्मंच अदेवाद्यपलक्षणं निर्णी तोस्मि न्नपि ग्रंथे सत्या सत्यंच निर्णयं॥ ६॥ शासना धीश वीरेण कृतं दिग्विजयं शुभम् सगप लिखितं किंचित् पताका राम पाठकैः।

इति श्रीमहावीर जिनेश्वरेण मिथ्या तिमिर प्रणाशने सार्द्ध पंचविंशत्यार्य देशेषु स्वगिरायां कृतं जैन दिग्विजयं तनमध्या द्विन्दु

मात्र यत्किंचित् पताका रूपेण विस्तारितं

उपाध्याय श्रीराम गणिनाः सर्व

श्री संघस्यानन्द प्रदो

भवतु चिरं।

॥ ओं ॥

उपाध्याय प्राणाचार्य युक्तिवारधिः श्रीरामलालजी गणिः

के विद्यार्थी शिष्य

वैद्याचार्य पं० रामगोपाल शर्मा का आयुर्वेदीय औषधालय,

आचारजों का चौक बीकानेर

की शास्त्रसिद्ध व अनुभवसिद्ध औषधियों का

संक्षिप्त सूचीपत्र

	फी तोला.		फी तोला.
स्वर्ण भस्म	८०)	सीप भस्म	॥)
रौप्य भस्म	१०)	कपर्दी भस्म	१)
लोह भस्म	४)	शृंग भस्म (सांभर की)	२)
ताम्र भस्म	११)	मृगशृंग भस्म	२)
नाग भस्म	५)	वसन्तमालती रस	३०)
जसद भस्म	५)	पीपलचोसठ पोहरि	२०)
बंग भस्म	४)	गिलोय सत्व असली	॥)
पारद भस्म ...	५)	हेमगर्भ पोटली रस	६०)
अभ्रक भस्म	१०)	चंद्रोदय (मकरध्वज) रस	१००)
मंडूर भस्म	४)	दाद की स्वदेशी दवा	=)
कांसी भस्म	४)	धातु वर्द्धक चूर्ण	≡)
त्रिबंग भस्म	४)	सुधासागर चूर्ण शीशी	॥।)
स्वर्ण माक्षिक भस्म...	२)	अर्क सौंफ की बोतल	१।)
मूंगा भस्म	॥)	,, मंजिष्ठादि .... ,,	२)
शंख भस्म ...	॥)	,, उशबे का . ,,	३)